हंसता, नाचता, गाता धर्म

(1) हंसता, नाचता, गाता धर्म

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिलाः सोनीपत, हरियाणा 131021

 contact@oshofragrance.org

 www.oshofragrance.org

+91 7988229565
+91 7988969660
+91 7015800931

अनुक्रमांक

भारत व नेपाल के विभिन्न नगरों में दिए गए 11 प्रवचनों

प्रेम बिना यह जीवन सूना

(भाग–1)

प्यारे मित्रो, नमस्कार! जय ओशो!

अभी हम मां ओशो प्रिया जी की मधुर आवाज़ में प्यारा गीत सुन रहे थे। इस गीत की ये पंक्तियां कितनी प्रेरणादायी हैं–

प्यार की छांव तले, कोई तो गांव बसे
प्रीत संगीत बजे, मीत का गीत सजे।

न कोई शत्रु, न कोई वैरी, कोई न तेरा मेरा हो
हम सबके हों, सब अपने हों, कोई नहीं अकेला हो।

धर्मों के नाम पे कुछ भी न माने, सतनाम को हम जानें
तन के मंदिर में ज्योतिर्मय, अंतर राम को पहचानें।

हृदय हो हरिद्वार, तीर्थ हो घर–बार, स्वर्ग बने सारा संसार
अहोभाव की प्रार्थना गूंज़े, धन्यवाद प्रभु बारंबार।

साांझ रास हो, रात हो नीरव, उत्सवपूर्ण सवेरा हो
ध्यान हो साक्षी, कर्म हो पूजा, ओशो का सपना पूरा हो।

प्यार की छांव तले, कोई तो गांव बसे। ओशो का सपना पूरा हो!

हाँ; ओशो का ही नहीं, समस्त सद्‌गुरुओं का, समस्त ज्ञानियों का, तीर्थंकरों का, पैग़ंबरों का, सारे ऋषि–मुनियों का एक ही तो सपना रहा है कि पूरी धरती एक परिवार की तरह प्रेमपूर्वक रहे। लेकिन आज तक यह साकार नहीं हो पाया। यह सपना बड़े दूर का सितारा है। आज हम उन्हीं बातों की चर्चा करने बैठे हैं कि इस सपने के पूर्ण होने में कौन–कौन सी बाधाएं हैं? ताकि उन्हें समझ कर हम उनसे मुक्ति व छुटकारा पा सकें। हम सब के भीतर भाव तो होता है कि हम प्रेमपूर्वक रहें और हमारे जीवन में ज़्यादा से ज़्यादा प्रेम हो, किंतु हो क्यों नहीं पाता? तो आज इसी मुद्दे पर मैं आपसे कुछ बातें करूंगा। आपके जो भी सवाल होंगे, उनके जवाब देने का प्रयास करूंगा। मैंने अपने सद्‌गुरु ओशो से जो सीखा है, सुना है, समझा है और अपने जीवन में जो जिया है; उन अनुभवों के आधार पर मेरी बातें होंगी। मुझे शास्त्र ज्ञान नहीं है, मैंने धर्मग्रंथ नहीं पढ़े, इसलिए बड़ी–बड़ी, गूढ़, ऊँची–ऊँची, सूक्ष्म बातें और फिलॉसफ़ि तो मुझे आती नहीं। सीधी–सादी सरल–सी बातें जो मैंने सब तरफ़ देखी हैं और उनसे जो निष्कर्ष निकाले हैं; वही बातें आपसे कहने आया हूँ।

पहली बात, दुनिया में प्रेम की चर्चा और बातचीत बहुत है। लेकिन बस बातचीत ही है। मनुष्य जाति का इतिहास उठा कर देखें। किसी भी देश या जाति के इतिहास में आपको केवल युद्धों का वर्णन ही मिलता है। हर तरफ़ मार–काट और ख़ून–ख़राबा रहा है। पिछले पाँच हज़ार वर्षों के ज्ञात इतिहास में क़रीब पंद्रह हज़ार युद्ध हुए। मनुष्य का पूरा इतिहास रक्त–रंजित है। बातें हम प्रेम की करते हैं, हमारे गीत और कहानियाँ प्रेम से संबंधित होती हैं; परंतु प्रेम हमारे जीवन में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। किसी कवि ने लिखा है–

'प्रेम की बात ज़माने में निराली देखी।
प्रेम की प्रेम से फलती हुई डाली देखी।।
प्रेम इंसान को इंसान बना देता है।
प्रेम पत्थर को भी भगवान बना देता है।।'

यह बात बिल्कुल ठीक है। लेकिन इसका प्रमाण यदा–कदा ही कहीं देखने को मिलता है। पूरी मनुष्य जाति भगवान बनकर नहीं, बल्कि शैतान बनकर जी रही है। किसी भी दिन का न्यूज़पेपर उठाकर पढ़ लो, उसमें भगवान के दर्शन कहीं न होंगे।

'सत्यं, शिवं, सुंदरं' के प्रमाण न मिलेंगे। हर ख़बर शैतानियत का सबूत देती है। यह किसी एक देश या किसी एक जाति की बात नहीं, बल्कि पूरी दुनिया की दुखद कहानी है। ज़रूर हमसे कोई बहुत बड़ी बुनियादी भूल-चूक हो रही है। हमारे प्राणों में प्रेम की गहरी प्यास व्याप्त है। हमारे हृदय के अंतरतम में प्रेमपूर्ण होने की अभीप्सा छिपी है। हम चाहते हैं कि हम लोगों को प्रेम कर सकें और लोग हमें प्रेम कर सकें। हम चाहते हैं कि सबके बीच मैत्रीभाव और भाईचारे का रिश्ता हो। हम सभी के साथ मधुर संबंध बनाना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि यह पृथ्वी स्वर्ग की तरह हो सके। लेकिन ऐसा हो नहीं पाया। हुआ ठीक इसका उल्टा। धरती नरक हो गई है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' का सूत्र केवल काग़ज़ी किताबों में दर्ज है, हमारी ज़िंदगी की पुस्तक में नहीं लिखा है।

थोड़े दिन पहले मैंने एक बड़ी सुन्दर कहानी पढ़ी। कोई साधु किसी जगह प्रवचन दे रहा था। उसने कहा- 'जहाँ प्रेमपूर्ण लोग रहते हैं, मित्रतापूर्ण भावना में जीते हैं, वहाँ स्वर्ग होता है। और जहाँ लोग ईर्ष्या, द्वेष एवं प्रतियोगिता में रहते हैं, अहंकार और दुश्मनी में जीते हैं, वहाँ नरक होता है।' उस गाँव का ज़मींदार भी प्रवचन सुनने आया था। उसने साधु से कहा कि आपने जो बात कही है, क्या आप इसे प्रैक्टिकल रूप से, व्यावहारिक ढंग से प्रमाणित कर सकते हैं? थ्योरी में मुझे भरोसा नहीं है। आप कह रहे हो स्वर्ग और नरक अर्थात् मित्रता और शत्रुता में जीना। सिद्धांत तो अच्छा है, मगर सिद्ध करके दिखाओ, तो जानें।

साधु ने कहा- 'ज़रूर, मैं इसे सिद्ध भी कर सकता हूँ। इसके लिए आपसे थोड़ी मदद चाहूँगा। आप अपने महल में मुझे दो कमरे दिलवा दीजिए, जहाँ पर हम कुछ मित्रतापूर्ण लोगों को और कुछ शत्रुतापूर्ण लोगों को इकट्ठा रख सकें। फिर हम देखेंगे कि कुछ दिनों के भीतर क्या परिणाम होता है?' उस ज़मींदार ने कहा- 'ठीक है। मेरे महल में बहुत कक्ष ख़ाली पड़े हैं। आप चलिये, जो आप पसंद करेंगे वैसा इंतज़ाम कर देंगे।' वे लोग महल में गए। एक कमरा चुना गया, जिसमें गाँव के दस प्रेमपूर्ण लोगों को एक साथ रखा गया। दूसरे कमरे में गाँव के दस चुनिंदा झगड़ालू, क्रोधी, अहंकारी, घमंडी व गुंडे-लफंगे लोगों को रखा गया।

साधु ने कहा- 'इन दोनों समूहों में एक सी सुविधाएं और असुविधाएं करवा दीजिए।'

साधु के कहे अनुसार सब इंतज़ाम करवा दिए गए। उन बीस लोगों से कहा गया कि आप लोगों को एक हफ़्ते तक यहीं इसी कमरे में रहना है। कमरा बंद रहेगा। खाने पीने के लिये सब व्यवस्था है। दाल, चावल, आटा, सब्ज़ियाँ सब रख दी गयी हैं। खाना पकाने के लिये बर्तन, चाकू , छुरे जो-जो सामान वांछित है, उस सबका इंतज़ाम है। चूल्हा है, लकड़ी है, सब सुविधाएं हैं। आप लोग खाईये, पीईये, मज़े

करिये। बस, दस दिन यहीं बंद रहना होगा। दस दिन बाद आयेंगे और देखेंगे कि आपके जीवन में क्या परिर्वतन हुआ?

साधु ने कहा था कि कुछ असुविधा भी करा देना। उन लोगों को कुछ कष्ट भी देना। ज़मींदार ने सोचा– क्या कष्ट दिया जाये? साधु ने सलाह दी कि ऐसा करिये कि सभी के हाथों पर प्लास्टर बांध दीजिए जैसे फ़्रैक्चर होने पर बांधते हैं। और उनको आज्ञा दे दें कि यह प्लास्टर टूटना नहीं चाहिए। उनके दोनों हाथ बांध दिये गये, दस दिन हाथ सीधे ही रहेंगे। प्लास्टर से बड़ी असुविधा हो गई। अब किसी का भी हाथ मुड़ नहीं सकता था। साधु ने कहा कि अब इनको लॉक कर के चलते हैं। हफ़्ते–दस दिन के बाद आकर देखेंगे कि क्या परिणाम हुए? ऐसा ही किया गया।

दस दिन बाद जब वे लोग लौटकर आए, ताला खोला गया, तो देखा कि जो दुश्मनीपूर्ण लोग थे, जो लड़ाई–झगड़े करने वाले क्रोधी, घमंडी लोग थे; वहाँ बड़ी बदबू आ रही थीं। लगता था जैसे खाना पड़ा–पड़ा सड़ गया हो। वे दसों लोग बड़े दुबले–पतले दिखाई दे रहे थे जैसे कई दिनों से भूखे रहे हों। किसी के पैर पर चोट का निशान था। किसी के सिर पर घाव था। किसी के हाथ से ख़ून टपक रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे उनका आपस में ख़ूब लड़ाई–झगड़ा हुआ हो। साधु ने उन लोगों से पूछा– 'क्या हुआ?' उन लोगों ने गुस्से में कहा कि न जाने आप लोगों ने हमें किस ग़लती की सज़ा दी है? हमें यहाँ क्यों बंद कर दिया? हमारा ख़ूब झगड़ा हुआ। ख़ूब मार–पीट हुई। वह जो लकड़ियाँ चूल्हा जलाने के लिये रखी थीं, उनका हथियार की तरह उपयोग किया गया। जो चाक़ू सब्ज़ी काटने के लिये रखा गया था, वह एक दूसरे पर वार करने के काम आया। उनकी हालत बड़ी ख़राब थीं। वे लोग ज़मींदार और साधु के प्रति बहुत नफ़रत में थे।

साधु ने उनसे पूछा कि क्या आप लोगों ने खाना वग़ैरह नहीं खाया? ऐसे लग रहा है जैसे आपका वज़न घट गया है और दुबले हो गये हो। उन्होंने कहा कि खाना कैसे खाते? पहले तो इसी बात पर झगडा़ हो गया कि खाना पकायेगा कौन? वे सभी गुंडे थे। सभी ने अपनी दादागिरी और रंगदारी शुरू कर दी। जो लोग ज़्यादा ताक़तवर थे, उन्होंने थोड़े कम ताक़तवर लोगों को मजबूर किया कि तुम लोग खाना बनाओगे। उसी बात पर मारपीट हो गई। इस मारपीट के माहौल में जो खाना पका वो ज़हर ही था। जिस भावना से खाना बनाया जाता है, वह भावनाएँ भी भोजन में चली जाती हैं। उन चार पाँच लोगों ने लाचारी में खाना बनाया। असली मुसीबत तो तब हुई जब खाना पक गया और खाने का समय आया। उनका हाथ तो मुड़ता ही नहीं था। रोटी, सब्ज़ी और चावल उठाकर मुंह तक ला नहीं सकते थे, तो कुत्तों की तरह बर्तन में मुंह लगा के, झुक–झुककर खाना खाया। वह खाना जूठा हो गया, तो दूसरे लोग खाने को तैयार

न हुए। सारा खाना रखा–रखा सड़ गया। उसी की बदबू आ रही है। ये लोग इतने दिनों से भूखे तड़प रहे थे। बड़े क्रोध में ज़मींदार को गालियाँ देने लगे।

साधु ने ज़मींदार से कहा कि अब दूसरे कक्ष में चलिये। वहाँ देखते हैं क्या हाल है, जहाँ सज्जन पुरुषों को रखा गया है, जो बड़े प्रेमपूर्ण और भाईचारे वाले लोग हैं। वहाँ गए और देखा तो माहौल एकदम अलग। वे लोग तो चम्मच से थाली और बर्तन बजा–बजा कर भजन गा रहे थे। ज़मींदार भी हैरान हुआ। पहले कमरे में गये तो गालियाँ पड़ी थीं। वहाँ मारपीट हो रही थी और यहाँ गीत चल रहे हैं, भजन हो रहे हैं, उत्सव मनाया जा रहा है। दो–तीन लोग नाच रहे थे और कुछ बर्तन बजा रहे थे। सब मिलकर गा रहे थे। ज़मींदार ने पूछा कि आश्चर्य! आप लोग इतने प्रसन्न कैसे? उन्होंने साधु को साष्टांग प्रणाम किया और ज़मींदार को धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा कि आपका बहुत–बहुत शुक्रिया! ये दस दिन हमारे लिये बहुत मज़े के दिन रहे। घर में पत्नी है, माँ है, बहन है, वे खाना बनाती हैं; तो हमें खाना पकाने का कभी अवसर ही नहीं मिलता। यहाँ पहली बार हम लोगों ने खाना पकाया। हमें बहुत–बहुत आनंद आया। कुछ नया प्रयोग करने का अवसर मिला।

ज़मींदार ने पूछा कि आप लोगों का झगड़ा नहीं हुआ कि कौन खाना पकायेगा? उन्होंने कहा– 'हाँ, हुआ था। हममें से प्रत्येक व्यक्ति कहता था कि मुझे अवसर दीजिए। आप लोग बैठिए, मैं खाना बनाता हूं।'

देखा! झगड़े–झगड़े में कितना फ़र्क़ है? वह जो झगड़ा था, दुश्मनी का झगड़ा था। यह जो झगड़ा है, प्यार का झगड़ा है। हर व्यक्ति कह रहा है कि मुझे सेवा का मौक़ा दो। उन्होंने कहा कि हम सबने मिलजुल कर खाना बनाया और बड़े मज़े से दस दिन गुज़रे हैं। देखिए, हम लोगों का वज़न भी बढ़ गया है। कुछ काम–धाम नहीं, कोई चिंता–फ़िक्र नहीं। हमारी तो दस दिन की पिकनिक हो गई। आपका बहुत–बहुत धन्यवाद। हमें समझ में नहीं आ रहा कि आप लोगों ने हमें यह इनाम किस बात का दिया है?

पहले कमरे में उन लोगों ने क्या कहा था? हमें किस बात की सज़ा दी है। और ये लोग कह रहे हैं कि हमें पुरस्कार किस बात का दिया है? साधु ने पूछा– 'तुम्हारा हाथ तो मुड़ नहीं सकता, तो ये तो बताओ कि तुम लोग खाना कैसे खाते हो?' उन लोगों ने कहा– 'अरे! बताना क्या? अब लंच का समय हो ही रहा है। आप भी हमारे इस भोज में आमंत्रित हैं। अभी हम लोग बस भोजन शुरू करने ही वाले हैं। आईये, आप भी खाना खा लीजिए। इससे आपको पता भी लग जायेगा कि हम लोग खाना कैसे खाते हैं?

उन्होंने सारे व्यंजन टेबल पर सजाए। आधे लोग टेबल के इस तरफ़ खड़े हो

गये। आधे लोग उस तरफ़ खड़े हो गये। इस तरफ के लोगों ने कौर उठा कर अपने सामने वाले मित्र को खिलाया और उन लोगों ने उठाकर इनको खिलाया। ठीक है, एक हाथ मुड़ नहीं सकता तो क्या हुआ? दूसरे हाथ से तो अपने मित्रों को भोजन करा ही सकते हैं। उस साधु ने ज़मींदार से कहा– 'देखा आपने! दोनों ग्रुप्स में एक–सी परिस्थितियां थीं। सुविधाएं और असुविधाएं भी समान थीं। लेकिन एक समूह में नरक पैदा हो गया और दूसरे समूह में आप देख ही रहे हैं कि लोग कितने प्रसन्न हैं, धन्यवाद दे रहे हैं। इन्होंने खाना खाने का कैसा अद्‌भुत तरीका ईजाद किया! कह रहे हैं कि आपकी बड़ी कृपा है कि आपने प्लास्टर बांध दिया। वरना ये बात हमें कभी न सूझती कि अपने दोस्तों को भोजन कराएं। अपने हाथ से तो बहुत खाना खाया, लेकिन यहाँ दोस्त के हाथ से खाने का सौभाग्य मिला। ये कह रहे हैं– 'बड़ी कृपा है आपकी।' कष्ट के लिये भी कह रहे हैं– 'कृपा।'

प्यारे मित्रो! ये ज़िंदगी, ये दुनिया वही की वही है। हम सब एक ही दुनिया के वासी हैं। इसी पृथ्वी पर कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई नानक, कोई कृष्ण, कोई ओशो, कोई कबीर, कोई ईसामसीह और कोई लाओत्से स्वर्ग में जीते हैं और शेष अरबों–खरबों लोग इसी धरती पर नरक में जीते हैं। ओशो से किसी ने पूछा कि स्वर्ग और नरक की क्या परिभाषा है? ओशो ने कहा कि मित्रों के बीच जीने का नाम स्वर्ग है और शत्रुओं के बीच जीने का नाम नरक है। दूसरी बात उन्होनें कही कि मित्र और शत्रु चूंकि हम खुद बनाते हैं, इसलिये अपने स्वर्ग और नरक के निर्माता भी हम स्वयं ही हैं। स्वर्ग और नरक ईश्वर ने नहीं बनाये। ये कोई परिस्थितियां नहीं हैं। ये हमारी मनोदशाएं हैं। जो व्यक्ति प्रेम में जी रहा है, वह स्वर्ग में जी रहा है और जो घृणा, क्रोध व ईर्ष्या में जी रहा है; वह नरक में जी रहा है। हम सब एक संसार के वासी नहीं हैं। यहीं बहुत लोग नरक में जी रहे हैं और यहीं यदा–कदा कोई स्वर्ग में भी जीता है।

मेरे एक मित्र डैंटिस्ट हैं। थोड़े दिनों पहले वह मुझे एक क़िस्सा सुना रहे थे, जिसे सुनकर आँखों में आंसू आ गये। उन्होंने सुनाया कि एक रात्रि एक मरीज़ आया। वह बहुत बूढ़ा था। कोई 75–80 साल उसकी उम्र रही होगी। उसने कहा कि डॉ. साहब मेरे दाँत में बड़ी तकलीफ़ है। पहले कम थी लेकिन अभी घंटेभर से बहुत ज़्यादा हो गई है। दर्द की दवाई भी काम नहीं कर रही है इसलिए मुझे रात में आना पड़ा। डैंटल सर्जन ने चैकअप किया और कहा कि इस दाँत को उखाड़ना पड़ेगा। उस बूढ़े आदमी ने पूछा कि उखाड़ने में कितनी देर लगेगी? डेंटिस्ट ने कहा कि लगभग आधा घंटा लगेगा। उसके बाद जो ब्लीडिंग होगी, उसे रोकने के लिये कुछ दवाई देनी होगी। कुछ देर आपको बिठाकर रखना होगा।

उसने कहा कि ऐसा करिये, मैं एक घंटे बाद आता हूँ। मेरे पास समय नहीं है।

डॉ. ने कहा कि फिर तो मेरी क्लिनिक बंद हो जायेगी।

उस वृद्ध ने कहा कि कोई बात नहीं, कल सुबह आ जाऊँगा।

डॉ. ने पूछा कि आपको ऐसा कौन सा इमरजंसी काम है कि अभी जाना ही पड़ेगा?

उसने कहा कि मेरी पत्नी बीमार है और ये उसका डिनर का समय है। उसे दवाई भी देनी है और खाना भी खिलाना है।

डा. को हँसी आ गई कि बुढ़ापे में भी इतना प्रेम! पत्नी को ख़ुद खाना खिलाते हो... तुम्हारे परिवार में कोई अन्य सदस्य नहीं हैं?

वृद्ध ने कहा कि बेटा-बहू, नौकर-चाकर सब हैं; लेकिन पत्नी को खाना मैं ही खिलाता हूँ।

डॉ. ने कहा- 'अरे! बुढ़ापे में इतना इश्क़ पहली बार देख रहा हूं। क्या तुम्हारे बिना तुम्हारी पत्नी खाना नहीं खा सकती?'

बूढ़े ने बताया कि पत्नी तो बीमार है। छः महीने से उसे लकवा लगा है। वह तो किसी को पहचानती भी नहीं है। अब उसका दिमाग़ काम नहीं करता। मुझे ही उसकी केयर करनी होती है।

डॉ. ने उसे समझाया कि अभी दाँत उखाड़ना ज़्यादा ज़रूरी है। घर में फ़ोन कर दो। तुम्हारा बेटा, बहू, या मेड सर्वैंट कोई भी उसे खाना खिला देगा। वह तो किसी को पहचानती भी नहीं है, तो क्या फ़र्क़ पड़ता है?

बूढ़े ने कहा कि डॉ. साहब! वह बीमार है, वह मुझे नहीं पहचानती तो क्या हुआ; मैं तो उसको पहचानता हूँ। ज़िंदगी भर जिसने मेरी इतनी देखरेख की है, मुझे प्रेम से भोजन कराया है। रोज़ शाम को मेरा इंतज़ार करती थी कि मैं काम करके वापस लौटूंगा। वह भूखी बैठी रहती थी कि जब मैं आऊँगा तभी वह खाना खायेगी। आज वह बीमारी में मुझे नहीं पहचानती तो क्या हुआ? मैं तो उसे पहचानता हूँ। कोई बात नहीं, मैं रातभर दर्द सह लूँगा और सुबह आकर दाँत निकलवाऊँगा।

डैंटिस्ट हमदर्दी से बोला- ऐसी बात है, तो फिर मैं अभी क्लिनिक बंद नहीं करूंगा। आप पत्नी को भोजन करा के आइए। मैं आपकी प्रतीक्षा करता हूं।

इस दुनिया में ऐसे भले मानुष भी हैं। माना कि उनकी गिनती कम है। लेकिन हम में से प्रत्येक व्यक्ति ऐसे हृदय का मालिक हो सकता है। इतना भावपूर्ण हो सकता है। और तभी हमारा जीवन भरा-पूरा होगा। आज के प्रवचन का मैंने यही विषय चुना- 'प्रेम बिना यह जीवन सूना।' जब तक हमारी अंतरात्मा में ऐसा प्रेम न होगा, तब तक हमारा जीवन सूना ही रहेगा। हम कई प्रकार से इसे भरने की कोशिश करते हैं, लेकिन यह भरता नहीं।

कुछ दिन पहले मैं एक किताब पढ़ रहा था– सन् 1970 के दशक में अमेरिका के सबसे बड़े अरबपति की जीवनी। उस जमाने में दुनिया के सर्वाधिक अमीर आदमी ने अपने जीवन के अंतिम समय में लिखा है कि मैं बड़ा दीन–हीन और रिक्त मर रहा हूँ। जीवन का अंतिम समय आ गया है और मैं पाता हूँ कि मैं बिल्कुल ख़ाली हाथ हूँ। दूसरे लोग समझते हैं कि मैं बहुत सम्पन्न हूँ, लेकिन सच्चाई यह है कि मेरी ज़िंदगी बिल्कुल विपन्न है, ख़ाली है। इतनी थोथी ज़िंदगी शायद ही किसी की रही हो। मेरी धन–दौलत मेरी आत्मा को नहीं भर सकी।

पिछली सदी में एल्बर्ट आइंस्टीन, एक महानतम् वैज्ञानिक और श्रेष्ठतम् गणितज्ञ हुआ। शायद दोबारा ऐसा कोई गणितज्ञ हो कि न हो, कह नहीं सकते। मुश्किल ही लगता है। उसने पदार्थ और ऊर्जा के रूपांतरण का सूत्र निकाला, सापेक्षवाद जैसी अद्‌भुत खोज की, जिसका कोई मुक़ाबला नहीं। आइंस्टीन से बुढ़ापे में किसी ने पूछा कि क्या आप अगले जन्म में भी भौतिक शास्त्री, फ़िजिसिस्ट बनना पसंद करेंगे? आइंस्टीन ने अपने कान पकड़कर कहा कि भूलकर भी नहीं। मेरा जीवन बिल्कुल व्यर्थ गया है। मैं बहुत ही पश्चात्ताप से भरा हूँ। मेरे ही कारण परमाणु बम बना और मेरे ही कारण हिरोशिमा और नागासाकी में एक–एक लाख आदमी एक सैकंड में राख किए गए। अब दोबारा ऐसी ग़लती कभी नहीं करूँगा। बजाय एक फ़िज़िसिस्ट के, मैं किसी गाँव–देहात में एक छोटा–मोटा कारीगर होना पसंद करूँगा। अब वैज्ञानिक नहीं बनूंगा। मुझे नहीं चाहिए नोबेल प्राईज़। मुझे नहीं बनना गणितज्ञ। इसके बड़े दुष्परिणाम हुए। मैं पश्चात्ताप से, गिल्ट फ़ीलिंग से, अपराध–बोध से भरा हूँ। काश! मैंने ये खोज न की होती, तो परमाणु बम न बनता। दूसरों की नज़रों में दुनिया का इतना सफल व्यक्ति किंतु स्वयं की नज़रों में बिल्कुल असफल व अपराध–बोध से भरा हुआ हूं।

सिकंदर के बारे में आपने सुना होगा। जब वह मरा तो उसने कहा कि मेरे हाथ मेरी अर्थी के बाहर लटके रहने देना, ताकि दुनिया देख ले कि विश्वविजेता सिकंदर भी ख़ाली हाथ जा रहा है। ज़िंदगी में कोई भराव नहीं है। भिखमंगे की तरह जा रहा हूँ। इतनी लूटपाट की, इतना ख़ून–ख़राबा किया, इस समय जितना भी विश्व ज्ञात था उस सब पर विजय हासिल कर ली; लेकिन मेरी जीत नहीं हुई। मैं बुरी तरह हार कर जा रहा हूँ।

सैकंड वर्ल्ड वॅार में सबसे ख़तरनाक आदमी जर्मनी का तानाशाह हिटलर था। वह आज तक हुए सबसे शक्तिशाली आदमियों में प्रथम था। उसने पूरी दुनिया को हिलाकर रख दिया था। एक बार तो ऐसा लगा था कि शायद सारी दुनिया पर उसी का राज्य हो जायेगा। क़रीब–क़रीब ऐसी स्थिति बन गई थी। फिर अचानक परमाणु बम की वजह से बात पलटी। अगर परमाणु बम नहीं बना होता, तो हिटलर की जीत

सुनिश्चित थी। सारी दुनिया पर उसी का राज्य होता। इतना ताक़तवर आदमी! क्या आप जानते हैं कि जब उसने आत्महत्या करने की सोची, तो अंतिम काम उसने क्या किया? उसने कहा कि मैं एक लड़की के प्रति प्रेम से भरा हुआ हूँ। कई दिनों से उससे मिलने की, उससे बात करने की इच्छा थी। मैं उससे विवाह करना चाहता हूँ। उसने अपने सेना अधिकारियों को कहा– " जाओ, उस लड़की को उठा लाओ। एक पादरी को भी पकड़ लाओ।"

वैसा ही किया गया। पादरी आया और हिटलर ने आज्ञा दी कि अभी हमारी शादी करवाई जाए। चंद मिनटों में ही उनकी शादी की रस्म पूरी हुई। शादी के बाद हिटलर ने अपनी नवविवाहित पत्नी को ज़हर खिलाया, खुद भी ज़हर खाया और दोनों मर गये।

स्पष्ट है कि दुनिया का सर्वाधिक ताक़तवर इंसान बनकर भी उसके जीवन में भराव नहीं था। वह एक छोटे से प्रेम को पाने के लिये तरस रहा था। ये पाना भी कोई पाना हुआ! ये आदमी पागल है। क्या ऐसे ज़बरदस्ती किसी व्यक्ति को सेना अधिकारियों से उठवा कर विवाह होता है? पत्नी को ज़हर देकर मार डाला और खुद भी आत्मघात कर लिया। ये कोई प्रेम हुआ? ये तो घृणा का ही एक रूप हुआ। ये आदमी बिल्कुल विक्षिप्त कहलायेगा। लेकिन इस अंतिम घटना से हम समझ सकते हैं कि हिटलर के जीवन में कोई भराव नहीं था। सब सूना–सूना था। जिस आदमी ने 60 लाख यहूदियों की हत्या करवाई, क्या उसका जीवन भरा–पूरा होगा? यह तो महाअपराधी है। एक आदमी के ज़िम्मे इतनी हत्याएं! इतना बड़ा अपराध पहले कभी नहीं हुआ था। लेकिन इस घटना से समझ सकते हैं कि मरने के चार मिनट पहले जिसने शादी की, तो इसके जीवन में भी प्रेम के प्रति तड़प और लगन थी। थोड़ी ही सही, पर प्रेम की चाह तो थी। हिटलर बहुत दुष्ट आदमी था, लेकिन फिर भी उसके जीवन में बिना प्रेम के तृप्ति नहीं हो सकी। माना कि इसकी मनोदशा बिल्कुल विकृत है। लेकिन फिर भी हम समझ सकते हैं कि मनुष्य के प्राणों में प्रेम की कितनी गहरी चाहत है!

प्यारे मित्रो! न तो शक्ति से, न संपत्ति से, न ज्ञान से, न नोबेल प्राईज़ से और न ही विश्व को जीतकर; ऐसे किन्हीं भी तरीक़ों से जीवन में भराव नहीं आता। इस बात को ही स्पष्ट करने के लिये मैंने ये चार–पाँच बड़े–बड़े नाम आपके सामने प्रस्तुत किये। ताकि यह साफ़ हो जाए कि चाहे हम कितनी भी संपत्ति कमा लें, चाहे हम कितना ही नाम और प्रतिष्ठा कमा लें, चाहे हम दुनिया के कितने बड़े से बड़े पुरस्कार जीत लें, चाहे हम सारी दुनिया पर शासन कर लें, लेकिन तब तक जीवन में संतोष नहीं होगा; जब तक कि हम अपने इर्द–गिर्द प्रेमपूर्ण माहौल निर्मित न कर लें।

जब तक हम स्वयं प्रेम से न भर जाएं, जब तक हमें ऐसा न लगे कि लोग मुझे प्यार करते हैं और मैं भी कुछ लोगों को प्यार करता हूँ; तब तक, जीवन में पूर्णता का अहसास नहीं आ सकता। हमारा जीवन रूखा–सूखा व सूना ही रहेगा। ये जो चार–पाँच नाम मैंने गिनाए हैं, इसका ठीक विपरीत भी देखें। उन लोगों को देखें जिनके पास न धन था, न पद था, न कोई शक्ति थी और न ही कोई ज्ञान था। फिर भी, इन लोगों का जीवन भरा–पूरा था। संत कबीर के जीवन में तो अद्‌भुत भराव है। बाहर से तो बिल्कुल दीन–दरिद्र एक साधारण जुलाहे हैं। गाँव के अनपढ़ व्यक्ति हैं। इन्हें तो हस्ताक्षर करना भी नहीं आता। लेकिन इनसे बड़ा ज्ञानी आज तक तो कोई नहीं हुआ। ये तो ब्रह्मज्ञानी हैं। अक्षर ज्ञान नहीं है लेकिन उस अविनाशी को, वास्तविक अक्षर को, ब्रह्म को जान लिया। पोथियां तो नहीं पढ़ीं लेकिन असली चीज़ इन्होंने पढ़ ली। कहते हैं–

'पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।'

जिसने ढाई आखर प्रेम का पढ़ लिया, उसके जीवन में भराव आता है। कबीर के जीवन में हम पाते हैं कि कोई पश्चात्ताप नहीं है। आनंदमय जीवन है। आज तक जितने भी आनंदित लोग हुए हैं, जिनका जीवन उत्सवपूर्ण रहा है; उनके जीवन की आधारशिला प्रेम पर ही खड़ी हुई है। हमने जीवन की इमारत को प्रेम के अतिरिक्त किसी और बुनियाद पर निर्मित करने की कोशिश की, तो पाया कि वह ताश का महल साबित होता है। ज़रा हवा चली और सब धराशायी हो जाता है।

दुनिया में ऐसे लोग भी हुए हैं, जिनका जीवन भरा–पूरा, आनंदमग्न रहा है। ऐसे ही राजस्थान में मीराबाई हुई हैं। वह परमात्मा के प्रति अद्‌भुत प्रेम में डूबी हुई थीं। उनके जीवन में कोई कमी नहीं है। एक मनुष्य का जीवन जैसा होना चाहिए, उसका क्लाईमैक्स, उसका शिखर उन्होंने छू लिया है। कहती हैं–

'पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।'

दुनिया का बड़े से बड़ा धन– परमात्मा पा लिया। इससे आगे कुछ भी नहीं है। इनके जीवन में नृत्य है, गान है, हँसी है, मुस्कुराहट है, आनंद है, उत्सव है। ये इतनी अद्‌भुत हैं कि इन्हें कष्ट भी दो, तो भी इन्हें कष्ट नहीं पहुँचता। राणा ने मारने हेतु ज़हर भेजा। वे गाती हैं–

'विष का प्याला राणा जी भेज्यो।
पीवत मीरा हांसी रे।।'

ग़ज़ब है इनकी हँसी! ज़रूर इन्होंने भीतर कोई अमृत तत्त्व जाना है, जो मर ही नहीं सकता। तभी इनको हँसी आ रही है कि राणा! तू भी क्या ग़ज़ब कर रहा है? तू

तो केवल शरीर को ही नष्ट कर सकता है। मेरे भीतर के उस प्रभु प्रेम को नष्ट नहीं कर सकता। वह तो अमर और अविनाशी है। तू ज़हर भेजने की और साँप भेजने की बेकार मेहनत कर रहा है। इससे कुछ नहीं होगा।

ईसामसीह को जब सूली पर लटका कर मारा जा रहा था, तो अंत में उन्होंने प्रभु से प्रार्थना की कि हे प्रभु! इन्हें क्षमा कर देना। इन बेचारों को पता नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं? ये अज्ञानी हैं। एक लाख लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। सब गालियां दे रहे थे, पत्थर फेंक रहे थे और अपमान कर रहे थे। लेकिन ईसा उनके लिये प्रार्थना कर रहे हैं। अपने हत्यारों के प्रति इतनी दया! इतनी करुणा! इस आदमी को आदमी कहें कि क्या कहें हम? हम तो उन्हें भी प्रेम नहीं कर पा रहे हैं, जो हमें प्रेम करते हैं। उनसे भी हमारा झगड़ा होता है। और ये आदमी अपने हत्यारों के प्रति भी करुणा भाव से भरा कह रहा है कि हे प्रभु! इन्हें क्षमा कर देना। ये बेचारे जानते नहीं कि ये क्या कर रहे हैं? ये सोच रहे हैं कि मेरे शरीर को मार डालेंगे तो मैं मर जाऊँगा। इन्हें पता ही नहीं कि ये मेरे भीतर के शाश्वत प्रेम को नष्ट कर ही नहीं सकते।

एक तरफ इस दुनिया में ऐसे लोग भी हुए हैं, जिनका जीवन भरा–पूरा है। जिनको मारकर भी हम नहीं मार सकते। और दूसरी तरफ़ अरबों–खरबों की भीड़ है, जो नाममात्र को जी रहे हैं। उनके जीवन में कोई हराभरापन नहीं है। बिल्कुल ख़ाली और रिक्त जीवन है। मृत्यु के क्षण में जो दुख होता है, वह दुख इस बात का नहीं होता कि मृत्यु कष्टदायी है। वह दुख इस बात का है कि 70–80 साल जीवन जीने का मौक़ा मिला था और हम ठीक से जिए ही नहीं। अभी तो जीवन में कोई तृप्ति, कोई संतोष नहीं मिला। और ये लो, मौत का समय आ गया, चलने की बेला आ गई। इस बात का दुख होता है।

एक डॉक्टर के रूप में मैंने सैंकड़ों लोगों को मरते देखा है। यही निरीक्षण में पाया है कि दुख मृत्यु का नहीं, दुख इस बात का होता है कि ज़िंदगी बेकार गई। इतना बड़ा अवसर मिला था और हमने व्यर्थ गंवाया। जिस चीज़ से भराव हो सकता था, वैसा कुछ हमने किया ही नहीं। हम ऐसे कार्यों में उलझे रहे, जिनसे कोई तृप्ति मिलने वाली नहीं थीं। ज़रा सोचो! ये आइंस्टीन, सिकंदर, हिटलर और अमेरिका का अरबपति; इनको मरते समय कैसा लगा होगा? वैसे ही लगा होगा, जैसे बाक़ी सात अरब लोगों को लगेगा। मृत्यु कष्टदायी होगी, लेकिन यह कष्ट मृत्यु का नहीं होगा। यह जीवन की व्यर्थता के बोध से उत्पन्न हुई पीड़ा होगी।

मित्रो! अगर इन ज्वलंत उदाहरणों से यह बात समझ में आती है, तो फिर क्यों न हम आज से ही एक नया संकल्प लें और एक नई समझ से अपना जीवन जीना शुरू करें। फिर हम वैसा ही जीवन जिएं, जिससे संतोष मिलता हो। जिससे हमारे जीवन में

तृप्ति हो। हम एक क्षण भी व्यर्थ क्यों गंवाएं? जो करने योग्य है, जो सार तत्त्व है, वही हमारे जीवन का उद्देश्य हो। तथाकथित धर्मों ने प्रेम, भाईचारा, दया, करुणा और सहानुभूति इत्यादि बातों को सिखाया तो बहुत है; लेकिन लोगों के जीवन में इसके परिणाम दिखाई नहीं देते। कहीं कुछ उलटा–पुलटा हो गया है। किताबों में, ग्रंथों में प्रेम की बड़ी महिमा है। लेकिन वास्तविक जीवन में यह प्रेम बिल्कुल भी दिखाई नहीं देता।

बहुतेरे तथाकथित धार्मिक साधु–महात्मा, लोगों को प्रेम के बारे में समझाते फिरते हैं। वे भाईचारा, सहानुभूति और सेवा इत्यादि की ख़ूब अच्छी–अच्छी बातें सिखाते हैं। लेकिन यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि यही वे लोग हैं, जो सांप्रदायिक दंगे करवाते हैं। यही हैं वे लोग जो कट्टरपंथी धार्मिक धारणाएं दिमाग़ में ठूंस–ठूंसकर लोगों को आतंकवादी बनाते हैं। दुनिया के दुर्भाग्य के लिये यही लोग ज़िम्मेदार हैं। यदि उनके सिद्धांतों का पालन नहीं हो पाता, तो लोगों पर ही दोषारोपण करते हैं कि भूल–चूक तुम्हारी है। हमारा सिद्धांत तो बिल्कुल ठीक है। तुम ही पालन नहीं कर रहे। तुम दोषी हो। मैं इस पर भी प्रश्नचिन्ह लगाना चाहूँगा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि सिद्धांत ही ग़लत है?

सतगुरु ओशो एक प्रवचन में बड़ी मज़ेदार कहानी कहते हैं कि पुराने ज़माने की बात है। राजाओं के युग में, राजमहल के पास से एक पंखा बेचनेवाला गुज़र रहा था और कह रहा था –'अद्‌भुत और अनूठे पंखे।' ऐसे पंखे जो आज तक न किसी ने देखे, न सुने और कीमत सौ रुपए! ये उस ज़माने की बात है, जब चार–छः आने में एक पूरे परिवार का दैनिक ख़र्च चल जाता था। उस समय सौ रुपए का पंखा! मुश्किल से दो पैसे भी उसकी क़ीमत न थी। राजा ने अपनी खिड़की में से झांककर देखा कि कौन है ये पंखेवाला? उसने देखा कि पंखे बेचनेवाला एक ग़रीब आदमी है और जो पंखे वह लिए हुए है, वे बिल्कुल ही साधारण पंखे हैं। राजा ने उत्सुकतापूर्वक अपने वज़ीर से कहा– 'बुलाओ उसे, देखें तो सौ रुपए का पंखा! इतना मंहगा पंखा कभी देखा–सुना नहीं।'

उस आदमी को बुलाया गया। राजा ने कहा– 'इस पंखे में सौ रुपए की क्या चीज़ है? ऐसे पंखे तो दो–दो पैसे में बिकते हैं।' उसने कहा– 'महाराज! इस पंखे की न्यूनतम सौ साल की गारंटी है। अगर इससे पहले टूट जाए, तो पूरे दाम वापिस। दाम क्या वापिस, अगर यह टूट जाए तो आप मुझे फांसी ही दे देना।'

राजा ने वह पंखा अपने हाथ में लेकर देखा। राजा को शक हुआ... इतना नाज़ुक है कि ज़ोर से पकड़ेंगे तो भी टूट जाएगा। उसमें किसी तरह की कोई ख़ूबी नज़र नहीं आ रही थी। अत्यंत साधारण पंखा था। चार छः दिन भी चल जाए तो मुश्किल– और यह कह रहा है सौ साल! राजा ने पूछा कि धोखाधड़ी तो नहीं कर रहे

हो? उसने कहा कि महाराज! आपको धोखा देकर मैं कहाँ जाऊँगा? मैं आपके राज्य का निवासी हूँ। आप कहिए तो मैं हफ़्तेभर बाद, दस दिन बाद पंखे की रिपोर्ट लेने के लिए आपके सामने हाज़िर हो जाऊँगा। अगर टूट जाए तो आप मुझे फांसी पर चढ़ा देना।

राजा हैरान था कि ये आदमी कितना झूठ बोल रहा है? लेकिन देखो तो कितने विश्वास के साथ अपनी बात कह रहा है। राजा ने कहा– 'मैं तुम्हारे पीछे एक जासूस लगा दूँगा। तुम कहीं भाग नहीं सकते।' उसने कहा– 'महाराज! महल के पीछे ही मेरी झोंपड़ी है। मैं कहीं दूर नहीं रहता और भागकर जाऊँगा भी कहाँ? आप राजा हैं। आप तो कहीं से भी मुझे पकड़वा लेंगे।' राजा ने कहा कि ठीक है! इसे सौ रुपए दिए जाएं और एक आदमी तलवार लेकर इसके घर के बाहर बिठा दिया जाय ताकि ये कहीं भाग न सके। उस आदमी से कहा गया कि एक हफ़्ते बाद हाज़िर हो जाना।

फिर, वही हुआ जो होना था। दो दिन में ही पंखे के टुकड़े–टुकड़े हो गए। डंडी अलग निकल गई और पंखियां अलग निकल गई। लेकिन वह आदमी बड़ी शान से आया। राजा उसे देखकर हैरान हुआ कि यह तो बड़ी अकड़ से आ रहा है। उसने आते ही कहा– 'कहिए महाराज! कहाँ है पंखा?' राजा ने बहुत गुस्से में कहा कि ये देखो, उसके टुकड़े पड़े हैं। तुम तो सौ साल की गारंटी लेते थे। लेकिन तुम कैसे आदमी हो? इतने विश्वासपूर्वक चले आए। हम तो सोच रहे थे कि भाग गए होंगे।

उसने हैरानी से कहा कि अरे! पंखा टूट गया! आश्चर्य! आप किस विधि से पंखा करते थे?

राजा ने कहा– 'लो! अब यह भी तुमसे सीखना पड़ेगा कि पंखा कैसे करना है? अरे! पंखा पकड़ के ऐसे हिलाते थे और कैसे करते थे?'

उस आदमी ने अपना माथा ठोक लिया। उसने कहा कि यहीं तो सारी ग़लती हो गई। आपको तो ठीक ढंग से पंखा करना भी नहीं आता।

राजा ने पूछा– 'भाई! और कैसे पंखा करते हैं?' उसने बताया कि इसको करने की विधि ऐसी है कि इसे हाथ में बिल्कुल धीरे से पकड़िए और अपना सिर हिलाएं। सौ साल की गारंटी है कि आपकी गर्दन भले ही टूट जाए, पंखा नहीं टूटने वाला। दोष तो आपका ही है। आपने ठीक ढंग से इस्तेमाल नहीं किया। आपका विधि–विधान सरासर ग़लत है।

ठीक ऐसे ही हमारे पास भी क़रीब–क़रीब पिछले दस हज़ार सालों से अनेक धर्म हैं। मनुष्य जाति के पास कई महान् धर्म हैं और उनकी बड़ी ऊंची शिक्षाएं हैं। जिस प्रकार की मनुष्य जाति है, उसमें और इनमें कोई मैचिंग नहीं बैठती। ये युद्ध करने वाला आदमी, ये आतंकवादी, ये ख़ून–ख़राबा करने वाला आदमी, ये साम्प्रदायिक

दंगे–फ़साद करने वाला आदमी, ये जाति और रंग भेद करने वाला आदमी, ये शोषण करने वाला अत्याचारी आदमी, बलात्कारी आदमी, युद्धख़ोर शैतान... और भगवान के महान् सिद्धांत! बिल्कुल गारंटी वाले पंखे!! मगर दोष हमीं पर लगेगा कि हम शिक्षाओं का पालन ठीक से नहीं करते।

मैं जिस घर में ठहरा था, कल वहाँ की गृहिणी कहने लगी कि स्वामी जी! कुछ ज्ञान की बातें बताइए। मैंने कहा कि थोड़ा–सा तो मेरा ज्ञान है और वह मैंने कल सत्संग के लिए बचाकर रखा है। अभी आपको शाम को ही दे दूँगा, तो कल वहाँ क्या करूँगा? वे कहने लगीं कि आप कैसी मज़ाक़ की बातें कर रहें हैं? कुछ दो–चार अच्छी–अच्छी बातें हमें बताइए न!

मैंने उनसे कहा कि ऐसा करो, दो बातें समझ लो। एक तो चौबीस घंटे में कम से कम चार बार झूठ बोला करो। वह थोड़ी चौंकी। झूठ बोला करो! मैंने कहा कि हाँ, और दूसरी शिक्षा यह कि चौबीस घंटे में कम से कम दो बार लड़ लिया करो। घर–परिवार में झगड़ा–फ़साद कर लिया करो।

वह बोली– 'आप क्या कह रहे हैं?'

मैंने कहा कि मैंने अपनी शिक्षा बदल दी है। अच्छी बातें सिखाते–सिखाते मुझे सालों–साल हो गए। बुढ़ापा आ गया। लेकिन कोई मानता ही नहीं। इसमें शिष्यों को भी गिल्ट फीलिंग होती है कि गुरु जी की बात हम पूरी नहीं कर पा रहे हैं और मुझे भी निरर्थक सा प्रतीत होता है। जब कोई एक आदमी भी मेरी बात नहीं मान रहा, तो मैंने अब अपनी शिक्षा बदल ली है।

वह कहने लगी कि नहीं, आप मज़ाक़ कर रहे हैं।

मैंने कहा– 'नहीं, मैं मज़ाक़ नहीं कर रहा हूँ। आप दो बार लड़ाई–झगड़ा किया करें और चार बार झूठ बोला करें।'

वह पूछने लगी कि ये सब तो हम पहले से ही कर ही रहे हैं। इसमें कौन सी नई बात?

मैंने कहा कि देखो! मैंने गिनती पर रिस्ट्रिक्शन लगाया है। सिर्फ चार बार। इससे ज़्यादा झूठ नहीं बोलना है और दो बार से ज़्यादा क्रोध नहीं करना है– आप कितनी बार करती हैं?

उसने कहा– 'हम तो इससे बहुत ज़्यादा करते हैं। गिनती का हिसाब नहीं रखते।'

मैंने कहा कि यही मेरी शिक्षा है कि थोड़ा कम करो। गिनती के हिसाब से चलो।

वह बोली– 'अच्छा, तो यह मतलब है आपका। मैं ज़रूर ध्यान रखूंगी। इतना तो मैं कर ही सकती हूं।'

प्यारे मित्रो! दस हज़ार सालों से हमारे धर्मग्रंथ जो शिक्षा हमें दे रहे हैं, वह हमारे जीवन पर लागू नहीं हो पाई। इस बात को ख़ूब अच्छे से समझना कि ये पंखा हमारे लिए हवा नहीं कर पाया और सारा का सारा दोष हम पर ही लगता है कि हम पालन नहीं कर पा रहे। कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह शिक्षा पालन करने योग्य ही नहीं है। इसमें कोई भूल–चूक है। मैं आपके सम्मुख यह प्रश्न भी रखना चाहता हूँ कि कहीं ऐसा तो नहीं कि भाईचारे के, विश्व–बंधुत्व के, वसुधैव कुटुम्बकम् के, शांति, प्रेम, करुणा और सेवा के जो सिद्धांत हमें सिखाए गये हैं; उनका पालन करना संभव ही नहीं है। देयर इज सम इंट्रिंज़िक इंपोसिबिलिटी। उसमें कुछ अंदरूनी ऐसी बात है जो कि असंभव है। जो हो ही नहीं सकती। इन बातों पर भी मैं थोड़ा विस्तार से जाना चाहूँगा कि ऐसा क्यों हुआ है?

दुनिया में इतनी शांतिवार्ताएं होती हैं लेकिन परिणाम कुछ भी नहीं होता। दूर की छोड़ो, हिंदुस्तान–पाकिस्तान के संबंधों पर ही नज़र डालो। मेरी उम्र पचपन साल की हो गई। बचपन से मैं सुनता आ रहा हूं कि भारत–पाक की शांतिवार्ता हो रही है। आख़िर इसका कुछ परिणाम क्यों नहीं होता? जब भी होता है तो हमेशा युद्ध ही होता है। बातें शांति की, कर्म अशांति के! मुंह में राम, बगल में छुरी!!

फर्स्ट वर्ल्ड वॉर हुआ। उसके बाद विश्वशांति के बड़े उपाय खोजे गए। अंतर्राष्ट्रीय तल पर संस्थाएँ बनीं कि विश्वशांति कैसे हो? इसके बाद 20–25 साल भी नहीं गुज़रे और सैकंड वर्ल्ड वॉर शुरू हो गया। फिर बन गया यूनाईटिड नेशन्स। विश्वशांति के प्रयास जारी हैं लेकिन परिणाम कुछ भी नहीं। फिर एक दिन थर्ड वर्ल्ड वॉर शुरू हो जाएगा। हम प्रयास कुछ करते हैं, बातचीत कुछ करते हैं और होता कुछ विपरीत ही है। हमारे इंटैंशन और हमारे एक्शन में कोई तालमेल ही नहीं है। यदि हम एक–एक आदमी से पूछें कि आपके इरादे क्या हैं, तो सभी लोग बताएंगे कि हमारे इरादे बहुत अच्छे हैं। दुनिया में एक भी आदमी ऐसा नहीं मिलता, जो कहे कि हमारे इरादे खराब हैं। लेकिन कुल मिलाकर पूरी मनुष्य जाति को देखो क्या हो रहा है? सब ख़राब ही ख़राब हो रहा है। कुछ भी अच्छा नहीं हो रहा।

तो, मैं एक संदेह आपके मन में पैदा करना चाहता हूँ। कहीं ऐसा तो नहीं कि हमारे सिद्धांत में ही कोई भूल–चूक हो। कोई आदमी कहे कि 'हमने तो अच्छे और मीठे आम के बीज बोए थे। पता नहीं कहाँ से ये नीम का पेड़ उग आया और कड़वे फल लग रहे हैं।' हम उस आदमी से क्या कहेंगे? हम यही कहेंगे कि तुमसे बीज पहचानने में कुछ भूल–चूक हुई होगी। वे मीठे आम के बीज नहीं रहे होंगे। फल से ही सिद्ध होगा कि बीज कैसे थे? इसके अतिरिक्त कोई और प्रमाण नहीं है। अगर फल ज़हरीले हैं, तो साबित

होता है कि बीज ज़हरीले थे। बीज छोटा–सा होता है। उस समय हम पहचान नहीं पाते कि यह कैसे फल देगा। ठीक इसी प्रकार, हमारी फिलॉसफ़ि और हमारा सिद्धांत बहुत सूक्ष्म और बारीक है। वर्तमान में बात हमारी पकड़ में नहीं आती– मीठा है कि कड़वा है, कुछ समझ में नहीं आता। लेकिन कालांतर में जब उसके फल आते हैं, तब पता चलता है कि कैसे फल आए?

मित्रो! मनुष्य जाति में जो फल आए हैं, ये 'सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम्' के फल नहीं हैं। किसी भी दिन का अख़बार उठाकर पढ़ लो, किसी भी दिन, दस मिनट की टीवी न्यूज़ सुन लो, तो पता लग जाएगा कि फल बहुत ही ज़हरीले हैं। जो नहीं होना चाहिए, वहीं–वहीं हो रहा है। सिद्धांत और सच्चाई में कोई तालमेल नहीं दिख रहा है, इसलिए हमें शक पैदा करना चाहिए कि जो बीज हमने बोए थे, वे सही नहीं थे। उनमें अवश्य कुछ भूल–चूक हो गई है। वरना इतनी ख़राब फ़सल कैसे आती? मनुष्य से ज़्यादा प्रेमपूर्ण तो पशु–पक्षी और पेड़–पौधे नज़र आते हैं–जिनके पास न कोई सभ्यता है, न संस्कृति है, और न कोई धर्म है। इतना हिंसक तो कोई पशु भी नहीं है। पशु जब भूखे होते हैं, तब हिंसा करते हैं। आदमी ही एक ऐसा जानवर है, जो भरे पेट भी हिंसा करता है और दूसरे को अकारण तकलीफ़ पहुँचाने में रस लेता है।

पशु बलात्कार और गैंग–रेप नहीं करते, होमोसैक्शुअल नहीं बनते। मांसाहारी जानवर भी भरे पेट हत्या नहीं करते। कोई पशु अस्त्र–शस्त्र नहीं बनाते। अणुबम, परमाणुबम, जीवाणुबम नहीं बनाते। बेचारे अनपढ़ पशु साम्प्रदायिक दंगे नहीं करते। जंगली कहे जाने वाले असभ्य जानवरों को वर्ल्ड–वॉर करना नहीं आता। उनकी हिंसा तो क्षम्य है, क्योंकि उनकी हिंसा किसी को कष्ट पहुँचाने के लिए नहीं, बल्कि अपनी भूख मिटाने के लिए होती है। सभ्य–सुसंस्कृत आदमी ही ऐसा विचित्र प्राणी है, जो बेवजह ख़ून–ख़राबा करता है। ये आदमी पिछले दस हज़ार सालों से कह रहा है कि हम विकसित हो रहे हैं, धार्मिक बन रहे हैं। मुझे शक होता है कि यह कैसी सभ्यता है! अगर यही शिक्षा, संस्कार व धर्म है, तो इससे अच्छा है कि असभ्य व अधार्मिक हो जाओ।

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ बहुत मज़ाक़िया क़िस्म का अद्भुत आदमी हुआ। उससे एक बार किसी पत्रकार ने पूछा कि सभ्यता और संस्कृति के बारे में आपका क्या ख़्याल है? व्हाट इज़ योर आइडिया अबाउट द कल्चर? बर्नार्ड शॉ ने कड़े कटाक्षपूर्ण, व्यंग्यात्मक शैली में कहा– 'इट्स ए ग्रेट आइडिया। लैट अस सी, वैन इट गैट्स एक्चुअलाइज़्ड!' यह ख़्याल तो बड़ा सुन्दर है। देखो, साकार कब होता है?

आज तक तो नहीं हो पाया। हम कहनेभर को शिक्षित और संस्कारित हैं। हमारे भीतर बहुत खूंख़ार प्राणी बैठा हुआ है। हम ऊपर–ऊपर से सज्जन और भले मानुष

नज़र आ रहे हैं। किंतु, आए दिन किन्हीं खास परिस्थितियों में हमारे भीतर का वह बर्बर शैतान प्रगट हो जाता है। हम नाममात्र को मनुष्य हैं। हमारा व्यवहार बस दिखावटी है। वास्तव में हम दूसरों के दुख में सुख लेने वाले, असंवेदनशील, कठोर, दुर्जन हैं। हमें अपनी वस्तुस्थिति को समझना होगा। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। वी कैन स्टार्ट ओनलि विद द फ़ैक्ट। तथ्य को नग्नता में जानना होगा। यह वास्तविकता है कि हमारे भीतर क्रोध, घृणा और नफ़रत है। हमारे भीतर ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, शोषण और तानाशाही प्रवृत्ति है। जब तक हम इन बीमारियों के प्रति सजग व सचेत नहीं होंगे; तब तक, हम इन्हें बदल भी नहीं पाएंगे। ऐसा मत समझना कि क्रोध तो कभी–कभी आता है; वैसे तो, मैं अच्छा आदमी हूँ। क्या करूँ, यदा–कदा गुस्सा करना ही पड़ता है। नहीं, यथार्थ यह है कि हमारे भीतर अंडरग्राऊण्ड क्रोध लगातार मौजूद है।

कोई कुआँ अगर ऐसा कहे कि वैसे तो मेरे भीतर पानी नहीं है, बिल्कुल सूखा हूँ; परंतु कभी–कभार जब कोई दुष्ट बाल्टी में रस्सी बांधकर मेरे अंदर बाल्टी डालता और ऊपर खींचता है; तभी, पानी आ जाता है। हम उस कुएँ को क्या कहेंगे? हम यही कहेंगे कि तुम 'निर्जल' होने के धोखे में हो। रस्सी और बाल्टी, पानी पैदा नहीं कर सकते। कुएँ में पानी होना चाहिए, तो ही बाल्टी पानी निकाल सकती है। बाल्टी की इतनी क्षमता नहीं है कि सूखे कुएँ में से पानी निकाल सके।

जब हम कहते हैं कि वह फलां आदमी आया था और उसने ऐसा–ऐसा कह दिया, इसलिए मुझे गुस्सा आ गया; तब, हम बाल्टी पर दोष लगा रहे हैं। हम कह रहे हैं कि मैं क्रोधी आदमी थोड़ी हूँ; मैं तो बहुत अच्छा आदमी हूँ। सारी ग़लती उस नासमझ आदमी की है। उसने आकर ऐसा–ऐसा कह दिया, तो उसको डाँटना–डपटना पड़ा। मेरा गुस्सा करना उचित था। मैं हमेशा गुस्से में नहीं रहता हूँ। वह तो बेवकूफ़ों को सबक़ सिखाने के लिए, बिगड़े हुओं को सुधारने के लिए नाराज़ होना पड़ता है।

अगर गुस्सा हमेशा मेरे भीतर मौजूद नहीं रहता, तो वह आदमी मेरा अपमान करके भी मेरे भीतर से क्रोध पैदा नहीं कर सकता था। इस बात को ख़ूब अच्छे से समझ लें। हाँ! मीराबाई और ईसामसीह के भीतर क्रोध नहीं हो सकता। ये लोग कह सकते हैं कि इनके भीतर क्रोध नहीं है। मीराबाई कहती हैं–

'अंसुवन जल सींच सींच, प्रेम बेल बोई।
अब तो बेल फैल गई, आनंद फल होई।।'

इनका कहना ठीक है। इनके भीतर आनंद ही आनंद है, प्रेम ही प्रेम है। इन्हें कोई दुखी नहीं कर सकता। इन्हें कोई क्रोध से नहीं भर सकता। कोई इनकी हत्या भी कर दे तो भी इनके आनंद में, इनके प्रेम में, इनकी करुणा में कमी नहीं आएगी। आप जानते होंगे कि भगवान बुद्ध की मृत्यु ज़हरीला भोजन करने से हुई थी। उन्हें एक बहुत ग़रीब

आदमी ने निमंत्रण दिया था कि मेरे घर आकर भोजन करिए। बुद्ध वहाँ पहुँचे और उसने भोजन परोसा। बहुत ग़रीब आदमी था। बिहार के उस दरिद्र इलाक़े में ग़रीब लोगों के पास अन्य कोई सब्ज़ियाँ नहीं होतीं थीं। कुकुरमुत्ते के पौधे, जो सड़ी–गली ज़मीन में, पुरानी गीली लकड़ियों पर, कूड़े–कचरे में उग आते हैं; उसी को बटोरकर ग़रीब आदमी सब्ज़ी बना लेते थे। उस आदमी के पास कुछ और नहीं था। केवल कुकुरमुत्ते की सब्ज़ी थी। लेकिन संयोग की बात कि कभी–कभी कोई कुकुरमुत्ता विषैला भी होता है, जिससे फ़ूड पोईज़निंग हो जाती है। उस ग़रीब आदमी ने बुद्ध को भोजन करा दिया। बुद्ध ने बड़े प्यार से भोजन किया। यद्यपि, स्वाद लेते ही समझ तो गये थे कि कड़वा–ज़हरीला है, लेकिन देखा कि इस ग़रीब आदमी के पास कुछ और नहीं है। केवल दो–तीन सूखी रोटियाँ और एक ही सब्ज़ी है। अगर इसको कहेंगे कि इसका स्वाद ठीक नहीं है, तो ये बेचारा बहुत दुखी हो जाएगा। उसके पास तो कुछ और है ही नहीं, तो ये दूसरी सब्ज़ी कहाँ से लाएगा? बुद्ध ने चुपचाप भोजन कर लिया कि कहीं वह निराश न हो जाए।

जैसे ही बुद्ध उसके घर से अपने शिष्यों के बीच वापिस लौटे तो उन्होंने कहा कि आज ऐसी–ऐसी घटना हो गई। उस बेचारे ने मुझे बड़े प्रेम से बुलाया था। यह सोचकर कि कहीं उसे दुख न हो जाए, मैंने वह भोजन कर लिया। यह मेरे जीवन का आख़िरी भोजन था। कहीं ऐसा न हो कि मेरे चाहने वाले लोग उस पर नाराज़ हो जाएं। इसलिए जाओ और पूरे गांव में डुंडी पीटो कि धन्यभागी हैं वे लोग, जो किसी बुद्ध पुरुष को, ब्रह्मज्ञानी को प्रथम और अंतिम भोजन कराते हैं। प्रथम भोजन मेरी माँ ने कराया था, दूध पिलाकर। वह सौभाग्यशाली थी। यह अंतिम भोजन इस आदमी ने कराया, यह महासौभाग्यशाली है। इसकी पूजा करना, इसको सम्मान देना। जल्दी जाओ, पूरे गाँव में डुंडी पीट दो क्योंकि मैं तो शाम तक विदा हो जाऊँगा। ऐसा लग रहा है, जैसे ज़हर का असर शुरू हो गया है। कहीं ऐसा न हो कि मेरे मरने के बाद लोग उससे बदला लें।

यह है करुणावान आदमी! इसे हम कह सकते हैं– प्रेमपूर्ण। यह है असली सभ्य और सुसंस्कृत आदमी! यह है सच्चा धार्मिक आदमी। ऐसे लोग दुनिया में बहुत कम ही सही, लेकिन हुए हैं और इससे बड़ी आशा जगती है कि अगर दो–चार आदमी भी ऐसे हुए, तो हम भी हो सकते हैं। आख़िर, वह भी तो हमारे जैसे आदमी थे। ईसामसीह भी तो दो हाथ, दो पैर वाले हमारे जैसे ही इंसान थे। बुद्ध भी तो हमारे जैसे मनुष्य थे। उनके पास भी दो कान और दो आँखें थीं। मीराबाई भी हमारे जैसी थीं। जैसे हमारी साँस चलती है, वैसे ही उनकी साँस चलती थी। जैसे हमारा हृदय धड़कता है, वैसे ही उनका हृदय धड़कता था। अगर उनके हृदय में इतना अद्‌भुत प्रेम जन्म सकता है, तो हमारे भीतर क्यों उत्पन्न नहीं हो सकता?

निराश होने की बिल्कुल भी ज़रूरत नहीं है। बहुत कुछ श्रेष्ठतर हो सकता है और होना ही चाहिए। एक बार अगर बात समझ में आ गई, तो कुछ बेहतर होकर ही रहेगा। सबसे पहली बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि बीज का दोष है, ज़मीन का दोष है। ठीक पानी नहीं मिला, ठीक खाद नहीं मिली, इसका दोष है; अन्यथा, हमारे जीवन में भी मीरा जैसे होने की संभावना थी। हम भी ईसा जैसे हो सकते थे। ठीक खाद-पानी, ठीक उर्वर-भूमि मिल जाए, तो आज भी हमारे भीतर प्रबल संभावना है। लेकिन वह संभावना हमें स्वयं ही निर्मित करनी होगी।

पहली बात, हमारे सिद्धांतों में बुनियादी ग़लती है। हमारे सिद्धांत कहते हैं कि जो लोग संसार के प्रति वैराग्य से भरे हैं, विरक्त हो गए हैं, वैरागी या त्यागी हो गए हैं, दुनिया को छोड़ के चले गए हैं; उनके प्रति सम्मान रखो। हमें यही सिखाया गया है कि जो साधु-महात्मा दुनिया छोड़ कर जंगल-पर्वत पर चले गए हैं, घर-परिवार से विरक्त हो गए हैं, जिन्होंने काम-धंधा छोड़ दिया है, घर-परिवार व समाज त्याग दिया है, जो कहते हैं कि हम वैरागी हैं; उनके प्रति सम्मान रखो।

सावधान! अभी तक हम इन्हीं का सम्मान करते रहे हैं। हमने प्रेमपूर्ण आदमियों का सम्मान नहीं किया है। हमने उन लोगों का सम्मान नहीं किया है, जो अपने घर-परिवार की ज़िम्मेवारी निभा रहे हैं। हमने ग़लत लोगों को श्रद्धा और सम्मान दिया है। अगर इन वैरागियों का सम्मान है, तो फिर हमारे भीतर भी वही प्रेम-विरोधी भावना पैदा होने लगेगी। अगर इन त्यागियों का सम्मान है, तो वास्तव में हम त्याग का सम्मान कर रहे हैं, अर्थात हम प्रेम का अपमान कर रहे हैं।

त्याग और प्रेम, विरक्ति और आसक्ति तो एक दूसरे के विपरीत हैं। प्रेम में तो आसक्ति होती है, लगाव होता है। हमने आज तक उन लोगों के चरण छुए हैं, जो वैरागी हो गए हैं, जो प्रेमपूर्ण नहीं थे, जिन्हें अपने परिजनों की ज़रा भी फ़िक्र न थी और जो अपने बूढ़े माता-पिता को छोड़कर चले गए। इन निर्दयी लोगों ने कभी नहीं सोचा कि उन पर क्या गुज़रेगी, जिन्होंने इन्हें पालपोस कर बड़ा किया। जिन्होंने सोचा था कि बुढ़ापे में बेटा लाठी का सहारा बनेगा, वह बेटा महात्मा बन गया। उन माता-पिता पर क्या गुज़री होगी? जिस पत्नी को सात फेरे लगाकर ब्याहकर लाए थे, क़सम खाई थी कि जीवनभर इसकी देखभाल करूँगा, उस पत्नी पर क्या बीती होगी? पति के रहते हुए उसे विधवा जैसा जीवन जीना पड़ा होगा। बच्चों पर क्या गुज़री होगी? उनका बाप ज़िंदा है और वे अनाथ जैसा जीवन जिए होंगे। पता नहीं निरीह बच्चों को भीख मांगनी पड़ी होगी या लाचार पत्नी को वेश्या बन जाना पड़ा होगा? जो आदमी उन्हें छोड़कर पलायन कर गया, वह बहुत ही दुष्ट क़िस्म का होगा! साधारण दुष्ट भी नहीं, बहुत ज़्यादा कठोर, पाषाण-हृदय, संग-दिल। न इसे पत्नी से प्रेम है, न माता-पिता से, न

भाई–बहनों से और न ही अपनी संतान से प्रेम है। यह सारी ज़िम्मेवारियाँ और उत्तरदायित्व छोड़कर भाग खड़ा हुआ है।

हमसे बहुत भारी भूल हो गयी है। हमने ऐसे भगोड़ों को सम्मान दिया है, जो प्रेम के ख़िलाफ़ रहे हैं। अब जागो, चौंको! फिर यही लोग हम पर दोषारोपण करते हैं कि तुम्हें पंखा झलने की विधि नहीं आती। सिद्धांत में ही ग़लती है। इन्हीं साधु–महात्माओं की मूर्तियाँ चौराहों पर लगी हैं। कभी आपने देखा है कि किसी प्रेमी व्यक्ति की मूर्ति चौराहे पर लगी हो। हमारे मन में प्रेम के प्रति ज़रा भी आदर नहीं है। जिस चीज़ के प्रति सम्मान नहीं, वह चीज़ हमारे हृदय में पैदा कैसे होगी?

मित्रो, सतर्क हो जाओ! यह पंखा ही ग़लत है– सर्वथा ग़लत, आदि से अंत तक ग़लत है।

यही साधु–महात्मा धर्मग्रंथ लिख गए हैं। इन्होंने ही शास्त्रों का निर्माण किया है। यही दार्शनिक हैं। यही लोग फिलॉसफ़ी और सिद्धांत बना गए हैं और हम इनका पालन कर–करके परेशान हैं। इन सिद्धांतों से हमारे जीवन में कोई सद्परिणाम नहीं आता और फिर ये हम पर ही दोष लगाते हैं कि तुम्हें पंखा झलने की विधि नहीं आती। तुम गिल्टी हो, तुम अपराधी हो, तुम पापी हो। हमारी शिक्षा तो बहुत महान् है, लेकिन तुम ठीक से पालन ही नहीं करते।

आप अपने भीतर टटोलना कि क्या आपके भीतर भी त्यागियों के प्रति, वैरागियों के प्रति, पलायनवादियों के प्रति सम्मान है? यदि ऐसा है, तो फिर ज़हरीला बीज आपके हृदय में बोया जा चुका है। अब आपको सावधान होकर इस बीज को उखाड़ फेंकना होगा। प्रेम का और प्रेम करने वालों का सम्मान करना होगा। अगर हमें इस दुनिया की सूरत बदलकर एक बेहतर दुनिया बसानी है और एक स्वर्ग इस धरती पर उतारना है, तो हमें अपने जीवन–मूल्य बदलने होंगे। बहुत हो गया सम्मान इन दुर्जन, पाखंडी लोगों का! अब बंद भी करो! हमेशा शहीदों का सम्मान होता है। क्या कभी जीवित आदमी का सम्मान होते देखा है? हमारे मन में जीवन का अपमान है और मरे हुए का सम्मान है। हम मृत्यु–पूजक, घृणा–पूजक और द्वेष–पूजक हैं। हम ईर्ष्या के पुजारी हैं। वस्तुतः हम सिकंदर और हिटलर के उपासक हैं। इसी कुरूप तथ्य को छिपाने के लिए हम ईसा की, राम की और गुरुनानक की पूजा करते हैं।

हम छोटे–छोटे बच्चों को भी ईर्ष्या करना सिखा रहे हैं– बेटा, क्लास में फर्स्ट आना। क्या आपको पता है कि ऐसा कहकर हम बच्चे के हृदय में ईर्ष्या के बीज बो रहे हैं? अब यह बच्चा अपने सारे संगी–साथियों के प्रति प्रतियोगिता की भावना रखेगा और इनके प्रति जलन से भरेगा। उसके मन में यह भाव आ गया कि इनसे आगे निकलना है। अब ये सब उसके दुश्मन हो गए। कहने को तो बच्चे कह रहे हैं कि ये हमारे

क्लासमेट हैं, हमारे फ्रैंड्स हैं। लेकिन ये फ्रैंड्स कैसे हो सकते हैं? यही तो उसके असली शत्रु हैं। इन्हीं से तो उसे आगे निकलना है।

एक सूफ़ी फ़क़ीर बायजीद हुआ। उसके ज़माने में जो शहंशाह था, वह कट्टरपंथी मुसलमान था। वह सूफ़ियों के सख़्त ख़िलाफ़ था। सूफ़ी बड़े प्रेमी क़िस्म के लोग होते हैं। प्रेम ही उनकी आराधना है। शहंशाह ने चार सूफ़ी फ़क़ीरों को पकड़वाकर उन्हें मृत्युदंड देना घोषित कर दिया था। महीनेभर जेल में रहने के बाद अब वह तारीख़ भी आ गई जब उन्हें फाँसी पर चढ़ाया जाना था। चारों बैठे हुए थे और जल्लाद ने आवाज़ लगाई। उन्हें फाँसी के लिए एक-एक करके बुलाया जा रहा था। नूर नाम के फ़क़ीर को सबसे पहले आवाज़ लगाई गई कि वह आए और सीढ़ियों पर चढ़कर फाँसी के फंदे की तरफ़ आगे बढ़े। नूर बहुत बूढ़ा था और बुढ़ापे में बहरा हो गया था। उसे सुनाई कम देता था। जब नूर का नाम लेकर बुलाया गया, तो बायजीद सबसे पहले उठा और सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। जब वह फाँसी के फंदे के पास पहुँचा तो जल्लाद ने उसे पहचान कर कहा कि तुम तो नूर नहीं हो। मैं तुम्हें पहचानता हूँ। तुम्हारा नाम बायजीद है। उसने कहा कि भूल जाइए उस नाम को। फ़िलहाल मेरा नाम नूर है। अरे! नाम में क्या रखा है? माता-पिता नाम रखते हैं। नाम तो ए-बी-सी-डी कुछ भी हो सकता है। मेरा नाम ही नूर समझ लीजिए।

उस जल्लाद ने कहा- 'पागल हो क्या! मुझे पहले ही शक था कि सूफ़ी लोग पागल होते हैं। हद हो गई दीवानगी की! अभी तो नूर का नंबर आया है। तुम्हें मौत की इतनी जल्दी क्या पड़ी है कि ख़ुद फाँसी के फंदे की तरफ़ आ गए। अभी तो तुम्हारा नंबर भी नहीं आया।'

बायजीद ने कहा कि यही तो प्रेम का प्रमाण है कि जब जीवन का मौक़ा आए तो हम अपने मित्र को आगे कर दें और जब मौत का वक़्त आए तो हम ख़ुद आगे हो जाएं।

यदि बायजीद जैसा व्यक्ति कहे कि ये चार सूफ़ी मेरे मित्र हैं, तो बिल्कुल ठीक कहेगा। लेकिन हमारा बच्चा जब स्कूल में कहता है कि ये चालीस मेरे मित्र हैं, तो बिल्कुल झूठ कह रहा है क्योंकि हमने उसके मन में ईर्ष्या, प्रतियोगिता और तुलना के बीज भर दिए हैं। हमने कहा है कि इन सबसे आगे निकलना है। सारे सहपाठियों को हरा देना है, पीछे पछाड़ देना है।

यहां प्रवचन-हॉल में आने के पूर्व, मैं चाय पीने एक मित्र के घर गया था। उनकी छोटी बच्ची कविता सुना रही थी। मैंने उससे पूछा कि तुम्हारी क्लास में सबसे अच्छी कविता कौन सुनाता है? वह बोली-'मैं'। मैंने पूछा कि सबसे ज़्यादा होशियार कौन है? वह हंसते हुए बोली- 'मैं ही हूँ।' फिर मैंने पूछा- 'सबसे सुन्दर कौन है?' वह बहुत ही शरमा गई और बोली- 'सबसे सुन्दर भी मैं ही हूँ।' तब मैंने उससे कहा कि सबसे

ज़्यादा ताक़तवर भी तुम ही हो ना? उसने कहा–'हाँ, मैं ही हूँ। लेकिन आपको कैसे पता चल गया? आप तो सब जानते हैं, आपको जादू आता है!'

हंसना मत, इसमें बच्ची का दोष नहीं है। हमने उसे यही सिखाकर भेजा है कि नंबर–वन होना है। हर चीज़ में तुम्हें आगे होना है। इसका मतलब कि बाक़ी सब तुम्हारे शत्रु हैं। उन्हें धक्का मारकर पीछे कर देना। बचपन से ही हमने अपने बच्चों को यही सिखाया है कि हर प्रतियोगिता और क्लास में हमेशा फर्स्ट आना। चाहे ईमानदारी से, चाहे बेईमानी से, हर खेल में आगे निकलना और जीतना। जब यही बच्चे बड़े होकर देश की गंदी राजनीति का हिस्सा बनेंगे या फिर कोई धर्मगुरु बनेंगे, तब हम लोग ही कहेंगे कि ये ऐसा क्यों कर रहे हैं? इतना अत्याचार, भ्रष्टाचार, पाखंड, झूठ और बेईमानी! आखिर क्यों? तब हम भूल जाते हैं कि हमने ही इन्हें सिखाया है कि तुम्हें नंबर–एक बनना है। किस विधि से सफल हुए, सफल होने के बाद फिर कोई नहीं पूछेगा। 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं।' शक्ति–संपन्न, समर्थ व्यक्ति के सब गुणगान करते हैं। किसी प्रकार सबसे ऊँचे आसन पर पहुँच जाओ, यही हमारी सीख है। उच्च–कुर्सी को लक्ष्य बताने वाली हमारी शिक्षा–प्रणाली ही ज़हरीली है। हमने विषैले बीज बोए हैं और हम व्यर्थ उम्मीद लगाए बैठे हैं कि मीठे फल आएं। कहाँ से आएंगे मीठे फल? प्रकृति नियमानुसार चलती है, चमत्कार नहीं होते। चमत्कार केवल धूर्त और पाखंडी दिखाते हैं। बेचारी प्रकृति बड़ी सीधी–सादी व सरल है।

मैं किसी खास व्यक्ति को दोष नहीं देता कि यह व्यक्ति ग़लत, कि वह व्यक्ति ग़लत, कि कोई ख़ास राजनेता ग़लत, कि कोई विशिष्ट धर्मगुरु ग़लत। मैं तो पूरी सिखावन को ही दोष देता हूँ, जो हज़ारों वर्षों से इस प्रकार के व्यक्ति पैदा करती रही। आई डोंट ब्लेम द परसन। आई ब्लेम द होल सिस्टम। एक–एक व्यक्ति को दोष देने से क्या होगा? वे बेचारे तो खुद उस संस्कृति के शिकार हैं, जो अरबों लोगों को सिखाई जा रही है। उन्हें क्या सज़ा देनी? वे सब तो दया के पात्र हैं। वास्तविक दोष तो उस शिक्षा–प्रणाली का, उन धर्मों, उन सिद्धांतों, उन ग्रंथों का है; जो हमें इस प्रकार की शिक्षा देते रहे हैं। अगर हमने इन्हें नहीं बदला, तो इसी प्रकार के धर्मगुरु, राजनेता और इसी प्रकार के अफ़सर यहाँ पैदा होते रहेंगे। फिर कोई हिटलर होगा। फिर कोई चंगेज़ ख़ान बनेगा। फिर हम रोक नहीं सकेंगे।

क्या संस्कृति, संस्कृति कहलाने योग्य है या इसका नामकरण विकृति होना चाहिए! आपको दिखाई पड़ता है कि हमारी व्यवस्था में कुछ ग़लती है या हमारे सिद्धांतो में कोई भूल है? बंद करो यह कहना कि इस राजा ने पंखा तोड़ दिया, तो ये राजा ग़लत है। वास्तविकता तो यह है कि पंखा ही लचर–पचर, कमज़ोर है। हमारी सारी सभ्यता, संस्कृति और हज़ारों वर्षों की शिक्षा में ही भूल है। निश्चित ही यह बात

देखने के लिये हमें अत्यंत सतर्क होना होगा और बड़ी छानबीन करनी होगी। मेरे घंटाभर के इस छोटे से प्रवचन से कुछ होने वाला नहीं है। आपके मन में सवाल पैदा हो जाए, तो अपना यहां आना पर्याप्त समझूंगा।

हमें प्रत्येक मानवीय मूल्य को फ़िल्टर करना होगा। पुनर्विचार द्वारा छानबीन करनी होगी कि कौन–कौन सी चीज़ प्रेम के ख़िलाफ़ है और कौन–कौन सी चीज़ प्रेम व मैत्रीभाव के पक्ष में हैं? शायद आपको मनुष्य के अतीत में जीवन के पक्ष में कुछ भी न मिले। निराश न होना। संभवतः हमें पुराने सारे पेड़–पौधे उखाड़कर नये सिरे से, नये प्रकार के बीज बोने होंगे। निश्चित ही उसका खाद–पानी भी अलग ढंग का होगा। उसकी धूप और सुरक्षा का इंतज़ाम भी नूतन होगा।

पुराना इंतज़ाम, पूर्णतः असफल हो चुका है। संभावित थर्ड वर्ल्ड– वॉर, आख़िरी युद्ध होगा। क्योंकि अब इतने ख़तरनाक हथियार बन चुके हैं कि आगे कोई संभावना नहीं कि एक भी प्राणी ज़िंदा बचे। मनुष्य क्या... कीट– पतंगे भी जीवित नहीं बचेंगे। घास–पात भी शेष नहीं बचेगा। वह अंतिम युद्ध होगा। हमारी पूरी सभ्यता, संस्कृति, धर्मशिक्षा हमें जिस क्लाईमैक्स पर, चरम बिंदु पर ले जा रही है, वह है– तृतीय विश्व युद्ध– अंतिम विनाश, सामूहिक आत्मघात। ऐसा भी नहीं कि कोई जीतेगा या कोई हारेगा। इतने ख़तरनाक शस्त्र बन चुके हैं कि कोई नहीं बचने वाला।

हमें समय रहते पलटना होगा। हम जिस रास्ते पर आगे बढ़ रहे हैं, वह एक ब्लाइंड एण्ड पर जाकर ख़त्म होता है। अतः हमें अत्यंत सचेत होकर अपनी दिशा बदलनी होगी। निश्चित रूप से हमें अपने तथाकथित गौरवशाली अतीत पर पुनर्चिंतन करना होगा कि कहाँ–कहाँ भूल हुई है ताकि उन ग़लतियों से हम बच सकें। हमें सदा प्रेम विरोधी धारणाएं सिखाई गई हैं। हमें ईर्ष्या व तुलना करना सिखाया गया है। हमें दुश्मनी, घृणा, अहंकारी व कट्टरपंथी धारणाएं सिखाई गई हैं। हमें यही सिखाया गया है कि मेरा धर्म सही है और बाक़ी सब धर्म ग़लत हैं। ऐसा व्यक्ति प्रेमपूर्ण नहीं हो सकता। मेरा देश महान् है, शेष सब साधारण हैं।

मुसलमान समझते हैं कि केवल मुस्लिम–धर्म ही सही है। बाक़ी सब काफ़िर हैं। हिंदू कहते हैं कि हमें हिंदू–धर्म पर गर्व है। ईसाई समझते हैं कि एकमात्र हमारा ही धर्म, धर्म है। बाक़ी तो सब अधर्म हैं। हिटलर ने जो 60 लाख यहूदी मरवाये थे, वह उन्हें इसलिये मरवा सका क्योंकि वह मानता ही नहीं था कि यहूदी धार्मिक हैं।

(अगले प्रवचनांश में जारी)

प्रेम बिना यह जीवन सूना

(भाग–2)

(पिछले प्रवचनांश से जारी)

हर धार्मिक आदमी यही समझता है कि उसका धर्म ही असली धर्म है। और इस तरह की बुद्धि पैदा करने को हम कहते हैं– धार्मिक–शिक्षा। मेरी दृष्टि में इससे ज़्यादा अधर्म का बीज और कोई हो नहीं सकता।

हमारे मुल्क में लगभग हर ट्रक के पीछे लिखा हुआ है– मेरा भारत महान्। बस कृपा करके यह ट्रक कहीं पाकिस्तान, बांग्लादेश या अफ़गानिस्तान में न ले जाना। वहाँ वे लोग इस ट्रक को आग लगा देंगे। हाँ, हिंदुस्तान में मज़े से घुमाते रहो। इससे भारतीयों का अहंकार पुष्ट होता है। याद रखना– अहंकार, अभिमान, गर्व एवं घृणा का जन्मदाता है। हमने उसी को प्रोत्साहित किया हुआ है। यहाँ 'मेरा भारत महान्' लिखने पर कोई आब्जैक्शन नहीं करेगा। बस, भारत की सीमारेखा क्रॉस नहीं करना। अन्यथा ज़िंदा वापिस लौटना मुश्किल है। वहाँ के लोगों की धारणा एकदम अलग है। पाकिस्तान का मतलब ही होता है– 'पाक स्थान' अर्थात् 'पवित्र स्थल'। उनके अनुसार बाक़ी हर जगह अपवित्र है; नापाक जगह भला कैसे महान् हो सकती है?

हिटलर को सनक सवार थी कि केवल उसकी जर्मन जाति को ही परमात्मा ने विशेष रूप से दुनिया पर शासन करने के लिये बनाया है। ईश्वर ने उन्हें इस पापी दुनिया को नियंत्रित करने के लिए बनाया है। आश्चर्य की बात है! जर्मनी दुनिया की

सबसे इंटैलिजैंट क़ौम है। संसार के सबसे ज़्यादा नोबेल पुरस्कार जर्मन को ही मिलते हैं। मगर हिटलर को हंड्रड परसैंट ब्लाईंड सपोर्ट मिला क्योंकि उसने पूरे देश के सामूहिक अहंकार को, कलैक्टिव ईगो को परिपुष्ट कर दिया। जैसा बहुमतवाला समर्थन हिटलर को मिला, ऐसा समर्थन दुनिया के किसी नेता को कभी नहीं मिला था। उसने जर्मन जाति से कहा कि तुम्हीं हो वे लोग, जिन्हें दुनिया पर राज्य करने के लिये ईश्वर ने स्पैशल रूप से गढ़ा है। जैसे भारत में 'मेरा भारत महान्' से सब राज़ी हैं। कभी आपके मन में आब्जैक्शन आया कि ग़लत बात है? कभी नहीं आया होगा। मैं ऐसा कह रहा हूँ, तो आप मुझ पर नाराज़ हो रहे होंगे।

हिटलर ने अभिमान–पोषक विचार वहाँ फैला दिया। सब राज़ी हो गये। इस एक आदमी के पागलपन की वजह से सारी दुनिया सैकंड वर्ल्ड–वॉर में झोंक दी गई। अंग्रेज़ समझते हैं कि अंग्रेज़ ही महान हैं और बाक़ी सब ग़लत हैं। फ़्रैंच समझते हैं कि वही एकमात्र श्रेष्ठ क़िस्म के लोग हैं। अंग्रेज़ी भाषा में जहाँ–जहाँ फ्रैंच शब्द आता है, उसका मीनिंग होता है– ग़लत, व्यर्थ, बेढंगा। जैसे कि मान लो फ़्रैंच फ़्राईज़, जो आलू को मोटे–मोटे काटकर तलते हैं; उनका यह नाम अंग्रेज़ों के द्वारा रखा गया है। उनका कहना है कि क्योंकि ये आलू बेढंगे और ग़लत तरीके से काटे गए हैं, इसलिए इनका नाम है– 'फ़्रैंच फ़्राईज़', फ़्रैंच यानि ग़लत। सोचो, वे फ़्रैंच के बारे में क्या सोचते हैं? जब मैं यूरोप टूर पर था तो मैं हैरान हुआ कि कोई फ़्रैंच, जर्मन या इटैलियन, जिसे अंग्रेज़ी भाषा आती है; अक्सर वह फिर भी अंग्रेज़ी नहीं बोलता। क्योंकि उसे अपनी भाषा का घमंड है। वह अंग्रेज़ी जैसी तुच्छ भाषा नहीं बोलेगा। अंग्रेज़ी भाषा को तो वे इतनी दीन–हीन मानते हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं।

अमेरिका में जब हम भारतीय मित्र चाय पीते थे, तो अमेरिकन इतनी हीन दृष्टि से देखते थे कि ये बेचारे लोग 'इंगलिश–टी' पी रहे हैं। अमेरिकन्स का घमंड कॉफ़ी से जुड़ा है। जिन देशों में अंग्रेज़ों का राज्य रहा है; वहां के गुलाम लोग हैं, चाय पीने के आदी हैं। इसके पहले तक मुझे कभी पता नहीं था कि कॉफी अमेरिकन है और चाय इंगलिश है। अमेरिकन ऐसे छाती फुलाकर कॉफ़ी पीते हैं, जैसे वे कोई महान् कार्य कर रहे हैं।

देखिए, कैसे छोटी–छोटी चीज़ों में लोगों ने अहंकार जोड़कर रखा है! और आसपास भी उसी क़िस्म के लोग हैं, तो इससे उनके अहंकार का भी पोषण होता है। ग़ौर से निरीक्षण करेंगे तो आप पाएंगे कि अहंकार–केन्द्रित सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा प्रणाली और धर्मों के नाम पर वस्तुतः ख़तरनाक राजनीति चल रही है। इनकी बुनियाद ही ज़हरीली है। महत्त्वाकांक्षा, प्रतिस्पर्धा एवं घृणा के बीज तो हर बच्चे के भीतर पैदाइशी बो दिये गये हैं।

सदगुरु ओशो कहते हैं कि इन ज़हरीले बीजों को अपने भीतर से उखाड़ फेंको। उसके लिये हमें अत्यंत सतर्कता व होश की ज़रूरत होगी। ओशो उसे ही ध्यान कहते हैं, अवेयरनैस कहते हैं। हमें अत्यंत जागरूक होकर निरीक्षण करना होगा कि हमारे भीतर क्या ग़लत है और क्या सही है? जैसे हम अपने घर की साफ़ –सफ़ाई करते हैं, झाड़ू लगाते हैं, वैक्यूम क्लीनर चलाते हैं; उसी प्रकार, जो भीतर रखने योग्य नहीं है, उसे निकाल बाहर करना होगा। जैसे हम अपने शरीर की सफ़ाई करते हैं, रोज़ स्नान करते हैं, दिनभर में जो धूल, पसीना, इत्यादि लग गया, उसे साफ़ करते हैं, वैसे ही हमें अपने मन और हृदय की सफ़ाई करनी होगी।

कौन लाएगा निर्मलता? हमें ही लानी होगी। जब अपने घर की सफ़ाई की ज़िम्मेवारी हमारी है, अपने शरीर की सफ़ाई की ज़िम्मेवारी हमारी है, तो अपने मन, हृदय और आत्मा की सफ़ाई की ज़िम्मेवारी किसकी है? मन, हृदय व अंतःकरण तो दूसरों को दिखाई भी नहीं देते। अगर मैं अपने भीतर ईर्ष्या में जल भुन रहा हूँ, तो किसी को क्या पता? यह तो केवल मुझे ही पता है। अगर मेरे घर में सफ़ाई नहीं होगी, तो हो सकता है दूसरे लोग ऑब्जैक्शन करें और सफ़ाई में मदद भी कर दें–लेकिन मेरा मन काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, मद, मत्सर और अहंकार जैसी दुर्गंध वाली चीज़ों से भरा है, इसके प्रति मुझे कौन चेताएगा? इसमें कोई मेरी मदद भी नहीं कर सकेगा। ये तो मुझे स्वयं ही देखना होगा कि मेरे भीतर ऐसा क्या है, जो एंटी–लव अर्थात् प्रेम के ख़िलाफ़ है। जब तक हमारे भीतर ये ज़हरीली चीज़ें मौजूद हैं, तब तक हमारे भीतर प्रेम का अंकुरण नहीं हो सकता।

अतः नियमित ध्यान के अभ्यास द्वारा अपने हृदय व अपने चित्त की सफ़ाई करें। सद्गुरु ओशो की एक अद्भुत किताब है– 'ध्यान सूत्र'। इस किताब के पहले तीन प्रवचनों में उन्होंने शरीर की स्वच्छता, मन की स्वच्छता और हृदय की स्वच्छता के विषय में समझाया है। इसके बाद देह शून्यता, विचार शून्यता और भाव शून्यता संबंधी तीन व्याख्यान हैं। तो पहले तन को शुद्ध करें, फिर मन को शुद्ध करें और अन्त में हृदय को शुद्ध करें। तब शून्यता की तीन अवस्थाएं निर्मित होती हैं। उनका सातवां प्रवचन है– 'शून्यता के बाद समाधि की दशा।' ध्यान में एक विदेह अवस्था बनती है, जिसमें देह का आभास नहीं होता। जब मन शून्य हो जाता है, विचार बंद हो जाते हैं और हृदय भावातीत अवस्था में पहुँच जाता है; तब समाधि फलित होती है। तो पहले स्वच्छता, फिर शून्यता और फिर समाधिस्थता– ये है अध्यात्म की यात्रा।

प्यारे मित्रो, स्वच्छता के अंतर्गत हमें उन सारी विषैली चीज़ों को अपने भीतर से निकालना होगा। फिर हमें पॉज़िटिव भावनाओं का बीजारोपण करना होगा। हमें इस उम्मीद में नहीं रहना कि दूसरे लोग हमारे लिए कुछ करेंगे। दूसरों को हमसे कुछ

लेना–देना नहीं है। दूसरों को आप से सिर्फ़ इतना मतलब है कि आप एक प्रोडक्टिव व्यक्ति की भांति समाज में रहो, धन कमाओ, पैसा कमाओ, घर बनाओ, कार ख़रीदो, परिवार की देखभाल करो और समाज के उत्तरदायित्व निभाओ। मज़दूर बनो, किसान बनो, सैनिक बनो और शहीद होने के लिए तैयार रहो। दूसरों की नज़र में आपकी सिर्फ उपयोगिता है। उन्हें केवल आपकी यूटिलिटी से मतलब है। आपके हृदय में और अंतस्तल में क्या हो रहा है; इससे किसी को क्या लेना–देना? हू केयर्स? आप शांत जीवन जीते हो अथवा बेचैन, किसी को क्या मतलब? आप तनावपूर्ण जीवन जीते हो या रिलैक्स्ट लाइफ़, किसी को सरोकार नहीं है। आप जिस ऑफ़िस में काम करते हो, वहाँ के बॉस को आपसे सिर्फ़ इतना मतलब है कि आप आठ घंटे अच्छी तरह ड्यूटी करो। जो भी काम आपको दिया जाए, उसे ठीक से पूरा करो। आप तनावग्रस्त रहते हो, प्रसन्न रहते हो, उदास रहते हो या डिप्रैशन में रहते हो, यह सब आप जानो। दैट इज़ नन ऑफ अदर्स बिज़नस।

दूसरों को हमसे कोई मतलब नहीं है–ये तो समझ में आता है; आश्चर्य तो यह है कि हमें भी अपने आपसे कोई मतलब नहीं। आप ऑफ़िस में कार्य करते हैं, और आपका बॉस इसके बदले आपको तनख़्वाह देता है। बात ख़त्म हुई। ठीक वही बात परिवारवालों की है। आप पत्नी को आश्वासन देकर ब्याह करके लाये थे कि आप उसकी आजीविका का ख़्याल रखोगे, उसकी ज़रूरतों को पूरा करोगे। अगर आप उसकी सारी ज़रूरतें पूरी कर रहे हैं, तो उसे कोई मतलब नहीं है कि आपकी मानसिक दुनिया कैसी है? आपका भावनात्मक–जगत कैसा है? आपकी संवेदनशीलता और चेतना किस तल पर है? किसी को क्या लेना–देना! आपके भीतर की बातें केवल आपको ही दिखाई देती हैं। आपके माता–पिता ने आपको पाला–पोसा है, बड़ा किया है, शिक्षा दिलाई है, वे उम्मीद लगाकर बैठे हैं कि बुढ़ापे में आप उनकी मदद करेंगे। उन्हें आपसे बस इतना ही मतलब है। आपकी आत्मा में क्या हो रहा है, इसमें बेचारे माता–पिता कर भी क्या सकते हैं? और उनकी कोई ज़िम्मेवारी बनती भी नहीं। यह तो केवल आपका ही उत्तरदायित्व है।

हमारे भीतर प्रेम का बीजारोपण कैसे होगा?

यदि हम प्रीति को चार तलों पर विभाजित कर लें, तो इसे समझना आसान होगा। प्रीति का एक तल है, अपने से छोटों के प्रति या स्वयं से कमज़ोर के प्रति लगाव। इसे हम करुणाभाव, दया, ममताभाव, वात्सल्य या स्नेहभाव कह सकते हैं। अपने बच्चों के प्रति, शिष्यों के प्रति, विद्यार्थियों के प्रति, छोटे भाई–बहनों के प्रति एक स्नेहभाव रहता है। हम उनके लिये कुछ करना चाहते हैं। यदि हम उनके किसी काम आ सकें, उन्हें किसी तरह का सहयोग पहुँचा सकें, कुछ मदद कर सकें, किसी बीमार की

सेवा कर सकें या किसी को ठीक सलाह दे सकें, तो यह प्रीति का प्रथम रूप है।

प्रीति का दूसरा रूप है– अपने से बराबरवालों के प्रति प्रेम, भाईचारा, दोस्ती। मित्र–मित्र के बीच, भाई–भाई के बीच, पड़ोसियों के बीच, सहकर्मियों के बीच, पति–पत्नी के बीच प्रेम इस द्वितीय कोटि के अंतर्गत आता है। इसमें दूसरा व्यक्ति हमसे नीचे नहीं है। बच्चे, विद्यार्थी व शिष्य हमसे नीचे के तल पर हैं, जबकि मित्र, दोस्त, पति, भाई, बहन, पड़ोसी और सहकर्मी हमारे बराबरी वाले हैं। यहाँ लेन–देन का संबंध है। हम कुछ एक्सपैक्टेशन भी कर रहे हैं। ऐसा नहीं कि पति ही पत्नी के लिए सब कुछ कर रहा है। पत्नी भी पति के लिये बहुत कुछ कर रही है। भाई–भाई दोनों ही एक दूसरे के सपोर्ट में हैं। माता–पिता ने बच्चों के लिये कुछ किया है, तो बच्चे भी समय आने पर माता–पिता के लिये कुछ करेंगे। एक समय आयेगा जब बाप–बेटा मित्रवत् हो जाएंगे। उम्र बढ़ने पर, अब बराबरी के तल पर आ गये। तो बराबरीवालों के प्रति जो हमारा प्रेम है, उसे हम मित्रता कह सकते हैं।

मित्रता में लेन–देन है। और जहाँ लेन–देन हैं, वहाँ थोड़ी टक्कर, कुछ संघर्ष व लड़ाई–झगड़ा भी होगा क्योंकि हम दूसरे को अपने बराबर का समझते हैं। जिसे हम अपने से छोटा समझ रहे थे, जिस पर हम करुणा कर रहे थे, उसके साथ संघर्ष नहीं था। वह लेनेवाला था और हम केवल देनेवाले थे। वह संघर्ष कर भी नहीं सकता; उसको सपोर्ट चाहिए, सहयोग चाहिए। एक छोटा बच्चा माता–पिता से संघर्ष नहीं कर सकता क्योंकि वह पूरी तरह से उन पर डिपैंडंट है। वह अपने माता–पिता से सिर्फ़ ले रहा है। वह अभी देने की स्थिति में नहीं है।

मित्रता में हमारा संबंध लेन–देन का है : 50–50 परसैंट का मामला है। कुछ हम ले रहे हैं, बदले में कुछ दे रहे हैं। जहाँ प्रेम है, वहाँ थोड़ा–सा एक्सपैक्टेशन भी है। जहाँ अपेक्षाएं हैं, वहाँ संघर्ष होगा। कभी हमें उसकी सलाह अच्छी नहीं लेगेगी और कभी उसे हमारी सलाह अच्छी नहीं लगेगी; मतभेद होना स्वाभाविक है। छोटे बच्चे के साथ मतभेद नहीं होता, वह बराबर का नहीं है। माता–पिता, टीचर अनुभवी हैं। वे जो कहेंगे, बच्चा बड़ी श्रद्धा से मानेगा, भरोसा करेगा। शिक्षक कहते हैं –'ए' ऐसे लिखते हैं और 'बी' ऐसे लिखते हैं; कभी किसी बच्चे ने शक नहीं किया। उसे भरोसा है कि बड़े लोग समझा रहे हैं, तो ठीक ही कह रहे होंगे। शिक्षक ने बताया कि दो और दो चार होते हैं, और छात्र ने स्वीकार कर लिया। उसे टीचर पर पूरा ट्रस्ट है। बराबरी की बात नहीं है, इसलिए मतभेद संभव नहीं है। लेकिन जहाँ बराबरीवाली बात है, वहाँ कभी–कभी विचार नहीं भी मिलेंगे। हमारे अपिनियंस अलग–अलग होंगे, संघर्ष होगा। इसलिए प्रेम के साथ–साथ कुछ अप्रेम भी चलेगा। हमेशा चौबीस कैरेट प्रेम नहीं हो सकता। यह है प्रेम का दूसरा रूप– बराबरवाले के प्रति मित्रभाव।

प्रेम का तीसरा रूप है–अपने से बड़ों के प्रति लगाव। माता–पिता के प्रति, शिक्षकों के प्रति, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा, सम्मान, आदर या भरोसा; जिसे हम कहते हैं। हम उन्हें क्या देंगे? हम उनसे ले ही सकते हैं। तो उन पर एक विश्वास होता है। कोई हमसे ऊपर है, उसके प्रति सम्मान होगा। हम झुके होंगे, हम उनकी बात मानने को तैयार होंगे। हमें पता है हम ज्ञानी नहीं हैं, हम उतने अनुभवी नहीं हैं, इनकी समझ हमसे ज़्यादा है। इनकी परिपक्वता हमसे ज़्यादा है। अगर हमें इनकी बात ठीक नहीं भी लगती, तो भी हमारे भीतर भरोसा है कि वे ही ठीक होंगे। शायद हमारी ही ग़लती होगी। जहाँ ऐसा भरोसा है उसका नाम है– ट्रस्ट, श्रद्धा। यह प्रेम का उत्कृष्ट रूप है। अपने से बड़ों के प्रति आदर, सम्मान, श्रद्धा, भरोसा–लगता है, कुछ अगर ग़लती होगी तो मेरी ही हो सकती है। ये व्यक्ति तो बहुत अनुभवी हैं, इनसे तो भूलचूक नहीं होगी। ये जो कह रहे हैं, ठीक कह रहे होंगे।

गीता में, अर्जुन, कृष्ण से कितने सवाल पूछता है! पूछता ही चला जाता है... कृष्ण उत्तर देते हैं, ख़ूब समझाते हैं। लेकिन अर्जुन के मन में फिर संदेह आ जाता है। वह फिर पूछता है। लेकिन याद रखना! पूछने में एक भरोसा है। वह जानता है कि भगवान जो कुछ बता रहे हैं, वह बिल्कुल सही है। मैं ही नासमझ हूँ , जो मेरी समझ में नहीं आ रहा। कृष्ण को सारथी बनाना इस बात का प्रतीक है कि मेरे जीवन का रथ हांकने वाले तो वही हैं। दिशा तो वही बतायेंगे। उन्हें पता है कि जीवन–रथ को कहाँ ले जाना है।

जब कृष्ण ने पूछा कि एक तरफ मेरी सेनाएं होंगी और दूसरी तरफ मैं होऊंगा। बोलो, तुम किसे चुनते हो? अर्जुन ने कृष्ण को चुना और दुर्योधन ने सेनाएं चुनी। स्पष्ट है कि अर्जुन को भरोसा तो कृष्ण पर ही है। लेकिन क्या करे बेचारा, मन में संदेह हो रहा है, तो प्रश्न पूछता जा रहा है। पूछने में कोई हर्ज़ भी नहीं है। प्रश्न उठना स्वाभाविक है। अंततः वह कहता है–'प्रभु! अब मेरे सारे संशय समाप्त हुए।' अब पूर्ण श्रद्धा का उदय हुआ। यह प्रेम का श्रेष्ठतर ढंग है। अर्जुन ने जब कृष्ण से चर्चा शुरू की, तब सखा रूप में की थी। कृष्ण भी बार–बार उसे सखा कहकर पुकारते हैं। लेकिन धीरे–धीरे अर्जुन के भीतर से सखाभाव कम होता जाता है और कृष्ण का भागवत् स्वरूप प्रगट होता जाता है। उनके विराटरूप का दर्शन करके स्पष्ट हो जाता है कि मैं जिसे अपना दोस्त समझता हूँ वह सिर्फ़ मेरे दोस्त ही नहीं है। इनके भीतर कुछ विराट अवतरित हुआ है। ठीक है! देह तो जैसी मेरी है, वैसी इनकी भी है। मेरे पुराने मित्र हैं, बचपन के संगी साथी हैं। लेकिन जब उनके भीतर का विराटरूप देख लिया, तो अब वह मेरे गुरु हैं, प्रभुस्वरूप हैं। ऐसे गहन भरोसे का नाम है– 'श्रद्धा'।

प्रेम का एक चौथा रूप है– 'भक्ति'। श्रद्धा किसी व्यक्ति पर होती है– चलो गुरु

ही सही, भगवान रूपी कृष्ण ही सही। किंतु वास्तविक भक्ति होती है– निराकार भगवान से। कृष्ण, राम, ईसामसीह, गुरुनानक–ये साकार भगवान् हैं। माना कि इनके भीतर विराट अवतरित हुआ है। छोटी–सी सीमा में असीम समाया हुआ है। इस मानव देह के रूप में, इस आकार में विराट उतरा है। इस घड़े के भीतर भी आकाश है और घड़े के बाहर भी आकाश ही है। लेकिन जब हमारा प्रेम ऊपर उठता है और बिना घड़े के उस आकाश के प्रति, समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त चैतन्य से लग जाता है; उस प्रीति का नाम है– 'परा–भक्ति'। अब बीच में कोई व्यक्ति नहीं है, घड़े की दीवार भी नहीं रही।

प्यारे मित्रो, ये चार प्रकार के प्रेम हैं। और हमें चारों तलों पर समृद्ध होना होगा। जहाँ तक प्रथम दो की बात है, ये दो रूप तो थोड़ा–बहुत हम सबके भीतर हैं। करुणा का भाव, सहानुभूति व दया का भाव हम सब के भीतर है। यह आसान है क्योंकि इसमें अहंकार भी रहता है कि मैं देनेवाला हूँ, मैं सुपीरियर पोज़िशन में हूँ। मैं किसी की मदद कर रहा हूँ, मैं किसी को सलाह दे रहा हूँ, मैं किसी को शिक्षा दे रहा हूँ, मैं किसी के लिये धन कमा रहा हूँ, देखभाल कर रहा हूँ। इसमें 'मैं' भाव काफी घना होता है। इससे हमारा सुपीरिओरिटी कॉम्पलैक्स भी पुष्ट होता है कि मैं महान् हूँ और दूसरा दयनीय हालत में हैं। उसे सेवा की ज़रूरत है। इसमें प्रेम तो है, लेकिन कम मात्रा में है। इसे ऐसा समझना कि यह सोना है, लेकिन इस सोने में चार कैरेट सोना है और बीस कैरेट खोट है। इसमें अहंकार काफ़ी है। इसलिए प्रेम का यह रूप अक्सर देखने को मिल जायेगा।

दूसरे प्रकार के प्रेम में बारह कैरेट गोल्ड और बारह कैरेट अशुद्धि है। मित्रता का भाव बराबरी के तल पर होता है। इसलिये सारी दुनिया में दाम्पत्य जीवन में काफ़ी लड़ाई–झगड़े नज़र आते हैं। कोई एक देश या एक जाति की बात नहीं है। दुनियाभर के मनोवैज्ञानिकों द्वारा बहुत विश्लेषण चलता है कि इसे कैसे सुलझाएं? यह कलह इतनी आसानी से नहीं सुलझेगी क्योंकि हम जिसे बराबरी का रिश्ता मान रहे हैं, उसमें 50 प्रतिशत प्रेम के साथ 50 प्रतिशत अहंकार भी है। लगाव तो है, लेकिन साथ–साथ क्रोध, बेईमानी और ईर्ष्या भी है। दोनों अपने आप को सुपीरियर समझने की कोशिश करेंगे, तो कलह निश्चित होगी। इसलिये भाई–भाई में जैसा वैर होता है, वैसा किसी अन्य दुश्मन के साथ नहीं होता।

याद रखना–हिंदुस्तान में जो सबसे बड़ा युद्ध 'महाभारत' हुआ, यह भाई–भाई के बीच में हुआ था। लगाव बहुत घना था, तो युद्ध भी बहुत भयंकर था। जो सिंहासन कौरवों को चाहिए, पांडवों को भी वही सिंहासन चाहिए। बराबरीवालों के साथ ही तुलना हो सकती है। अन्य किसी को यह भूत सवार नहीं होगा कि हम इस सिंहासन पर पहुँच जाएं? औरंगज़ेब ने सिंहासन के लिए अपने सारे भाईयों को क़त्ल कर दिया

और अपने बाप शाहजहाँ को जेल में बंद कर दिया। ये फ़ितूर हर किसी को सवार नहीं होगा। जो सिंहासन के बहुत निकट है, उसी को लग सकता है कि मैं भी यह गद्दी पा सकता हूँ। वह परेशान हो जाता है कि बाप बूढ़ा हो गया लेकिन मर नहीं रहा, तो करूँ क्या? बाप 80 साल का हो गया। बेटा खुद 60 साल का हो गया। और पक्का नहीं कि कौन पहले मरेगा! उसके मन में ईर्ष्या उत्पन्न होनी स्वाभाविक है।

ईर्ष्या सदा बराबरीवाले के संग होती है। बहुत दूरवाले के संग नहीं होती। क्या आपके मन में कभी भारत के प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति के प्रति ईर्ष्या पैदा हुई? नहीं, कभी नहीं हुई होगी। और न कभी होगी। क्योंकि वे आपसे बहुत दूर हैं। उनसे कौन ईर्ष्या कर सकता है– जो उनके निकट हैं, जो नये प्रधानमंत्री बन सकते हैं; सिर्फ़ उनके मन में जलन होगी। वे षड्यंत्र रच रहे होंगे। आपकी ईर्ष्या ज़्यादा से ज़्यादा उनसे होगी जो मोहल्ले में पार्षद् बन गये हैं। आप बहुत दूर कि सोचेंगे तो चलो नगरपालिका के अध्यक्ष बन जाएं– इससे ज़्यादा दूर नहीं जा सकते।

ईर्ष्या भी समान लोगों के संग होती है। आपकी ईर्ष्या आपके पड़ोसी से होती है। अगर उसने ऊँचा मकान बना लिया है, तो आप जल–भुन जाते हो कि मैं भी एक मंज़िल और बनवाऊंगा। अगर पड़ोसी के पास ज़्यादा महंगी कार आ गई, तो आपको लगता है कि अरे! मेरी कार तो उसकी कार से छोटी हो गई। मैं इससे भी महंगी कार लाऊँगा। पड़ोसी से तकलीफ़ है। जो बहुत दूर है–उससे कोई तकलीफ़ नहीं है। आपको ऐसा कभी नहीं लगता कि शाहजहाँ ने अपने बीवी के लिये ताजमहल बनवाया था, तो मैं भी बनवाऊँ। लेकिन हाँ, पड़ोसी ने अगर ज़्यादा बड़ा मकान बना लिया है, तब आपकी पत्नी कहने लगेगी कि सुनो जी! पड़ोसन के मकान में ये–ये फ़सिलिटी है, उन लोगों ने बाथरूम ऐसा बनवाया है और टीवी भी नया ले आए हैं। हमारे घर में पुराना टीवी है, हटाओ इसे! आपकी पत्नी को पड़ोसन से तकलीफ़ है। बराबरी है, तो वहाँ लड़ाई–झगड़ा, ईर्ष्या, गुस्सा व कलह रहेगी। प्रेम के इस रूप को ठीक से समझ लें। इसमें लगभग 50–50 प्रतिशत का मामला है।

आइए, अब और आगे बढ़ते हैं, जिसे हम कहते हैं– 'श्रद्धा'– उसमें 20 कैरेट शुद्ध सोना है। मुश्किल से 4 कैरेट खोट है। अभी 100 प्रतिशत सोना नहीं हुआ। अर्जुन, कृष्ण के प्रति कितना ही श्रद्धा से भर गया हो लेकिन अभी 24 कैरेट गोल्ड नहीं हुआ। अर्जुन बहुत श्रद्धा से भरा है। परमात्मा के विराटरूप को भी देख लिया है। लेकिन अभी 100 प्रतिशत भरोसा नहीं है। उसने यह विराट दृश्य अपनी आँखों से देखा है। लेकिन स्वभावतः इंसान आख़िर इंसान ही है। भगवान को देखकर फिर भूल जायेगा। फिर कृष्ण से ऐसा व्यवहार करेगा कि मानो संगी–साथी हैं, दोस्त ही हैं। और ऐसा ही हुआ। अर्जुन उस विराटरूप को ज़िंदगीभर याद न रख सका। वह क्षणिक

घटना थीं। आई और गई।

हमारे भीतर अनायास कभी–कभी श्रद्धा के क्षण आते हैं। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जिसके भीतर ऐसे क्षण नहीं आते हों। किसी के प्रति बहुत सम्मान पैदा हो जाता है, लेकिन वह एक क्षणिक घटना होकर रह जाती है। हम फिर वापिस अपने धरातल पर आ जाते हैं। एक उड़ान भरी थी। लेकिन हम आकाश में टिक नहीं पाते। हम गुरुत्वाकर्षण के द्वारा वापिस नीचे खींच लिये जाते हैं। हम अहंकार की भूमि पर वापिस आ गिरते हैं।

मित्रो, जिस व्यक्ति को अपने जीवन को प्रेम से भरपूर करना है, उसे धीरे–धीरे इस गुरुत्वाकर्षण के पार उठना सीखना होगा। हमारे पास प्रेम के पंख हैं। हमें थोड़ा फड़फड़ाना सीखना होगा। माना कि हम अहंकार के पिंजड़े में सालों–साल से बंद हैं और हमारे पंख भूल ही गये हैं कि हम आकाश में उड़ सकते हैं। इसलिये हम यदा–कदा थोड़ा उड़ते तो हैं किंतु फिर वापिस लौट आते हैं और पिंजड़े में बैठ जाते हैं। पिंजड़े से हमारा लगाव गहरा हो गया है। अहंकार का पिंजड़ा, 'मैं' भाव का पिंजड़ा है; वह हमें उड़ने नहीं देता। अगर हमें जीवन में गहन–शांति और परम–संतोष चाहिए, अगर हम चाहते हैं कि जीवन सूना–सूना न हो, तो हमें अपने पंखों को ज़रा मज़बूत करना होगा। इस खुले आकाश में हम कभी–कभी जो थोड़ी–सी उड़ान भरते हैं, इस उड़ान को कुछ और लंबा करना होगा।

अपने हृदय को फैलाओ, प्रेम को पंख दो, आकाश दो; माना कि हमारे सामने लंबी चुनौतियां है। आपने यह प्रसिद्ध शेर सुना होगा–

'सितारों के आगे जहां और भी हैं।
अभी इश्क़ के इम्तिहां और भी हैं।।'

प्रेम की कोई सीमा नहीं है। सितारों के आगे और सितारें हैं। अनंत आकाश गंगाएं, नीहारिकाएं हैं। हमें लंबी उड़ान भरनी है। ख़ासकर जहाँ–जहाँ तुम्हें कोई गुरु जैसा व्यक्ति मिल जाए, वहाँ अपनी श्रद्धा के पंखों को मज़बूत करो और उड़ो। हमारे समकक्ष लोग तो चारों तरफ़ मौजूद हैं। उनके साथ हम ज़्यादा से ज़्यादा मित्रता के तल पर जी सकते हैं। जहाँ भी तुम्हें अपने से श्रेष्ठ कोई नज़र आए, वहीं उड़ान संभव हो सकेगी। वहाँ तुम अहंकार के पिंजड़े से बाहर आ सकोगे।

सद्‌गुरु ओशो के प्रवचन सुनना, उनके वीडियो देखना। तुम हतप्रभ रह जाओगे, सुनते–सुनते अवाक् रह जाओगे और तुम्हें पता भी नहीं चलेगा कि कब पिंजड़े के बाहर आ गये! किसी महामानव को देखकर अचानक तुम अपनी ज़ंजीरें और सीमाएं भूल जाओगे। अनजाने में श्रद्धा की उड़ान घटित हो जाएगी। यह उड़ान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। लेकिन बहुत कम लोगों के जीवन में ऐसी उड़ान संभव हो पाती है। क्योंकि कृष्ण जैसे

लोग, ईसामसीह जैसे लोग और ओशो जैसे लोग हर गाँव–मोहल्ले में मिलते भी नहीं हैं। हमारे जैसे अहंकारी, घमंडी, ईर्ष्यालु, क्रोधी, कामी और लोभी लोग सब तरफ़ मौजूद हैं। हर तरफ़ उन्हीं से मुलाक़ात होती है। उन्हीं के साथ हमारा लेन–देन है। उन्हीं से संघर्ष है और उन्हीं से तुलना है। अगर आप ऊपर की तरफ आँख उठाना चाहोगे, तो यह कार्य बामुश्किल ही हो पायेगा। दुनिया तो हमारे जैसे सात अरब लोगों से भरी पड़ी है। आँख थोड़ी ऊपर उठाने का ख़्याल करो, तो ही बात बन पाएगी। मामला मुश्किल तो है!

मैंने सुना है, एक प्यारा कवि था। उसका एक मित्र कबाड़ी था। संध्या समय दोनों घूमने गए। वे एक झील के किनारे से गुज़र रहे थे। सूर्यास्त हो रहा था और रंग–बिरंगे बादल छाये थे। सूरज की लालिमा के झील पर पड़ने से सारा जल स्वर्णिम–सा हो गया था। झील के जल में रंगीन बादलों का रिफ़्लैक्शन पड़ रहा था। इतना सुंदर दृश्य देखकर वह कवि तो आश्चर्यजनक मुद्रा में खड़ा रह गया। भीतर मन ठिठक गया। विस्मित! उसका मन बड़ी कोमल भावनाओं से भर गया। उसे सौंदर्य से ओतप्रोत गीत सूझ रहा था। इतना मनोहारी दृश्य था, मानो 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' साकार हो गया हो। फिर उसे ख़्याल आया कि मेरा मित्र भी मेरे साथ है। उससे कहा कि देखते हो, कैसा अद्‌भुत सौन्दर्य है!

उस कबाड़ी मित्र ने कहा– सौन्दर्य... कहाँ का सौन्दर्य? कैसी बात कर रहे हो? इस तालाब में गंदा बदबूदार पानी और कूड़ा–कचरा है। और नीचे देखो, वहाँ एक फटा हुआ जूता और एक टूटा हुआ डालडा घी का डिब्बा दिखाई दे रहा है।

बेचारे कवि ने अपना माथा ठोक लिया। उसने कहा कि हद हो गई! क्या तुम्हें यह ख़ूबसूरत सूरज, ये रंगीन बादल, ये उड़ते पंछियों की कतार और पानी में उनकी ख़ूबसूरत प्रतिछबि दिखाई नहीं पड़ती? ऐसा लगता है मानो साक्षात् परमात्मा उतर आया हो। क्या तुम्हें ये सब नहीं दिखता? तुम्हें फटा जूता, डालडा घी का टूटा डिब्बा और कूड़ा–कचरा दिख रहा है!

लेकिन कबाड़ी को और क्या दिखाई देगा! चाँद–तारों–फूलों का सौन्दर्य तो कवि–हृदय को ही नज़र आ सकता है। सब को सौन्दर्य नज़र नहीं आता। आपने गीतों व कविताओं में सुन लिया है कि चाँद सुन्दर होता है, तो आप भी कह देते हैं, हाँ चाँद अच्छा लगता है। क्या वास्तव में आप कभी चंद्रमा को देखकर अवाक् रह गये हैं? क्या कभी छत पर लेटे हुए आपने आकाश के सौन्दर्य को निहारा है? महानगरों में रहने वाले अधिकांश लोगों ने कभी आकाश की ओर आँख उठाकर, तारों की तरफ़ और चांद की तरफ़ देखा ही नहीं है।

एक बार मैं मुंबई में एक घर में मेहमान था। वहाँ की गृहिणी कहने लगी कि मेरी

बेटी को कुछ समझाइये। दिन के ग्यारह–बारह बजे उठती है। सुबह तो उठती ही नहीं कभी। मैंने उस लड़की से पूछा कि बेटी! क्या तुमने कभी ख़ूबसूरत सूर्योदय देखा है?

वह बोली– 'हाँ, केवल एक बार देखा है।'

मैं थोड़ा खुश हुआ कि चलो एक बार तो देखा है। मैंने पूछा कि कब देखा था?

वह बोली कि फलां–फलां फ़िल्म में सनराईज़ का बहुत सुंदर दृश्य था।

लोग इतने व्यस्त हैं कि सूर्योदय–सूर्यास्त देखने के लिये, भविष्य में कुत्ते–बिल्ली या पेड़–पौधे देखने के लिए भी फ़िल्म देखनी पड़ेगी। प्रकृति के साथ हमारा संबंध ही टूट गया है। याद रखना! अगर हम कबाड़ी क़िस्म के हैं, तो हमारी नज़र भी कबाड़े पर ही जायेगी। उससे ज़्यादा और कुछ हमें पता ही नहीं चलेगा। ऐसा नहीं कि दुनिया में और कुछ नहीं है– बहुत कुछ है। लेकिन वह कभी हमारे संपर्क में नहीं आयेगा। हम ज़िंदगी से यूं ही गुज़र जायेंगे। हम कभी उन चीज़ों के संपर्क में नहीं आ पायेंगे, जिनपर हमारी नज़र नहीं थी।

इसलिये मैं आपसे कह रहा हूँ कि साधारण मैत्री के तल तक सबका अनुभव है। इस तल से ऊपर उठना है। आपको अपनी आँखें ऊपर उठाना सीखना होगा ताकि आप श्रद्धा की हवा में साँस लेना सीख सको। उन लोगों को तलाशो, जहाँ भरोसा हो सके। उनकी गिनती मत करते रहना, जो विश्वासघात कर गये और जिन्होंने आपका भरोसा तोड़ दिया है। तुम्हें उनसे क्या लेना–देना? तुम उन्हें खोजो, जहाँ भरोसा हो सकता है क्योंकि वहाँ तुम्हारे जीवन को फैलाव मिलेगा, ऊपर की दिशा मिलेगी। जो तुम्हारी श्रद्धा खंडित कर गये, जिन पर तुम्हें शक उत्पन्न हो गया है; उन पर नज़र अटका कर मत रखना, नहीं तो तुम कबाड़ी हो जाओगे।

जीवन में बहुत कुछ श्रेष्ठतर भी है। तुम्हें सीखना होगा कि विराट ज़िंदगी में तुम्हें क्या चुनना है? किसे देखना है? क्या सुनना है? मैंने पिछले पैंतीस साल से अख़बार नहीं पढ़े और टीवी नहीं देखी। और मुझे नहीं लगता कि मुझे कोई नुक़सान हुआ है। क्या करना पता लगाकर? इनमें जिस कोटि की ख़बरें आती हैं, उन ख़बरों से मुझे क्या लेना–देना? मैं क्यों उस दुर्गंधयुक्त कबाड़े पर अपनी नज़र गड़ा कर रखूं? ठीक है, है तो है। मुझे क्या मतलब? मैं जीवन के सौन्दर्य को देखता हूँ। इस कूड़े–कचरे पर क्यों नज़र रखनी? उसका करना क्या है?

मैं तीन दिन के लिये हैदराबाद गया था। वहाँ पहले दिन एक प्रैस–कान्फ्रैंस थी। तीन दिन बाद जब मैं लौट रहा था, तो फिर एक और प्रैस–कान्फ्रैंस हुई। उसमें कुछ पत्रकार वही थे, जो पहली बार भी आए थे। वे मुझसे पूछने लगे कि स्वामी जी! वह न्यूज़ कैसी लगी जो हमने आपके इंटरव्यू में छापी थी।

मैंने कहा– क्षमा करना, मैं तो कभी न्यूज़ देखता ही नहीं। और देखकर करना भी

क्या है?

उसने कहा– हद हो गई! फिर आप प्रैस–कॉन्फ्रैंस लेते किसलिये हैं?

मैंने कहा कि देखो, दो ही बातें संभव हैं। या तो आपने वही छापा होगा, जो मैंने कहा था। अथवा दूसरी संभावना है कि आपने मिर्च–मसाला लगाकर कहानी छापी होगी। अगर आपने झूठे मनगढ़ंत क़िस्से छाप दिये हैं, तो ऐसी असत्य खबर पढ़ने में मेरी कोई रुचि नहीं है। मैं 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' का खोजी हूँ। मैं आपकी झूठी कहानियाँ क्यों पढ़ूं? और अगर आपने वही छापा है, जो मैंने कहा था; तो उसे पढ़ने की ज़रूरत ही नहीं। मुझे तो पता है कि मैंने क्या कहा है?

यह सुनकर वे लोग निरुत्तर हो गये कि अब क्या जवाब दें! पूछने लगे कि क्या आपको भारत के प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति का नाम पता है? मैंने कहा कि मुझे नहीं पता। मुझे पता लगाकर करना भी क्या है? मुझे राजनीति में रुचि नहीं है और न ही मुझे कोई राजनेता बनना है। और मैं नहीं समझता कि इस ज़िंदगी में ऐसा कोई काम पड़ेगा कि प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति से मिलना–जुलना पड़े। संयोगवश अगर मिलना भी पड़ा, तो उनके ऑफिस के बाहर उनके नाम का बोर्ड लगा ही होगा, वहीं पढ़ लेंगे कि कौन है? पहले से पता लगाकर क्या करना? और ये पद पर विराजमान लोग कुछ–कुछ समय में बदलते रहते हैं, तो किस–किस के नाम पता लगा कर रखेंगे? जब ज़रूरत पड़ेगी, तो किसी से पूछ लेंगे। या उन्हीं से ही पूछ लेंगे कि भाई साहब! आप का नाम क्या है? उन्हें थोड़ा बुरा लगेगा। कोई बात नहीं। उन्हें बता देंगे कि हम अनपढ़ आदमी हैं। अख़बार वग़ैरह पढ़ते नहीं, तो क्या करें?

हम किस लिये कूड़ा–कचरा बटोर के अपनी खोपड़ी में रख रहे हैं?

जब हम अपने घर की सफ़ाई करते हैं और धूल–धवांस बाहर निकाल देते हैं, तो अपने चित्त में सारी नैगटिव और बेहूदी ख़बरें क्यों रखें? हमारा मन कोई कबाड़ख़ाना है? रखना है, तो कोई सुन्दर गुलदस्ता सजा के रखो। हाँ, गुरुनानकदेव की वाणी, संत कबीरसाहब के दोहे, सदगुरु ओशो के अनूठे वचन, जो रखने योग्य है, वही रखो।

मैं टीवी न्यूज़ क्यों देखूं? उसमें ऐसी कौनसी बात बताई जाती है, जो मेरे काम की है? दुनिया के चोर, उचक्कों, बदमाशों, लफंगों, घोटाला करने वालों और पाखंडियों की ख़बर जानकर मुझे करना भी क्या है? उनके जैसे काम करने की ट्रेनिंग तो लेनी नहीं! जब अपने को यह सब करना ही नहीं है, तो उनके बारे में जानना क्यों? उनकी वे जानें।

प्यारे मित्रो! ये कबाड़ी और कवि की घटना सदा याद रखना। जिस भांति हम जी रहे हैं, हम धीरे–धीरे कबाड़ी हो गये हैं और हमने अपनी ज़िंदगी का कबाड़ा कर दिया है। फिर हम कहें कि हमारी ज़िंदगी रूखी–सूखी है, सूनी है और इसमें भराव नहीं

है। तो हो भी कहाँ से? ये सारी गंदगी हमने इकट्ठी की है। इसे हम सहेज–सहेज कर रख रहे हैं। और इतना ही नहीं कि सहेज रहे हैं, बल्कि उसे लोगों में बाँट भी रहे हैं। मैं देखता हूँ कि लोग ऑफिस में पहुँचते ही अपने दोस्तों को यह बताने लगते हैं कि उन्होंने अख़बार में क्या पढ़ा और वे क्या न्यूज़ देखकर आये हैं? इस प्रकार हम अपना कूड़ा–कचरा अपने मित्रों के साथ भी बाँटते हैं।

आपका पड़ोसी आपके घर में टोकरी भर के कूड़ा फेंक जाए या धूल मिट्टी पटक जाए, तो आप लड़ना शुरू कर दोगे। और कोई दोस्त आपके मन में आकर कचरा डालकर चला जाता है, तो आप उसे हितैषी समझते हो। ये आदमी आपके दुश्मन हैं। मेरे पास कई लोग आते हैं, ख़बरें सुनाते हैं कि स्वामी जी, आपको थोड़ा जनरल नॉलेज हो जायेगा। मैं अपने कान बंद कर लेता हूँ और कहता हूँ कि क्षमा करें, मुझे आपका जनरल नॉलेज नहीं चाहिए। वह आपको मुबारक हो। आप मेरे भीतर ये जी. के. यानी गंदा कचरा क्यों डाल रहे हो? मुझसे कोई दुश्मनी है? मुझे यह सब नहीं जानना। जो जानने योग्य है, मैं उसे जानूंगा। जानना है, तो ब्रह्म को जानूंगा।

अगर आपको श्रद्धा की तरफ़ आँख उठानी है, तो आपको अपना, देखने का नज़रिया और दृष्टिकोण बदलना होगा। तब आपके भीतर के प्रेम का पंछी, जो अहंकार के पिंजरे में बंद है; वह बाहर निकल पायेगा और बाहर उड़ान भर पायेगा। और फिर जब उड़ान भरना शुरू हो जाय, तब मंज़िल तक पहुँचने की संभावना बनती है। पराभक्ति पैदा होना बहुत दूर की बात है, तो फ़िलहाल हम भक्ति की बात करते हैं।

सामान्यतः जिसे हम भक्ति कहते हैं, वह भक्ति नहीं है। मंदिर, मस्जिद और चर्चों में लोग घुटने टेककर बैठे हैं। कहने को वे भगवान से प्रार्थना कर रहे हैं। उनकी प्रार्थना, प्रार्थना नहीं है। वह माँगना है, याचना है, और ये लोग भिखमंगे हैं। ईश्वर से भीख मांग रहे हैं। इनकी प्रार्थना, प्रार्थना कम, वासना ज़्यादा है। किसी को धन चाहिए, किसी को मुक़द्दमा जीतना है, किसी को ट्रांसफर कराना है, किसी को प्रमोशन चाहिए, किसी को बेटा चाहिए और किसी को वधू चाहिए।

मैंने सुना है कि एक भक्त भगवान शिव से प्रार्थना कर रहा था। भगवान शिव प्रगट हुए और उन्होंने कहा कि वत्स! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो। उसने कहा कि हे प्रभु! आपको इतनी भी समझ नहीं कि मुझे वर नहीं, वधू चाहिए।

न जाने लोग क्या–क्या माँग रहे हैं। लेकिन याद रखना! उनकी प्रार्थना, माँगना है। और ऐसे भगवान् केवल चुटकुलों में प्रसन्न होते हैं। ऐसे कहीं कोई भगवान् नहीं हैं। हाँ, जो वास्तविक परमात्म तत्त्व है, वह तब प्रसन्न होगा, जब हमारे भीतर निष्कामना पैदा हो जाय। हमें भिखमंगे की तरह हाथ फैलाए देखकर भगवान प्रसन्न नहीं होगा। आप ही बताओ, जब कोई भिखमंगा भरे बाज़ार में आपके पीछे पड़ जाता है कि दस

रुपये दे दो, तो क्या आप प्रसन्न होकर देते हो? कभी नहीं। आप प्रसन्न होकर नहीं, बल्कि मजबूरी में और अपना पिंड छुड़ाने के लिये देते हो। और अगर दोबारा आपको पता चले कि वह भिखमंगा हमेशा ही वहाँ बैठा रहता है, तो शायद आप अपना रास्ता ही बदल लोगे। यही परमात्मा भी करता है। उसे पता चल जाए कि मंदिर, मस्जिद, चर्चों और जहाँ–जहाँ धार्मिक स्थलों में ऐसे लोग बैठे हैं; ईश्वर वहाँ जाना ही बंद कर देता है।

मैंने सुना है कि एक भिखारी था, जो बहुत ही पियक्कड़ भी था। एक दिन वह सुबह–सुबह मंदिर पहुँचा और घंटाभर भीख मांगता रहा। कई लोग आए, गए। लेकिन किसी ने उसे कुछ दान न दिया। फिर उसने सोचा कि मंदिर में लोग दान नहीं दे रहे हैं, तो मस्जिद चलते हैं; और वह मस्जिद पहुँच गया। मस्जिद में मांगता रहा। लेकिन वहाँ भी किसी ने एक पैसा न दिया। फिर उसने सोचा कि चर्च में चलें। शायद वहाँ कुछ दान मिल जाए। लेकिन वहाँ भी फूटी कौड़ी न मिली। उसके बाद वह गुरुद्वारे में चला गया और वहाँ से भी ख़ाली हाथ लौटा। फिर शाम होने लगी। उसने सोचा कि चलो, शराबघर चलें। वहीं किसी से माँग लेंगे। शराबघर से एक शराबी डगमगाते हुए निकला और उसने सीधा उस भिखारी को सौ रुपये का नोट पकड़ा दिया। उस भिखारी ने हाथ ऊपर उठाया और कहा– 'या अल्लाह! तू भी बड़ा धोखेबाजे है। रहता कहाँ है और पता कहाँ का दिया है!'

भगवान् भी बहुत मज़ाक़िया है। अब मैं आपको बताता हूँ कि भगवान् मंदिर–मस्जिद से क्यों भाग खड़ा हुआ। कल्पना करो कि आप भगवान होते और दिनभर भिखारी क़िस्म के लोग आपके पास आते रहते। गिड़गिड़ाते रहते और माँगते रहते कि हे प्रभु! ये दे दो, वो दे दो। कई लोग तो नारियल, मिठाई इत्यादि घूस भी देते। सोचो! आपको कैसा लगता? सदियों–सदियों से नारियल खा–खाकर कितने ऊब चुके होते!

ऐसी भक्ति, क्या भक्ति कहलाने योग्य है? यह तो सामान्य प्रीति से भी गई–बीती बात है। भिखमंगापन और लूटपाट है।

हम जिसे प्रेम कहते हैं, निश्चित रूप से उसमें सुख है, लेकिन दुख भी है। स्वर्ग भी है, नर्क भी है। दोनों 50–50 प्रतिशत है। वह प्रेम अशुद्ध प्रेम है। यह बारह कैरेट गोल्ड है। ईर्ष्या, लोभ, कामना, वासना इत्यादि जो–जो अशुद्धियां हैं, वे दुख देंगी। और जो–जो प्रेम का तत्त्व है, वह सुख देगा।

ओशो की एक किताब है– 'प्रेम है द्वार प्रभु का'। एक सज्जन ने एक बार सवाल पूछा कि गुरुदेव, आप कहते हैं प्रेम है द्वार प्रभु का, लेकिन मेरे जीवन का अनुभव तो यही कहता है कि 'प्रेम है द्वार नरक का' आप सही या मैं सही? ओशो ने कहा–

'अपनी–अपनी जगह दोनों सही हैं।' तुम जिसे प्रेम कहते हो, वह तो अंततः तुम्हें नरक तक ले जाता है। तुम जिस प्रेम से आकर्षित हुए थे, वह दूर से बड़ा लुभावना लगा, लेकिन अंततः वही नरक का द्वार साबित हुआ; तो तुम ठीक कहते हो। लेकिन मैं जिसे प्रेम कहता हूँ, वह है द्वार प्रभु का, वह है द्वार परमात्मा का, स्वर्ग का, मोक्ष का। मैं जिसे प्रेम कह रहा हूँ, वह चौबीस कैरेट गोल्ड है। इसमें धन्यवाद का भाव है। इसमें नृत्य है, गीत है, आनंद है, उत्सव है। यह अहोभाव व प्रार्थना की ऐसी उत्कृष्ट दशा है, जिसमें कोई कामना नहीं है, कुछ माँगना नहीं है। तुम जिसे प्रेम जानते हो, उसमें 50 प्रतिशत ही प्रेम था। उस प्रेम को निखारो। इस प्रेम में जो अशुद्धियां हैं, उन्हें निकाल बाहर करो और प्रेम को शुद्ध करो। ऐसा करते–करते तुम पाओगे कि तुम्हारे जीवन में भी परमात्मा का, सच्चिदानंद का द्वार खुल गया।

प्यारे मित्रो! यह रास्ता केवल प्रेम से खुलता है। इसी का नाम है– 'पराभक्ति।' आरती उतारने से भक्ति नहीं हो जायेगी। राम और कृष्ण की कथा सुनकर भक्ति नहीं हो जायेगी। सामूहिक रूप से भजन गा लेने से और कीर्तन कर लेने से भी भक्ति नहीं हो जायेगी। ये तुम्हारा पूरा जीवन ही एक भजन बने, प्रेम की एक कथा बने; प्रभु की लीला बने, तो ही बात बन पायेगी–और ये संभव हो सकता है। ऐसा नहीं कि हम प्रेम से बिल्कुल रिक्त, अंजान और अपरिचित हैं। हमारे पास थोड़ा बहुत प्रेम तो है। केवल उसे शुद्ध करना है। प्रकृति ने हमें अशुद्ध सोना दिया है। हमारे पास सद्भावनाओं और दुर्भावनाओं का मिश्रण है। यह हमें प्रकृति से मिला है। याद रखना! सोने की खदान में भी शुद्ध सोना नहीं मिलता; न शुद्ध सोना मिलता है, न शुद्ध एल्युमीनियम मिलता है, न शुद्ध मैंग्नीज़ मिलता है। ये बात आप भली–भांति जानते हैं कि प्रकृति में सभी चीज़ें अशुद्ध रूप में पाई जाती हैं। उन्हें शुद्ध करना पड़ता है। ठीक ऐसे ही प्रकृति से हमें जिस प्रकार का हृदय और भावनाएं हमें मिली हैं, वह सद्भावनाओं और दुर्भावनाओं का मिश्रण हैं। वहाँ प्रेम तो है, लेकिन प्रेम के साथ ईर्ष्या और क्रोध भी है। वहाँ नफ़रत भी है और मोहब्बत भी है। अब हमें छँटनी करनी होगी।

जैसे सुनार सोने को साफ़ करता है, और फिर ख़ूबसूरत आभूषण बनते हैं; ठीक वैसे ही हमें भी करना होगा। यही अध्यात्म की साधना है। कुछ और नहीं। हमें अपने जीवन को निखारना है, संवारना है, शुद्ध करना है। इसका उपाय भी आसान है। ध्यान की अग्नि से गुज़र कर यह अशुद्ध सोना शुद्ध होता है। अशुद्धियां जल जाती हैं और शुद्ध प्रेम बचता है। और तब ज़िंदगी में एक अद्भुत भराव पैदा होता है। सारा सूनापन ख़तम हो जाता है। हम पूरे अस्तित्व से जुड़ जाते हैं।

संक्षेप में समझें कि साधारण प्रेम और भक्ति में क्या फ़र्क़ है? साधारण प्रेम में हम एक व्यक्ति के साथ जुड़ते हैं। भक्ति में हम समष्टि के साथ जुड़ जाते हैं। इसलिये तो

उसको योग कहते हैं। 'योग' यानि 'जुड़ना'। यह परमयोग है। प्रेम में हम दो–चार लोगो के संग जुड़ते हैं और भक्ति में हम पूरे ब्रह्मांड के साथ एक हो जाते हैं। कनैक्टिड विद द होल एग्ज़िस्टैंस। हमें ऐसा लगता है कि पूरा विश्व एक घर है। वसुधैव कुटुम्बकम्। हमें लगता है कि हम समस्त ब्रह्मांड के हिस्से हैं। हम परमात्मा से अलग–थलग नहीं हैं। भक्त और भगवान अंततः एक हो जाते हैं।

आपने मीराबाई की कहानी सुनी होगी कि वृंदावन के कृष्ण मंदिर में मीराबाई अंततः कृष्ण की मूर्ति में समा गई। यह बात चाहे ऐतिहासिक रूप से तथ्य न हो किंतु आध्यात्मिक रूप से यह सत्य है। भक्त अंततः भगवान् में समा जाता है। समा ही जायेगा। और कहाँ जायेगा? जब मीरा ने अपने हृदय के द्वार खोले और उसमें परमात्मा को आमंत्रित किया, तो कृष्ण उसके भीतर समा गये। अब मीरा कहाँ जायेगी? अंततः कृष्ण उसे अपने में समा लेंगे। जब भक्त ने भगवान को अपने में समाया, अपने हृदय को इतना विराट किया; तो अंततः भगवान भी भक्त को अपने भीतर समा लेंगे। तो चाहे यह घटना तथ्य रूप से घटी या नहीं घटी, मैं नहीं जानता। किंतु यह घटना सत्य है। मीराबाई कृष्ण में समा गईं। हर भक्त भगवान् में समा जाता है। उस अद्वैत की प्रतीति ही आत्मा को तृप्ति देती है। उसके बिना यह जीवन सूना है, सूना ही रहेगा। चाहे हम कुछ भी कर लें, जब तक परम प्रेम की यह घटना न घट जाए; तब तक कोई संतोष नहीं हो सकता। हमारे प्राण किसके लिए प्यासे हैं और किसके लिए तड़प रहे हैं, यह चाहे हमें पता हो या न पता हो; लेकिन इसके बिना कोई संतोष संभव नहीं है। ये कुछ बातें मुझे आपसे निवेदन करनी थीं। आपके भीतर इस विषय से संबंधित कोई सवाल हों, तो अब मैं संक्षेप में उनके उत्तर दूंगा।

धन्यवाद!

प्रश्नः मेरे घर के पास एक गौ पालक रहते हैं और मुझे उनकी गाय से बहुत प्रेम है। यह किस प्रकार के प्रेम की श्रेणी है?

यह प्रथम श्रेणी का प्रेम है। यह करुणा भाव है। गाय हमसे कमज़ोर है, लाचार है, अशक्त है; अतः उसके प्रति इस दयाभाव को, वात्सल्य को पहली कोटि में गिनेंगे।

प्रश्नः जिससे सर्वाधिक प्रेम होता है, वह व्यक्ति कभी–कभी छोटी–सी ग़लतियों की वजह से बहुत ज़्यादा दूर चला जाता है। इससे बहुत दुख होता है और असहनीय वेदना होती है। क्या ऐसा प्रेम करना उचित है?

देखिये, मिश्रित प्रेम में ऐसा ही होगा। जब आप कह रहे हैं कि छोटी–सी ग़लती हो गई। वह छोटी सी ग़लती प्रेम नहीं थी। वही थी अशुद्धि। उस अशुद्धि के प्रति जागो।

प्रेम को बचाओ और अशुद्धि को समाप्त करो। यह घटना दोबारा न हो कि हम जिसे प्रेम करते हैं, वह हमसे दूर चला जाए या उससे हमारा नाता कभी टूटे क्योंकि जिस कारण से टूटना हो रहा है, वह तत्त्व ही अशुद्धि है।

प्रश्न: अगर कृष्ण, गुरुनानक, बुद्ध, ईसामसीह व मोहम्मदसाहब सभी प्रभु के ही हाथ थे, रूप थे; तो उन्होंने मानवता को पंथों मे क्यों बांटा और अलग-अलग धर्म क्यों स्थापित किये?

उन्होंने अलग-अलग धर्म स्थापित नहीं किये। धर्म स्थापित करने के पीछे पंडित, मौलवी और पादरी हैं। ईसामसीह ने कभी ईसाईयत का नाम ही नहीं सुना था। वह तो उनके मर जाने के तीन सौ साल बाद पैदा हुई। बुद्ध के ज़माने में बौद्ध धर्म नाम की कोई चीज़ नहीं थी। उन्होंने तो शांति और प्रेम का पाठ सिखाया। किंतु ये लड़ाने वाले धर्म उनके मर जाने के बाद बने हैं।

प्रश्न: प्रेम में गिरना होता है या प्रेम में उठना?

भाई साहब! प्रेम एक सीढ़ी है, और हम कहीं इस सोपान के मध्य में खड़े हैं। यह सीढ़ी ऊपर भी जाती है और नीचे भी जाती है। इसका निचला छोर नरक को छूता है और ऊपर का छोर स्वर्ग को। नीचे का छोर वासना में टिका है ऊपर का प्रार्थना में। अब हम पर निर्भर है कि हम कहाँ जायेंगे? सीढ़ी हमें कहीं नहीं ले जा रही, हमारी गति की दिशा पर सब निर्भर है कि हम किधर पहुंचेंगे। 'फॉलिंग इन लव' यह मुहावरा तो बहुत सुना होगा, 'राइज़िंग इन लव' भी संभव है।

प्रश्न: हम आपकी बात मानकर संतुष्ट क्यों हों? जब राम, कृष्ण, बुद्ध इत्यादि मनुष्य थे, तो हम भी अपने अंतस का ज्ञान पाकर ही संतुष्ट होंगे। आप से क्यों राज़ी हों?

मैंने कब कहा कि आप मेरी बात सुनकर संतुष्ट हो जाएं? मैं तो असंतोष जगाने आया हूँ। मैं आपको उद्वेलित करना चाहता हूँ। आप उस प्रेम को पाने के लिये तड़पें। आप भी ईसामसीह जैसे हो जाने के लिये, कृष्ण और राम जैसे हो जाने के लिये 'रैस्टलैस' हो जाएं। मैं आपको संतोष देने नहीं आया। मैं आपको और असंतुष्ट करने आया हूँ। आपके भीतर प्यास जगाने आया हूँ। निश्चित ही वह पानी जिससे प्यास बुझेगी, वह तो आपके अंतस से ही आयेगा। वह मैं आपको नहीं दे सकता। मैं क्या, कोई भी नहीं दे सकता। वह आपके भीतर मौजूद है। उसकी तरफ़ इशारा करने आया हूँ।

प्रश्न: किसी क्षण तो ध्यान में ऐसा लगता है कि समस्त अस्तित्व के साथ एक हो गया किंतु वह दशा जल्दी ही चली जाती है। ऐसा क्यों?

शुरूआत में ऐसा ही होगा। जब पहली बार पक्षी पिंजरे के बाहर उड़ता है, तो कुछ

पंख फड़फड़ाने के बाद फिर पिंजरे में वापिस लौट आता है। शुरूआत में ऐसा होना स्वाभाविक है। धीरे-धीरे जब पंख मजबूत होंगे और अपने उड़ने पर भरोसा होगा, तब हम लंबी उड़ान ले सकेंगे। धीरज रखो, ऐसा वक्त भी आएगा। अभी क्षणिक रूप से महसूस हो रहा है कि समस्त अस्तित्व के साथ एक हो गए, इसके लिए अनुग्रह से भरो।

प्रश्नः ओशो जैसे सद्गुरु से मिलकर जब आपके भीतर श्रद्धा जागी, तो आपको कैसा लगा?

शब्दों में कहना बहुत मुश्किल है, इसलिये काव्यात्मक ढंग से कहना चाहूँगा। कभी मैंने एक गीत लिखा था। उसकी कुछ पंक्तियाँ आप से कहता हूँ।

'ओशो मिले तो क्या हुआ बताएं,
हमें देने लगा है आसमां सदाएं।
मुस्कुराती सी लगतीं फ़िज़ाएं।।
गुदगुदा रहीं हैं हवाएं,
रहमत सी लगतीं सज़ाएं।।
ज़मीं दे रहीं दुआएं
ओशो मिले तो क्या हुआ बताएं।।
मंदिर-सा तन हो गया
मन का अर्पण हो गया।
देवता चेतन हो गया
रोशन हुई सब दिशाएं।।
ओशो मिले तो क्या हुआ बताएं।।
रोम-रोम जब हर्षाया
प्रभु का सारा जग भाया
प्रार्थना में जब अनुग्रह आया।
अब जीवन की वीणा बजाएं
ओशो मिले तो क्या हुआ बताएं।।'

प्रश्नः प्रेम की खोज तो सारी ज़िंदगी से चल रही है, किंतु कहीं भी सच्चा प्रेम नहीं मिला। क्या करूं?

प्रेम मांगना बंद करो। प्रेम भीख नहीं, दान है। आपकी दृष्टि ग़लत थी। आप सोच रहे थे कि दूसरे आपको प्रेम दें। इसलिये आप शिकायत कर रहे हैं कि प्रेम नहीं मिला और दुनिया के प्रति नाराज़ हैं। प्रेम देने से शुरूआत करें।

सदगुरु ओशो ने बहुत सुन्दर उपमा से समझाया है कि यह दुनिया, इको पोइंट

की तरह है, जहाँ पहाड़ों से प्रतिध्वनि गूंज़ती है। हम जो देते हैं, वही लौटकर हम पर वापिस आ जाता है। अगर हम गालियां देंगे, तो गालियां वापिस लौटेंगी। गीत गायेंगे, तो गीत वापिस लौटेंगे। अगर कोई आदमी कुत्ते की आवाज़ में भौंकेगा, तो ऐसा लगेगा कि पहाड़ियों में कुत्ते ही कुत्ते भौंक रहे हैं। और अगर कोई कोयल की कुह–कुह की मधुर आवाज़ निकालेगा, तो वही मीठा स्वर लौट–लौट कर आयेगा। जीवन में हमें वही मिलता है, जो हम देते हैं।

आप कह रहे हैं कि प्रेम नहीं मिला। आपके प्रश्न से स्पष्ट हो जाता है कि आपने प्रेम नहीं दिया। आप कामनाग्रस्त थे, आप वासना से भरे थे कि मुझे मिल जाये। और जब आप वासना से भरे थे, तो यही चीज़ प्रतिबिम्बित होकर लौटी। दूसरे लोग भी आपसे छीनने को तत्पर हो गये। आप चले थे दूसरों का शोषण करने, लेकिन दूसरे आपका शोषण करने लगे। और अब आप कह रहे हैं कि सच्चा प्रेम कभी नहीं मिला। मेरी बात याद रखियेगा कि प्रेम भीख नहीं, दान है।

असली सवाल यह नहीं कि दूसरे ने आपको प्रेम दिया अथवा नहीं दिया। सवाल यह है कि क्या आपने दूसरे को प्रेम दिया? जो व्यक्ति देता है, उसे बहुत–बहुत मिलता है। तुम देना शुरू करो।

अगला सवाल है कि साधना का क्या सूत्र है जिससे ईश्वर प्राप्त हो जाएं?

एक ही सूत्र है– अपने प्रेमरूपी स्वर्ण को शुद्ध करते चलो। यह ध्यानरूपी अग्नि में गुज़रने से संभव है।

एक मित्र की जिज्ञासा है कि आप के यहाँ जो ध्यान साधना होती है, उसके बारे में बताएं।

दिल्ली से पचास किलोमीटर दूर हरियाणा के सोनीपत ज़िले में 'मुरथल' के पास हमारा मुख्य आश्रम है, जहाँ आप ध्यान साधना हेतु आ सकते हैं। यहाँ ध्यान साधना संबंधी कई कार्यक्रम होते हैं। इंटरनैट के माध्यम से आप इनके विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

एक सज्जन ने पूछा है कि पिछले जन्म का ज्ञान कैसे प्राप्त होगा?

'महाजीवन प्रज्ञा' तीन दिन का कार्यक्रम है, जिसमें आप ध्यान के द्वारा पिछले जन्मों को जानने का प्रयास करते हैं। इसके अलावा अपने जीवन को संकल्पवान और सफल बनाने के लिये हिप्नोसिस का कार्यक्रम होता है। यह कार्यक्रम कब होने हैं, इसके विषय में भी इंटरनैट के माध्यम से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। स्वागत है, आप आकर उनमें भाग लीजिए और साधना करना सीखिये। मैं तो केवल प्यास

जगाने आया हूँ, निमंत्रण देने आया हूँ। पानी पीने के लिये तो आपको स्वयं कुएँ के पास आना होगा।

एक अन्य मित्र ने पूछा है कि ओशो के प्रवचन की किताबें तो बहुत महंगी आती हैं, सभी लोग ख़रीद नहीं सकते। क्या उपाय है कि प्रत्येक इच्छुक व्यक्ति इन्हें पढ़ सके?

भाई साहब, आपका सवाल आऊट-आफ-डेट हो चुका है। पिछले पंद्रह सालों से हम पूरी कोशिश कर रहे हैं कि ओशो के प्रवचन लागत मूल्य में ही मिल जाएं। उदाहरण के लिये, अभी जिन मित्रों ने यहाँ आयोजन किया है, उन्होंने ओशो के प्रवचनों की चार एमपी थ्री यहाँ उपलब्ध कराई हैं। एक-एक सीडी में 25-25 घंटे के प्रवचन हैं। इन चार सी.डी. के नाम लेता हूँ।

पहली है- 'आनंदित कैसे हों?'

दूसरी है- 'धर्म के नये आयाम'

तीसरी सीडी है- 'आनंद, प्रेम और उत्सव'

और चौथी है- 'प्रेम, विवाह और प्रार्थना'

इनमें लगभग सौ घंटे के प्रवचन हैं और जिन्होंने यह प्रश्न पूछा है, वह जानकर हैरान होंगे कि सौ घंटे के प्रवचन की सी.डी. यहाँ लागत मूल्य पर केवल सौ रुपये में उपलब्ध हैं।

इसके अतिरिक्त हिन्दी व अंग्रेज़ी में सारा ओशो साहित्य, अर्थात् क़रीब 650 किताबें डिजिटल फोर्मैट में निःशुल्क उपलब्ध हैं, आप हमें ईमेल भेजकर इन्हें प्राप्त कर सकते हैं। हमारी मोबाइल एप्लीकेशन के द्वारा भी किताबें एवं समस्त 6000 ऑडियो प्रवचन बिना किसी क़ीमत के पढ़-सुन सकते हैं।

अगला प्रश्न है कि कुछ लोग प्रेम और श्रद्धा में भी स्वार्थ ढूंढ़ लेते हैं। ऐसे लोगों का शक ख़त्म करने के लिये क्या करें?

नहीं, आप कृपया कुछ न करें। उनके जीवन के उत्तरदायी वे स्वयं हैं। वे अपना जीवन जीने के लिये स्वतंत्र हैं। अगर कोई शक और संदेह में ही जीना चाहता है, तो उसकी आज़ादी है। हम दूसरे के जीवन में हस्तक्षेप न करें। यही हमारा उनके प्रति प्रेमपूर्ण रवैया होगा। सब अपने-अपने जीवन के मालिक हैं।

एक साधक ने लिखा है कि मैं पिछले 20 सालों से ओशो का दीवाना हूँ। ओशो को समर्पित करने के लिए मैंने एक गीत लिखा है। कृपया सब श्रोताओं को पढ़ के सुना

दें।

इन्होंने प्यारा–सा गीत लिखकर भेजा है–

'आया है ज़िंदगानी में, सावन नया–नया।
ओशो दिखा रहे हैं, जीवन नया–नया।।
जब से पड़ी है उनकी, मोहब्बत भरी नज़र।
दिखने लगा है घर का भी, आंगन नया–नया।।
सूरज की धूप में तो, नज़र ही बदल गई।
लगता है आज आँख को, गुलशन नया–नया।।
ये आप की हसीन, मोहब्बत का है करम।
महका है मेरी रूह में, चंदन नया–नया।।
तेरे इश्क़ का हुआ है, दिल पे ग़ज़ब असर।
खनके है रात–दिन मेरा, कंगन नया–नया।।
देखो अपने प्यार को, न कोई नज़र लगे।
थामा है हमने यार का, दामन नया–नया।।
आया है ज़िंदगानी में, सावन नया–नया।
ओशो दिखा रहे हैं, जीवन नया–नया।।'

जिन मित्र ने यह ख़ूबसूरत ग़ज़ल भेजी है, उन्हें बहुत–बहुत शुक्रिया अदा करता हूँ।

आज का आख़िरी सवाल है कि आप लोग जो माला पहनते हैं, इसका क्या तात्पर्य है?

अभी–अभी जो प्रेम–साधना और ध्यान–साधना की बात मैंने कही, उस साधना के प्रति संकल्प से भरने का नाम है– 'मालादीक्षा'। जब हम गुरु की तस्वीर अपने हृदय पर धारण करते हैं, तो इसका मतलब है कि हमने एक संकल्प लिया है, निश्चय किया है कि हम अपने भीतर की दुर्भावनाओं को नष्ट करेंगे, और अपने भीतर सद्भावनाओं को विकसित करेंगे। अपने भीतर के 'सोने' को शुद्ध करेंगे। साधना का एक संकल्प है 'मालादीक्षा लेना।

जिन मित्रों को यह बात समझ में आ गई है कि अपने जीवन को निखारना है, शुद्ध, बेहतर, ज़्यादा सुंदर करना है; सजाना है, आत्मा का श्रृंगार करना है; अब उनका स्वागत है। जिन मित्रों को दीक्षा लेनी हो, वे एक–एक करके मेरे सम्मुख आँख बंद करके बैठेंगे। जब मैं माला पहना दूँ; तब आप उठकर सदगुरु ओशो की तस्वीर को नमन करके मंच से नीचे उतरियेगा। नमन करते हुए हृदय में भाव हो कि 'हे प्रभु, मुझे शिष्य रूप में स्वीकारो।'

बाक़ी सब मित्र अपनी–अपनी जगह खड़े होकर या बैठे–बैठे उत्सव मनायेंगे। माला दीक्षा के दौरान प्यारा संगीत चलेगा। जिस गीत से हमने शुरूआत की थी, उसी पर समापन होगा। धन्यवाद! जय ओशो!

प्यार की छांव तले, कोई तो गांव बसे
प्रीत संगीत बजे, मीत का गीत सजे।
न कोई शत्रु, न कोई वैरी, कोई न तेरा मेरा हो
हम सबके हों, सब अपने हों, कोई नहीं अकेला हो।
धर्मों के नाम पे कुछ भी न मानें, सतनाम को हम जानें
तन के मंदिर में ज्योतिर्मय, अंतर राम को पहचानें।
हृदय हो हरिद्वार, तीर्थ हो घर–बार, स्वर्ग बने सारा संसार
अहोभाव की प्रार्थना गूंजे, धन्यवाद प्रभु बारंबार।
सांझ रास हो, रात हो नीरव, उत्सवपूर्ण सवेरा हो
ध्यान हो साक्षी, कर्म हो पूजा, ओशो का सपना पूरा हो।

स्वास्थ्य और ध्यान

प्यारे मित्रो, नमस्कार! जय ओशो!

आज स्वास्थ्य और ध्यान के संबंध में, मैडिसन और मैडिटेशन के बारे में थोड़ी सी चर्चा करना चाहूँगा। दोनों आपस में संबंधित हैं। वास्तव में ग्रीक भाषा के जिस मूल धातु से चिकित्सा शास्त्र हेतु 'मैडिसन' शब्द आया है; उसी से ध्यान हेतु 'मैडिटेशन' शब्द भी आया है। दोनों बातें आपस में जुड़ी हुई हैं। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' जिसे 'डब्ल्यू. एच. ओ.' यानि वर्ल्ड हैल्थ ओर्गनाईज़ेशन कहते हैं; उसने स्वास्थ्य की जो परिभाषा की है, वह समझने जैसी है। स्वास्थ्य की डैफ़िनिशन है– फ़िज़िकल, मैंटल, इमोशनल एण्ड स्पिरिचुअल वैल बीइंग इज़ हैल्थ अर्थात् शारीरिक, मानसिक, हार्दिक और आत्मिक रूप से अच्छा लगने की अनुभूति का नाम स्वास्थ्य है।

हमारे मन में स्वास्थ्य की जो धारणा है, वह बड़ी सुपरफ़िशियल, ऊपरी–ऊपरी और सतही है। शरीर स्वस्थ हो, बस इसी को हम स्वस्थ होना समझते हैं। जबकि हम केवल शरीर ही नहीं हैं। हमारा होना कम से कम चार हिस्सों में डिवाइड करके समझा जाना चाहिए। मनुष्य केवल तन ही नहीं है, मन भी है। अन्य पशुओं और मनुष्य में यही तो भिन्नता है। मनुष्य के पास जैसा मन है, वैसा मन पशु–पक्षियों व वनस्पतियों के पास नहीं है। अतः मनुष्य का मानसिक रूप से स्वस्थ होना भी अनिवार्य है। फिर आता है हमारा भावनात्मक आयाम, जिसे सामाजिक होना भी कहा जाता है। सोशल वैल बीइंग, अर्थात् केवल हमारे तन–मन का स्वस्थ होना ही ज़रूरी नहीं है। हम अपने परिवेश में यानि परिवार में, समाज में, देश में, और विश्व में भी एक स्वस्थ व्यक्ति की भूमिका निभा सकें, यह भी बहुत आवश्यक है। इसके अनुसार भी हम स्वस्थ अथवा रुग्ण हो सकते हैं।

फिर चौथी बात सबसे गहरी है। यह है आध्यात्मिक स्वास्थ्य, स्पिरिचुअल वैल बीइंग। अधिकांश लोगों को इस चौथे तल का तो कभी ख़्याल भी नहीं आता। उन्हें पता ही नहीं होता कि यह भी जीवन का कोई आयाम है। जबकि सर्वाधिक गहरा आयाम यही है। अगर हमें अंतर्तम में अच्छा नहीं लग रहा है, तो हमारे बाहर के तीन तलों पर भी हमें अच्छा नहीं लग सकता, क्योंकि चीज़ें भीतर से बाहर की ओर आती हैं। जैसे किसी जड़ से तना निकलता है, उस पौधे में फिर पत्तियां, फूल, फल इत्यादि लगते हैं। मूल से फूल की ओर, फ्रम द रूट्स टू द फ़्लावर्स। ऐसी जीवन की यात्रा है। ठीक ऐसे ही अंतरात्मा हमारी जड़ है। उसी से मन का, हृदय का, विचारों एवं भावनाओं का अंकुर निकलता है। और धीरे–धीरे चीज़ें शरीर के तल पर आती हैं।

बाहर से जो घटनाएं घटती हैं, उनके कुछ प्रभाव मन पर भी पड़ते हैं। मैं उस संबंध में भी संक्षिप्त ज़िक्र करना चाहूँगा। बीमारियाँ दो प्रकार की हो सकती हैं। पहली, जो बाहरी प्रभाव से उत्पन्न होतीं हैं। समझो पैर में चोट लग गई, घाव हो गया, बैक्टीरियल इन्फ़ैक्शन हो गया और मवाद पड़ गई। ये चोट का लगना बाहर से था। ये बैक्टीरिया का इन्फ़ैक्शन भी बाहर से आया। तन के तल पर घटना घटी। अन्य उदाहरण समझो– खानपान में कुछ ख़राबी आ गई, फ़ूड पोईज़निंग हो गया। बाहरी घटना ने हमारे शरीर को प्रभावित कर दिया।

और याद रखना! जब तन प्रभावित होता है, तो हमारे भीतर मन भी प्रभावित हो जाता है। तन–मन संयुक्त हैं इसलिए यह दोनों एक–दूजे से अप्रभावित हुए बिना नहीं रहते। किसी व्यक्ति को सालों–साल चलने वाली कोई क्रॉनिक बीमारी हो गई, तो क्या उसका मन इससे अप्रभावित रह पायेगा? समझो किसी को टीबी हो गई, एक साल तक इलाज चलेगा; या कैंसर हो गया, जिसके बारे में पता है कि लाइलाज है।

अब ये ठीक नहीं होने वाला। क्या इस व्यक्ति का मन जैसा पहले था, अब वैसा रह सकेगा? निश्चित रूप से उस व्यक्ति का मन भी प्रभावित होगा। यद्यपि जो घटना घटी है, वह बाहर के तल पर घटी है। लेकिन उसके प्रभाव भीतर तक जायेंगे।

जैसे हम किसी तालाब में एक कंकड़ फेंकते हैं, तो उससे तरंगें पैदा होती हैं और तरंगें दूर–दूर तक चली जाती हैं। ठीक इसी प्रकार से हमारा होना साईकोसोमैटिक है। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य आपस में जुड़ा हुआ है। यदि तन के तल पर कोई घटना घटती है, तो उसके प्रभाव मन तक जाते हैं। और इसका उल्टा भी सच है। मन में कोई घटना घटती है, उसके प्रभाव बाहर भौतिक शरीर पर भी आते हैं।

आज सुबह ध्यान प्रयोग के पहले हम चर्चा कर रहे थे कि हमारे भीतर दमित भावनाएं हैं। उदाहरण के लिये, मैंने कहा था कि किस प्रकार क्रोध हमारे भीतर तनाव पैदा करता है। धीरे–धीरे यह एक घाव बन जाता है और फिर हमारी दिनचर्या को, हमारे बाह्य आचरण को, यहाँ तक कि हमारे शरीर को भी प्रभावित करता है। जो व्यक्ति लगातार क्रोध की स्थिति में जीता है और छोटी–मोटी बात में बहुत आग बबूला हो जाता है; आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, उसे हाई ब्लड–प्रैशर की बीमारी होने वाली है। ज़रा–सी बात में इसका ख़ून खौलता है और रक्तचाप भी बढ़ जाता है। शुरूआत मे तो कभी–कभार बढ़ेगा, फिर वापिस नॉर्मल आ जायेगा; फिर बढ़ेगा, फिर सामान्य हो जायेगा। अगर यह प्रक्रिया सालों–साल चलती रही, तो एक उम्र आते–आते ब्लड प्रैशर परमानैंट हाई हो जायेगा। क्रोध आया तो था हृदय के तल पर, लेकिन उससे बढ़ गया ब्लड प्रैशर, जो कि एक शारीरिक घटना है। अब ऐसी स्थिति आ गई कि बिना क्रोध के भी इसका ब्लड प्रैशर हाई बना रहता है। यह ब्लड प्रैशर क्रमशः किडनी को ख़राब करेगा, आँखों को हानि पहुँचाएगा, हृदय एवं मस्तिष्क पर असर डालेगा और संभावना है कि हार्ट–अटैक अथवा लकवे का अटैक भी आ जाए। कहाँ से शुरू हुई थी बात और कहाँ पहुँच गई! भावना के वशीभूत होकर अंततः शरीर प्रभावित हो गया।

चिंता या तनाव का एक दूसरा उदाहरण लें। यदा–कदा चिंता तनाव हो और फिर हम रिलैक्स हो जाएं, तो कोई प्रॉब्लम नहीं होती। वैचारिक तल पर हम थोड़ी देर के लिये तनाव में पड़ते हैं, फिर शिथिल व शांत हो जाते हैं। प्रकृति ने हमारे भीतर दो इंतज़ाम किये हैं। योग की पुरानी शब्दावली में जिन्हें इड़ा–पिंगला यानि क्रमशः चंद्र–नाड़ी व सूर्य–नाड़ी कहा जाता है। चंद्र–नाड़ी शांति प्रदान करने वाली है और सूर्य–नाड़ी उत्तेजना पैदा करने वाली है। एक हमें शीतल व ठंडा करती है, इसलिये उसे चंद्रमा के नाम से पुकारा गया है और दूसरी हमें उत्तप्त करती है, इसलिये उसका नाम सूरज से जोड़ रखा है। आधुनिक मैडिकल साईंस की भाषा में इसी को पैरासिंपथैटिक

नर्वस सिस्टम और सिंपथैटिक नर्वस सिस्टम कहते हैं। ये ऑटोनोमिक नर्वस सिस्टम के दो परिपूरक हिस्से हैं। एक (पिंगला यानि दायीं) का काम है तनाव पैदा करना और दूसरे (इड़ा यानि बायीं नाड़ी) का काम है तनाव को ख़त्म करना। दोनों की ज़रूरत है।

ज़रा कल्पना करिए कि किसी जानवर पर शेर ने आक्रमण किया। शेर जंगल में उसके पीछे भाग रहा है। वह जानवर अपनी जान बचाने के लिये तेज़ी से दौड़ रहा है। इस दौरान उसकी साँस बहुत तेज़ी से चलने लगी और मांसपेशियों में ख़ून का बहुत ज़्यादा संचार हो गया। अचानक उसके अंदर बड़ी शक्ति जागृत हो गई ताकि वह भागकर अपनी जान बचा सके। अंततः वह किसी पेड़ पर चढ़ गया, जहाँ शेर नहीं चढ़ सकता और तब उसने राहत की साँस ली। थोड़ी देर में शेर वहाँ से दूर हट गया और वह जानवर भी शांत हो गया। उसकी साँस पुनः नॉर्मल चलने लगी, हृदय की धड़कन कम हो गई और तनावपूर्ण स्थिति ख़त्म हुई। वह शांत हो गया। ये दोनों ही चीज़ें ज़रूरी थीं। शेर को देखते ही उसके भीतर से सिंपथैटिक नर्वस सिस्टम ने कार्य करना शुरू किया। सूर्य–नाड़ी ने उत्तेजना पैदा की। उस स्थिति में दो ही चीज़ें संभव थीं। आईदर फ़ाईट ओर फ़्लाईट; या तो जूझो–लड़ो अथवा भागो। उसके लिये तन–मन तैयार हो गए। वो साँस का तेज़ चलना, हृदय–गति और ब्लड प्रैशर का बढ़ना, मांसपेशियों में रक्त–संचार अधिक हो जाना, अचानक बहुत ज़्यादा शक्ति पैदा हो जाना; ये सब ज़रूरी था। ताकि लड़ो और भागो। किंतु एक बार वह जानवर सुरक्षित स्थान पर पहुँच गया, उसके बाद पैरासिंपथैटिक नर्वस सिस्टम ने कार्य करना शुरू किया। उसने ऐसे रसायन छोड़े, जिनसे हृदय की धड़कन, साँस की गति, मांसपेशियों के तनाव आदि सब नॉर्मल हो गए। दोनों प्रक्रियाएं अनिवार्य थीं।

लेकिन हम आज के सभ्य–सुसंस्कृत समाज में जिस भांति जी रहे हैं, हमारी स्थिति की तुलना ऐसी कल्पना से करिए कि जैसे किसी शेर के सामने आठ–दस कमज़ोर जानवरों को रस्सी से बांध दिया गया हो। वे निरीह प्राणी वहाँ से भाग नहीं सकते, बंधे हुए हैं और शेर सामने बैठा बीच–बीच में दहाड़ता रहता है। वे जानवर लड़ नहीं सकते, भाग भी नहीं सकते। ज़रा सोचिए! आप जिस ऑफिस में काम करते हैं, क्या यही स्थिति नहीं है? बॉस अपने ट्रैंसपैरेन्ट ग्लास चेम्बर में बैठा है; उसकी नज़रें आप पर लगी हुई हैं। बीस आदमी ऑफिस में काम कर रहे हैं। मानो किसी अदृश्य रस्सी से, नौकरी की डोर से, आजीविका व रोज़ी–रोटी की डोर से बीस भेड़ें बंधी हुई हैं। शाम को इन भेड़ों को छोड़ दिया जाता है कि कल सुबह फिर आ जाना। आठ घंटे शेर के सामने रहना। दिनभर बॉस डांटता–डपटता रहता है और ये बेचारे कर्मचारी कुछ भी नहीं कर सकते। प्रकृति की तरफ़ से जो सहज घटना होनी चाहिए, वह तो वही होगी। भीतर तो हृदय की धड़कन बढ़ेगी, मांसपेशियों में रक्त संचार बढ़ेगा, फ़ाइट ओर

फ़्लाईट, मरो या मारो की स्थिति बनेगी। लेकिन हम जंगली जानवरों से भी ज़्यादा बुरी हालत में हैं। न हम भाग सकते हैं और न हम मार सकते हैं। हमें रोज़ यहीं आना है। यहीं से तनख़्वाह मिलती है। मगर शरीर तो शरीर है। शरीर में तो वह सारी नैसर्गिक प्रक्रियाएं घटेंगी। मन में तो तनाव पैदा हो रहा है, किंतु शांत होने का मौक़ा ही नहीं मिल रहा। जंगल में शांत होने का अवसर मिलता था। चंद्र–नाड़ी वाला फ़ंक्शन भी होता था। हमारा वह फ़ंक्शन तो बंद ही हो गया है। हमारी सूर्य–नाड़ी दिन भर उत्तेजना पैदा कर रही है। और शाम को घर जाने से भी क्या होने वाला है? वहाँ एक शेरनी बैठी हुई है। ऑफिस के बॉस से बचे, तो वहाँ घर की बॉस मौजूद है। घर पहुँचते ही वह दहाड़ेगी कि आज देरी से क्यों आये? बड़ी मुसीबत है। कार्यालय का शेर चाहता है कि आप देर से जाओ, ओवरटाईम काम करो। और घरेलू शेरनी चाहती है कि ठीक वक्त पर घर आओ। बेचारा आदमी करे तो क्या करे? किसकी माने और किसकी न माने! और दोनों से बना के रखनी है। सूर्यनाड़ी अंदर बौखला रही है लेकिन चंद्रनाड़ी के पास उसे शांत करने का अवसर ही नहीं है।

ऐसे आप पच्चीसों उदाहरण खोज सकते हैं, जहाँ हमारा मन उत्तेजित हो जाता है और हमें शांत–शिथिल–रिलैक्स होने का कोई मौक़ा ही नहीं मिलता। यदि मिलता है, तो बहुत कम, यदा–कदा। क्या हमारा शरीर लंबे समय तक अप्रभावित रह पायेगा? जहाँ मन इतने तनाव और परेशानी में है, सदा–सदा चिंता में है, हमेशा डरा–सहमा हुआ है, निश्चित ही इसके प्रभाव तो पड़ेंगे; हम बच नहीं सकते।

मित्रो, इस तरह हमारा स्वास्थ्य कई चीज़ों से प्रभावित होता है। बाहर की परिस्थितियों का प्रभाव भीतर पड़ता है। भीतर के प्रभाव बाहर भी जाते हैं। जो व्यक्ति सतत चिंता में जीता है, उसकी नींद उड़ जाती है। क्योंकि वह रात को भी शिथिल नहीं हो पाता। दिनभर शेर–शेरनियों के जो कटु अनुभव किए, तो उसे रात सपने में भी घबराने वाली दहाड़ें सुनाई देती हैं। दुःस्वप्न आते हैं––नाईटमेयर्स। जब चैन से सो नहीं सकता, तो उसके पेट में एसिडिटी बढ़ने लगती है। अम्लीयता ज़्यादा हो जाती है और पैप्टिक अल्सर हो जाता है। चिंता हुई थी मन में और घाव हो गया है पेट में। विचार, वस्तु में परिवर्तित हो गए और शरीर प्रभावित होने लगा। अब एसिडिटी का कितना ही इलाज करो, टैंपररी फ़ायदा ही होगा। महीने दो महीने ठीक रहोगे, फिर वापिस वही समस्या घेर लेगी! क्योंकि परिस्थिति और मनःस्थिति वही की वही है। चिंता, भय, घबराहट और नींद ग़ायब। शांत और शिथिल नहीं हो पा रहे। पेट में जलन हो रही है। सच पूछो तो जलन तो पूरे बदन में हो रही है, तन–मन में आग लगी है। लेकिन पेट बेचारा कमज़ोर है, तो वहाँ की नाज़ुक चमड़ी जल गई और घाव बन गया।

क्या हम ऐसे आंतरिक मनोजन्य रोग को बाहरी औषधियों से मिटा पायेंगे? हम

जो कुछ भी करेंगे, वह सब अस्थाई उपाय होगा। ब्लड प्रैशर की बीमारी पर चौबीस घंटे से अधिक किसी दवाई का असर नहीं होता। क्योंकि सिचुवेशन वहीं की वहीं है और तन-मन को जो समस्याएं झेलनी पड़ रहीं हैं, ज्यों की त्यों हैं। ऐसी दशा में हम पूर्णतः स्वस्थ कैसे हो सकते हैं? फिर धीरे-धीरे जीवन के प्रति हमारे मन में प्रेम ही नहीं बचता। न जाने कितने ही लोग हैं, जो अपने जीवन को बोझ की तरह ढो रहे हैं? नाम मात्र को ज़िंदा हैं बस!

अभी थोड़े दिनों पहले मैं यूरोप के एक कैंसर विशेषज्ञ के अध्ययन की रिपोर्ट पढ़ रहा था। मैं बहुत हैरान हुआ। उसने बिल्कुल ठीक बात पोइंट आउट की। उसकी स्वयं की भी काफ़ी उम्र हो गई है। वह बड़ा अनुभवी है। ज़िंदगी भर कैंसर के हज़ारों मरीज़ों को देखते-देखते अचानक उसे एक ऐसी बात ख़्याल में आई, जो कभी किसी ने सोची नहीं थीं। अनायास उसके मन में आया कि मेरे पास जो मरीज़ आते हैं, इनमें से मानसिक रूप से विक्षिप्त कोई भी नहीं है। और दूसरी बात इनमें से अपराधी भी कोई नहीं है। ये बात सोचकर थोड़ा चकित हुआ कि भला ऐसा कैसे हो सकता है? कैंसर का मरीज़ अपराधी क्यों नहीं हो सकता? जैसे सामान्य समाज में मान लो दो प्रतिशत क्रिमिनल्स होते हैं, तो इनमें भी वही परसैंटेज होनी चाहिए। चलो थोड़ा बहुत, आधा परसैंट ऊपर नीचे हो सकता है। अगर जैनरल पॉप्युलेशन में चार परसैंट लोग विक्षिप्त हैं, तो इनमें भी होने चाहिए। लेकिन उसने पाया कि ऐसा नहीं है। तब उसने अपने एक साईकायट्रिस्ट दोस्त के साथ इस बात की चर्चा की। चूंकि वह मित्र मनोरोग विशेषज्ञ है, पागलख़ाने का इंचार्ज है। उसने कहा कि बड़े आश्चर्य की बात है! तुम्हारी बात सुनकर मुझे भी सूझा कि पागलख़ाने में लोगों को कैंसर क्यों नहीं होता?

उन दोनों ने मिलकर इन अपराधियों, पागलों और कैंसर पीड़ितों का काफ़ी अध्ययन किया। वे बड़ी-बड़ी जेलों में गये, जहाँ संगीन अपराधी कारागृह में बंद हैं। उनकी पूरी लाईफ़-हिस्ट्री पता लगाई। उन्होंने उनकी बीमारियों का हिसाब-किताब लगाया, तो स्पष्ट रूप से समझ में आया कि जो अपराधी या पागल हैं, उनको कैंसर नहीं होता। उनके हाथ एक विचित्र तथ्य लगा कि जिन्हें कैंसर है, वे अपराध नहीं करते, वे पागल नहीं होते। उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था कि ऐसा क्यों है?

फिर तो उन्होंने इस क्षेत्र के बड़े-बड़े विशेषज्ञों की एक टीम निर्मित की। ख़ासकर जो लोग 'क्रिमिनल साईकॉलजी' पर रिसर्च कर रहे थे, उनके साथ मिलकर बहुत सारे लोगों का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन से एक विचित्र निष्कर्ष निकला और उनकी बात से मैं सहमत हूँ। वे कहते हैं कि वास्तव में लोग जीना नहीं चाहते। लोग अपने जीवन से ऊब गये हैं। जीवन में उन्हें कोई मज़ा नहीं आ रहा, कोई रस नहीं, कोई आनंद नहीं, कोई प्रेम नहीं। वे मर जाना चाह रहे हैं। लेकिन इतनी

हिम्मत नहीं है कि सीधे–सीधे सूइसाईड कर लें। जिनकी हिम्मत है, वे या तो ट्रेन से कट गये या आग लगा लीं और कुछ पंखे से लटक गये। अब जो बचे–खुचे कायर हैं, जिनके पास इतनी हिम्मत नहीं है कि मर जाएं और जीने की कोई लालसा नहीं है। जिन्हें जीने में कुछ रस नहीं आ रहा, वे क्या करें? तो उन्होंने तीन तरकीबें खोजी हैं, जहाँ क़रीब–क़रीब वे इमरजंसी की हालत में पहुँच जायेंगे। जहाँ उन्हें जीना नहीं पड़ेगा। क्योंकि जीवन जीओ, तो कई ज़िम्मेवारियां, कई रिस्पोंसिबिलिटीज़ और कई उत्तरदायित्व आते हैं। तो ऐसे लोगों ने जीवन से बचने के तीन एस्केप रूट्स अर्थात् तीन पलायन मार्ग खोज निकाले हैं।

पहला उपाय है फिज़िकल लैवल का, शारीरिक तल पर कैंसर। वैसे तो मरीज़ डॉक्टर के चक्कर लगा रहा है। ऊपर–ऊपर से दिखा रहा है कि मैं इलाज में उत्सुक हूँ। लेकिन एक्चुअली वह इंट्रैस्टिड नहीं है। वह नहीं चाहता कि उसका कारगर इलाज हो जाये और वह होने भी नहीं देगा। कुछ भी कर डालो, वह ठीक नहीं होने वाला! क्योंकि वह ज़िंदा नहीं रहना चाहता, तो ये उसकी मरने की एक तरकीब है। दो–चार साल में वह दुनिया से खिसक जायेगा। बेचारा कहेगा कि मैं क्या करूं, कैंसर हो गया। मैंने तो बहुत कोशिश की। बड़े–बड़े डॉक्टरों के पास गया, कितने अस्पतालों के चक्कर काटे; लेकिन चिकित्सक कुछ कर ही नहीं पाये। सारे डॉक्टर फेल हो गये। ऐसा वह केवल ऊपर–ऊपर से दिखा रहा है। जिस डॉक्टर ने किताब लिखी है, उसने वर्णन किया है कि जब मैं कैंसर के दस–बारह मरीज़ों को किसी मीटिंग के लिये, कुछ डिस्कशन करने के लिये या उनकी मानसिकता समझने के लिये बुलाता हूँ, तो विडियो–रिकॉर्डिंग चलती रहती है। मरीज़ों के हाव–भाव रिकॉर्ड किये जाते हैं कि उनके चेहरे पर क्या एक्सप्रैशन्स आये? वह डॉक्टर अपना परिचय देता है कि मैं फलां–फलां डॉक्टर और ये मेरा नाम है। मैं कैंसर विशेषज्ञ हूँ। आप लोग बिल्कुल चिंता मत करिए। मेरे किसी इलाज से आप ठीक नहीं हो सकते। वह अपने परिचय में यह घोषणा कर देता है कि ठीक होना नामुमकिन है। वे लोग अपेक्षा नहीं कर रहे थे कि डॉक्टर अचानक ऐसी बात बोलेगा। बाद में जो विडियो–रिकॉर्डिंग की गई है, उसका अध्ययन किया जाता कि डॉक्टर की इस बात से श्रोताओं (मरीज़ों) के चेहरे पर क्या हाव–भाव आये? हम जैसा सोच रहे हैं, वैसा कुछ भी नहीं हुआ। हम यही कल्पना करते हैं कि डॉक्टर की बात सुनकर लोग घबरा जायेंगे। उनके मन में डर का भाव आयेगा। विशेषज्ञ डॉक्टर खुद ही कह रहा है कि अब बचने का कुछ उपाय नहीं है। ये रोग लाइलाज है। लेकिन विडियो–रिकॉर्डिंग के अध्ययन से पता चलता है कि ये वाक्य सुनकर लोगों ने राहत की साँस ली। वे खुश हुए कि यह ठीक है। पहले वे डॉक्टर को दुश्मन जैसा समझ रहे थे। उन्हें लगता था कि यह दुष्ट डॉक्टर उन्हें ठीक करने के पीछे पड़ा है। उन्होंने ज़िंदगी

से बचने के लिए कैंसर रूपी पलायन मार्ग चुना है। इन्होंने शारीरिक तल पर छुटकारे का उपाय कर लिया।

जीवन को छोड़ने का जो दूसरा रास्ता खोजा गया है, वह है–मन के तल पर। ऐसे लोग पागल हो गये। अब वे समाज में फ़िट नहीं हो सकते। उन्हें पागलख़ाने में डालना होगा। अब वे किसी काम के नहीं हैं। परिवारजन उनसे कोई उम्मीद नहीं कर सकते कि ये तुम्हारी ज़िम्मेवारी है या तुमने उत्तरदायित्व पूरा नहीं किया। अब उनका दिमाग़ असंतुलित हो गया। अब उनसे कोई भी कुछ अपेक्षा नहीं रखता। उनको दूर किसी पागलख़ाने में डाल दिया गया। अब न कोई उनसे मिलने–जुलने आता है और न यह पूछने आता कि ज़िंदा हैं या मर गये? वे कब तक ज़िंदा रहे, इससे किसी को कुछ लेना–देना नहीं। वे इस दुनिया की जवाबदारियों से छुटकारा पा चुके हैं। इन तथाकथित सभ्य लोगों की दुनिया में उन्हें नहीं जीना। इससे घबराकर वह बुरी तरह ऊब गये। जब सीधा सूइसाईड नहीं कर सके, तो उन्होंने दूसरा रास्ता खोज लिया और विक्षिप्त हो गये। उन्होंने मन के तल पर पलायन द्वार का प्रयोग किया। अब उन्हें कैंसर की ज़रूरत ही नहीं है। उन्होंने ज़िंदगी से बचने का दूसरा उपाय खोज लिया है। याद रखना! ज़िम्मेवारी और ज़िंदगी एक–दूसरे के पर्यायवाची हैं।

तीसरे हैं इमोशनल एस्केप रूट को अपनाने वाले लोग। वे सोशलि अनफ़िट हो गये और अपराधी बन गये, क्रिमिनल बन गये। उन्हें जेलखाने में डाल दिया गया। फिर दुनिया उनके बारे में भूल गई। जहाँ तक संभव होगा, कोर्ट ही आदेश देगा कि इनको मृत्युदंड दिया जाये, फाँसी पे लटका दिया जाये, आजीवन कारावास दिया जाए अथवा कई–कई सालों के लिये जेल में बंद रखा जाये। इस प्रकार उन्होंने दुनिया से छुटकारा पा लिया। इसलिये अब उनको कैंसर क्यों हो? अब न तो उन्हें कैंसर की ज़रूरत है और न ही पागल होना ज़रूरी है। इस समाज से और ज़िंदगी से छुटकारा पाने का अलग ही इंतज़ाम कर लिया। अगर उन्हें जेल से बाहर छोड़ भी दो, तो वे कोई न कोई अपराध करके फिर जेल में आयेंगे। वे उम्मीद कर रहे हैं कि योर ऑनर, मुझे फाँसी की सज़ा दो। अब किस चीज़ का इंतज़ार है? क्या अपराध करूं कि फाँसी की सज़ा हो?

सुनने में यह सत्य बहुत अजीब लगता है। लेकिन इन विशेषज्ञों द्वारा हज़ारों लोगों पर रिसर्च की गई और तब उन्होंने जीवन से बचने की ये तीन बातें खोजी। यह एक प्रकार से मरने के ही उपाय हैं। फ़र्क़ इतना है कि ये आत्महत्या नहीं बल्कि एक प्रकार के स्लो सूइसाईड हैं। इनमें इतनी हिम्मत नहीं है कि ये सूइसाईड कर लें। तो ये तीन आयाम हैं––फ़िज़िकल, मैंटल और सोशल। सोशल को हम इमोशनल भी कह सकते हैं। क्योंकि अपराधियों में भावनात्मक रूप से रिग्रैशन हो जाता है। हम किसी

व्यक्ति को उसके इमोशनल क्वोशंट से नाप सकते हैं। साईकॉलजि में उसे 'ई–क्यू' कहते हैं। जैसे इंटैलिजैंस क्वोशंट अर्थात् आई–क्यू नापते हैं, वैसे ही ई–क्यू नापने के भी उपाय हैं। अपराधी वे लोग बनते हैं, जिनके भीतर ई–क्यू बहुत कम या ख़त्म–सा हो गया। अब उनमें संवेदना या भावना बची ही नहीं। किसी का गला दबा दो, चाकू मार दो, जेब काट लो, या मर्डर कर दो; उनके अंदर कुछ भावना पैदा नहीं होतीं। अब उनमें कोई सहानुभूति, कोई लगाव, कोई दया, कोई करुणा नहीं बची। क़त्ल कर दो, आतंकवादी बन जाओ, बम फोड़ दो, दूसरों को मार डालो या ख़ुद मर जाओ; उन्हें किसी चीज़ से तकलीफ़ नहीं है। जब जीना ही नहीं है, तो भावना किस बात की? जब अपने ही जीवन की क़द्र नहीं है, तो दूसरे के जीवन की क़द्र कैसी? जब हम ख़ुद मरने को तैयार हैं, तो दूसरे को मारने से भी हमें क्या फ़र्क़ पड़ेगा? यही वे लोग हैं, जो अपराधी और आतंकवादी बन जाते हैं। इन्हें न तो अपने जीवन से प्रेम है और न दूसरे के जीवन से प्रेम है। ये सब को नष्ट करने को तत्पर हैं। वस्तुतः वे खुद नष्ट होना चाहते हैं। वे यही सोचते हैं कि चलो, इसी बहाने हम भी ख़त्म हो जायें, तो ज़िंदगी से छुटकारा हो!

उस यूरोपियन कैंसर विशेषज्ञ की यह रिपोर्ट पढ़कर मुझे ख़्याल आया कि अगर ये सज्जन भारत में भी रिसर्च करते तो एक चौथे रास्ते का, फ़ोर्थ ऐस्केप रूट का पता चलता। हिन्दुस्तान में जिसका नाम है– 'संन्यास'। त्यागी साधु–महात्मा, संत, तपस्वी; ये सभी स्पिरिचुअल ऐस्केप रूट से भाग खड़े हुए लोग हैं। इन्हें भी जीवन बिल्कुल पसंद नहीं है। इन्हें भी ज़िंदगी से कतई लगाव नहीं है। ये त्यागी बन गये, तपस्वी बन गये और ऊपर से आदर भी मिल रहा है। कोई ये भी नहीं कह रहा है कि तुमने कुछ ग़लत किया। अपराधी को तो हम कहते हैं कि तुमने ग़लत किया। कैंसर पीड़ित का भी हम इलाज करने की कोशिश करते हैं। क्या आपने किसी महात्मा का इलाज करने की कोशिश की है? दे आर स्पिरिचुअली सिक पीपल। जैसे जेलख़ाने और पागलख़ाने बनाते हैं, वैसे ही साधुख़ाने, त्यागीख़ाने और तपस्वीख़ाने बनाने पड़ेंगे! इनके भीतर कुछ गड़बड़ हो गई है। ये कैसे तपस्वी हैं? सबको गरमी लग रही है। हम चाह रहे हैं कि ए.सी. कमरे मैं बैठें और ये गर्मी के दिनों में आग जलाकर, धूनी रमा कर बैठा है। क्या आपको नहीं लगता कि कुछ गड़बड़ हो गई? हमें लगता है सुख सुविधा में रहें, अच्छे गद्दे पर बैठें, आराम से सोयें। ये आदमी कांटों की सेज पर लेटा हुआ है। हमें लगता है कि घर में अच्छा सोफ़ा हो, आरामदायी कुर्सी हो, सुंदर फ़र्नीचर हो और ये खड़ेश्री बाबा हैं। बारह सालों से खड़े हैं। बैठते ही नहीं। क्या आपको लगता है कि यह आदमी नॉर्मल है? इस साल दिल्ली में और उत्तरी भारत में कितनी ठंड थी! और दिगम्बर मुनि बेचारे, ऊनी क्या सूती वस्त्र भी नहीं पहनते। आपको लगता है ये

नॉर्मल हैं? शरीर की सुरक्षा करना, ठंड व गर्मी से बचाव करना, क्या यह नार्मल नहीं है? भूख लगती है और भोजन करने की इच्छा होती है, क्या यह नॉर्मल नहीं है?

जिस आदमी को जीवन से प्रेम होगा, वह निश्चित रूप से पोषक आहार लेना चाहेगा, ठीक भोजन करना चाहेगा। उस आदमी को क्या ठीक कहोगे, जो उपवास कर रहा है! क्या इसका दिमाग़ सही–सलामत है? या इसे इलाज की ज़रूरत है? क्यों भूखा मर रहा है? वास्तव में तो ये अवचेतन रूप से मरना ही चाह रहा है। यद्यपि इकट्ठा, थोक में मरने का साहस नहीं जुटा पा रहा। पशुवध करने वाले दो प्रकार से प्राण लेते हैं––हलाल करना और झटके से मारना! जो रेल की पटरियों पर लेटकर सूइसाईड कर लेते हैं, वे झटकावादी हैं। धीरे–धीरे उपवास कर–करके क्रमशः अपनी काया को सुखाने वाले हलालवादी हैं। ये हिम्मतवर नहीं है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य की चार आयामी परिभाषा की है। तो इस कैंसर विशेषज्ञ की इस खोज में भी चौथी बात जोड़नी ज़रूरी है। जो लोग जीवन से नफ़रत करते हैं, जीना नहीं चाहते और साहसी भी नहीं है कि एकदम से मर जायें; उन्होंने ये चार पलायन द्वार खोजे हैं। पहला, भौतिक तल पर कैंसर या अन्य लाइलाज बीमारियों से ग्रस्त होकर अस्पतालों में भरती होना। दूसरे मानसिक तल पर विक्षिप्तता, स्किटसोफ्रीनिया, डिप्रैशन, बाईपोलर डिसऑर्डर, आदि से पागलख़ाने पहुँचना। तीसरे इमोशनली अनफ़िट या सोशलि मिसफ़िट हो जाना और अपराधी बनकर कारागृह में पहुँच जाना। और चौथे वे हैं जो आश्रमों में, मठों में, गुफ़ाओं में त्यागी–तपस्वी बने बैठे हैं। उस कैंसर विशेषज्ञ के अन्वेषण में चौथे तथ्य की कमी है और ये बात जोड़ने जैसी है। चूंकि पश्चिम में तपस्वियों को सम्मान देने का ऐसा कोई रिवाज़ नहीं रहा, इसलिये वहाँ पर लोगों को कैंसर ज़्यादा होता है। पूरब में कैंसर की उतनी ज़रूरत नहीं है, यहाँ पर संन्यासी हो सकते हैं। भारत के साधु–संन्यासी अपने देश का बड़ा गुणगान करते हैं कि देखो पश्चिम में कितने तनावग्रस्त लोग और मनोरोगी हैं? कितने लोग पागल हो रहे हैं? भारत में ज़रूरत ही नहीं है। यहाँ पागलपन की सूझे, तो साधु होने की सुविधा है। तुम वही सब करोगे और ऊपर से इज़्ज़त भी मिलेगी।

कुछ धार्मिक आदमी अपने–आपको कोड़े मारते हैं। उनकी पीठ लहुलुहान हो जाती है और छाती से ख़ून बहने लगता है। ये सब देखकर भीड़ जमा हो जाती है। वाह! क्या तमाशा है! मगर कोई आपत्ति नहीं उठा सकता क्योंकि वह धार्मिक आदमी है। मुनिगण अपने बाल नोचते हैं। इसके लिए साल में एक बार भव्य आयोजन होता है–'केशलुंचन समारोह'। कितना प्यारा नाम है! केशलुंचन समारोह में भक्तगण जमा हैं और महाराज अपने बाल नोच रहे हैं। चमड़ी उधड़ गई, ख़ून बह रहा है, घाव हो गये हैं

और लोग तालियाँ बजा रहे हैं। वाह! निश्चत ही पश्चिम में कोई ऐसा करेगा, तो उसे पागलख़ाने में डाल देंगे। हमारे यहाँ पागल कम होते हैं। उसका कारण यही है कि अनेक लोग दूसरे आदरणीय पलायनद्वार से निकल भागते हैं। जीवन से अपना बचाव कर लेते हैं। वे जींना नहीं चाहते। अगर जीवन के प्रति प्रेम ख़त्म हो जाये, तो अस्वस्थ होने के चार आयाम संभव है। अब ज़रा अपने मन में स्वास्थ्य की धारणा को स्पष्ट करना। मनन करना कि कौन सचमुच में स्वस्थ है? जो व्यक्ति इन चारों तलों पर सहज, स्वाभाविक और प्राकृतिक ढंग से जीं सकता है, जो प्रेमपूर्वक जीवन की ज़िम्मेदारियाँ और उत्तरदायित्व उठा सकता है और जिसके ह्रदय में ज़िंदगी का सम्मान है; ऐसे व्यक्ति को ही स्वस्थ व्यक्ति कहना चाहिए। अन्यथा हम किसी न किसी प्रकार से रुग्ण हैं। कुछ न कुछ प्रतिशत रोग हम सब पर छाया हुआ है।

तो मित्रो! मैं शारीरिक रोगों के बारे में बहुत चर्चा नहीं करूँगा। दुनियाभर के डॉक्टर उनकी चिंता कर ही रहे हैं। शेष तीन बातें ज़रूर चिंतनीय हैं। हमें इस मामले में स्वयं ही कुछ करना होगा क्योंकि डॉक्टर इसके प्रति लापरवाह हैं। उन्हें इससे कोई मतलब नहीं और न हीं उन्हें इसके लिए फ़ुर्सत है। शरीर के तल की बीमारियों से तो संसार में भांति–भांति की पैथी वाले चिकित्सक निपट ही रहे हैं। लेकिन जो भीतर की आंतरिक प्रक्रियाएं हैं, उस मामले में मैडिकल साईंस लगभग कुछ नहीं कर पा रहा। यूं तो कहने को दुनिया में कई मानसिक रोग विशेषज्ञ जैसे साईकायट्रिस्ट, साइकॉलजिस्ट इत्यादि मौजूद हैं। परंतु परिणाम कुछ ख़ास नहीं दिखाई देता। किसी बीमारी का कुछ विशेष इलाज हो नहीं पाता। बस ज़्यादा से ज़्यादा इतना है कि मरीज़ को नींद की गोली देकर सुला दिया, लेकिन इससे कुछ होने वाला नहीं है। दूसरे दिन सुबह जब वह उठता है, फिर वही की वही परेशानी होती है। इसी प्रकार अपराधियों के प्रति भी कुछ खास नहीं किया जा रहा है। कितनी ही सज़ा दो, कितना ही कठोर दंड दो; कुछ भी सद्परिणाम नहीं होता। वे जेल से निकलने के चार दिन बाद वहीं सब कुछ करते हैं, जो पहले कर रहे थे। उन्हें जेल में बंद करने से कोई इलाज तो नहीं हुआ न! उनके अंदर इमोशनल फीलिंग, हार्दिक संवेदनशीलता तो पैदा नहीं हुई।

जहाँ तक स्पिरिचुअल सिकनैस का सवाल है, सर्वप्रथम तो समझना होगा कि यह तथ्य है। दिस इज़ द फ़ैक्ट। और प्रायः जिन्हें हम स्पिरिचुअल लोग समझ रहे हैं, यहीं वे लोग हैं; जो स्पिरिचुअली सिक हैं। ये आत्मिक रूप से बुरी तरह रुग्ण हैं। बीमारी पकड़ में आये तो इलाज भी हो जाये। मुश्किल तब आती है कि जब बीमारी ही समझ में न आये। और बीमार व्यक्ति सम्मान का पात्र बन जाये, तो फिर तो कहना ही क्या! फिर तो हम नाज़ करते हैं कि वाह! हमारा सौभाग्य कि महात्मा जी गाँव में पधारे हैं। सभी चाहते हैं कि चरणस्पर्श कर लो, प्रभु जी का आशीर्वाद ले लो कि एक दिन हम

भी ऐसे महात्मा हो जाएं। नहीं, इन महात्माओं को ज़रा ग़ौर से टटोलना। पैर छूकर भाग मत आना। ज़रा दस–पंद्रह दिन किसी महात्मा के संग रहो। तब तुम्हें पता चलेगा कि मैं जो कह रहा हूँ, वह मात्र व्यंग्यात्मक कटाक्ष नहीं है। दूर–दूर से तुम्हें सच्चाई का पता न चलेगा कि ये आदमी कितना पाखंडी है! कितना झूठा और फ़रेबी है! कितना जालसाज़ और कितना कठोर है? कितना क्रूर है? ये आपको मालूम ही नहीं चलेगा। एक माह संग–साथ गुजारो। तब आपको अहसास होगा कि मैं ग़लत नहीं कह रहा था। अभी तो अधिकतर लोगों को मेरी बात ग़लत लग रही होगी। विश्वास न हो रहा होगा!

महात्मा गांधी को हम 'राष्ट्रपिता' कहते हैं। किसी साधु चरित्र व्यक्ति को इससे बड़ा सम्मान और क्या दिया जा सकता है? दूर–दूर से राष्ट्रपिता कहना आसान है। उनकी संतान से पूछो। राष्ट्रपिता की तो बात ही छोड़ो, उनका बेटा उन्हें पिता कहने को भी तैयार नहीं था। दुनिया उनको 'बापू' पुकारती है। लेकिन महात्मा गांधी ने अपने बेटे को इतना सताया कि वह उन्हें बाप कहने के लिये भी तैयार नहीं था। इतना नाराज़ रहा। उनकी जीवन–कथा पढ़ो, तब समझ में आयेगा। याद रखना! अगर तुम महात्मा गांधी के आश्रम में पंद्रह दिन रह लिये होते, तो तुम भी उनके बेटे से राज़ी होते। ऐसे–ऐसे नियम, ऐसे–ऐसे कठोर क़ानून, ऐसी कठिन बातें कि जीना हराम हो जाये। जैसे भोजन से पहले नीम की चटनी खाओ। आश्रम का नियम था, अस्वाद व्रत! नीम से पूरी जीभ कड़वी हो जायेगी, घंटा दो घंटा तक तो किसी चीज़ का पता ही नहीं चलेगा कि आप क्या खा रहे हो? मीठा है, कि नमकीन है, कि खट्टा है? और रोज़–रोज़ नीम की चटनी खाओगे, तो धीरे–धीरे तुम्हारी जीभ की संवेदन शक्ति ही बर्बाद हो जायेगी। फिर तो कुछ भी पता न चलेगा। गोबर खाओ कि आईसक्रीम सब बराबर! अगर उनके बेटे ने उनके नियम मानने से इन्कार किया, तो बताओ क्या ग़लत किया? वह कह रहा है कि मैं नीम की चटनी नहीं खाऊँगा। मैं भोजन का स्वाद लेना चाहता हूँ। तो इसमें क्या गुनाह हो गया!

गांधीजी के आश्रम में चाय पीना बड़े से बड़े जुर्मों में से एक था। चाय पीना मतलब घिनौना अपराध! उस ज़माने में बिजली का हीटर या गैस वग़ैरह तो थी नहीं। तो एक आदमी ने चोरी छिपे तेल से जलने वाला स्टोव अपने कमरे में रखा हुआ था। वह चोरी से चाय बनाकर पीता था। पूरा कमरा बंद करके कि कहीं किसी को पता न लग जाये। लेकिन आश्रम के जासूसों को चाय की ख़ुशबू दूर से आ जाती थी। वे कुत्ते की तरह सूंघते फिरते। मुश्किल से चार दिन ही चाय बना पाया था, और चौथे दिन बेचारा रंगे हाथों पकड़ा गया। चाय पीते हुए जब उसे पकड़ लिया गया, तो बेचारे पर क्या बीती होगी! ऐसी शर्मनाक स्थिति हो गई, जैसे आपकी पत्नी ने आपको पड़ोसन से प्रेम करते पकड़ लिया हो। महात्मा गांधी ने क्या किया, पता है! उसको कुछ नहीं

कहा। महात्मा गांधी ने कहा कि अगर मेरे आश्रम में ऐसा घृणित कार्य हो रहा है, पाप हो रहा है, तो ज़रूर मुझमें ही कुछ अशुद्धि है। अतः मैं उपवास के द्वारा अपना शुद्धिकरण करूँगा। आज से उपवास शुरू! ये सज़ा देने का एक नायाब तरीक़ा है– 'अहिंसात्मक हिंसा'। सीधा–सीधा किसी को डांट दो, निकाल दो, आश्रम से निष्कासित कर दो, तो समझ में आता है कि मामला ख़त्म हो गया। नहीं, वे उस पापी को कुछ नहीं कह रहे। पूरा आश्रम उस पर थू–थू कर रहा है कि देखो! तुम्हारी वजह से बेचारे दुबले–पतले वृद्ध महात्मा जी भूखे रह रहे हैं। वैसे ही उनकी उपवास करने लायक हालत नहीं थी।

मोटे–तगड़े लोग उपवास करें तो एकत्रित फ़ैट से काम चल जाता है। पहले से काफ़ी चर्बी जमा है। महीना पंद्रह दिन नहीं खाया, तो स्वास्थ्य के लिए अच्छा ही रहेगा। दुबले व्यक्ति की चमड़ी में फ़ैट नाम की परत ही नहीं होती। त्वचा के बाद सीधे अस्थियां आ जाती हैं। डॉक्टर बारम्बार आकर गांधी जी को चैक कर रहे हैं कि स्वास्थ्य में कितनी गंभीर गिरावट हो गई। आज वज़न कितना कम हो गया? बच पाएंगे या नहीं बचेंगे? लेकिन उनका प्रण था कि जब तक पूर्ण शुद्धिकरण नहीं हो जाता, तब तक उपवास चलेगा। पूरे देश में ख़बर फैल गई। अख़बार में समाचार छप गए। उस आदमी की फ़ोटो छप गई कि ये है चाय पीने वाला घोर पापी! वह बेचारा क्षमा मांग–मांग के थक गया कि मुझे माफ़ कर दो, ग़लती हो गई। अब कभी नहीं होगी। मगर महात्मा जी कह रहे हैं कि तुम्हारी ग़लती नहीं है। वास्तव में ग़लती मेरी है। मेरे आश्रम में तुम्हारे अंदर चाय पीने की इच्छा हुई। इसका मतलब मुझमें दोष है। हम तुमसे तो कुछ कह ही नहीं रहे हैं। हम तो बस भूखे रहकर आत्मशुद्धि कर रहे हैं। सोचो! उस आदमी पर क्या बीती होगी? इससे अच्छा होता, उसे फांसी पर लटका देते। कम से कम मर तो जाता। तुम किसी महात्मा के आश्रम में जाकर रहो, तब तुम्हें पता चलेगा कि मैं जो कह रहा हूँ, वह सही है या ग़लत? किसे सुधारने की ज़रूरत है– किसी के चाय पीने पर उपवास करने वाले को अथवा चाय पीने वाले को? सावधान! पूर्वाग्रह छोड़कर, निष्पक्ष चिंतन–मनन करो।

इन चार तलों पर स्वस्थ होना ही संपूर्ण स्वास्थ्य होगा। शरीर के तल की चिंता तो विभिन्न पैथी वाले चिकित्सक कर रहे हैं। बाक़ी तीन तलों की फ़िक्र हमें ही समझदारीपूर्वक करनी होगी। हमें ही उपाय खोजने होंगे। कोई और हमें मदद पहुँचानेवाला नहीं है। ये प्रत्येक व्यक्ति की बहुत ही निजी समस्या है। और किसी पथोलजी टैस्ट में ये पकड़ में भी नहीं आती। किसी एक्स–रे में या एम. आर. आई. में भी नहीं आती। बड़ी सूक्ष्म और बारीक बातें हैं, अगर हम अधिक से अधिक होशपूर्ण बनेंगे, तो ही ये तथ्य हमें दिखाई पड़ने शुरू होंगे और अधिक से अधिक ध्यानपूर्ण

बनकर हम इनका सम्यक निदान व उपचार भी कर सकेंगे। इन रोगों से छुटकारा पा सकेंगे।

'मैडिटेशन' यानी 'ध्यान' का अर्थ है– ज़्यादा से ज़्यादा सजग होना। टु बिकम मोर एंड मोर अवेयर, मोर अलर्ट। हमें एक–एक चीज़ का पता चले कि मेरे मन में क्या हो रहा है? क्यों हो रहा है? मेरे हृदय में कैसी भावनाएं आ रही हैं? क्यों आ रही हैं? क्या ये आवश्यक हैं? जो ज़रूरी नहीं है, उसके लिये फिर क्या किया जाए? और मेरी चेतना के तल पर; आत्मा के तल पर क्या हो रहा है? अभी तो हमें उस तल का पता तक नहीं है कि उसका अस्तित्व भी है! विचारों का और भावनाओं का तो फिर भी थोड़ा ज्ञान है। हमें अंदाज़ा है कि हमारे भीतर कुछ अच्छे–बुरे विचार व भावनाएं हैं। हमें दोनों प्रकार की भावनाओं का थोड़ा बहुत अनुभव होता ही है। कम से कम कुछ–कुछ अनुमान तो लग ही जाता है। लेकिन चेतना के बारे में तो हमें ख़बर ही नहीं कि ऐसी भी कोई चीज़ है। जब तक हम ध्यान की गहन साधना न करेंगे, तब तक हमारे भीतर उज्ज्वल चेतना न होगी। 'प्रखर चेतना' अर्थात् 'फ़ुली अलर्ट कांशसनैस' की रोशनी में ही हमें पता चल पायेगा कि हमारे अंतस में क्या है? हृदय की भावनाओं में क्या चल रहा है? और तब कुछ उपाय बन सकेगा कि क्या किया जाये? अभी तो हमें समस्या भी नहीं पता, समाधान तो बहुत दूर की बात है। अभी तो हम समस्या को समस्या भी नहीं जान रहे। हम तनाव में जीते हैं, लेकिन ऐसे जीते हैं जैसे नॉर्मल हों। टैंशन तो सभी को है और हमने यह स्वीकार कर लिया है कि ये टैंशन नॉर्मल है। कोई आदमी उदास है, तो कहते हैं– थोड़ा डिप्रैशन है, कोई ख़ास बात नहीं। ऐसा–ऐसा हो गया था। इसकी वजह से डिप्रैशन है। उसने स्वीकार कर लिया है कि डिप्रैशन होना भी जैसे नॉर्मल है। हम बड़ी ख़तरनाक स्थिति में है। हमारे भीतर दुर्भावनाएं उठ रही हैं। और हमें यह भी ख्याल नहीं है कि कुछ ग़लत हो रहा है। ठीक करना तो बाद की बात है। पहले यह तो पता चले कि कुछ ग़लत हो रहा है।

हम अपने–आपको तर्कसंगत बताने के, जस्टीफाई करते रहने के आदी हो गए हैं। किसी से पूछो कि इतना गुस्सा क्यों हो रहे हो? वह जवाब देगा–अरे, तो क्या करें? फ़लां आदमी ने ऐसा कह दिया। आप बताइये क्या मैं ऐसा न करूं? वह पचास तर्क देगा कि मैं ऐसा क्यों कर रहा हूँ। वह अपने आपको सही साबित कर रहा है। होना तो ये चाहिए था कि उसे पता चलता कि मेरे भीतर क्रोध नामक एक बीमारी मौजूद है। ये बाहर से प्रवेश किए हुए किसी बैक्टीरिया–वायरस से ज़्यादा ख़तरनाक बीमारी है। कीटाणु बेचारा तो केवल शरीर में ही पहुँच पाता है। लेकिन ये क्रोध का वायरस तो हृदय में, अवचेतन मन में घुस गया है। और हम बीमारी को बीमारी मानने तैयार नहीं हैं। वह जस्टीफाई कर रहा है कि मैंने ठीक किया। उस आदमी को सबक़ सिखाना

ज़रूरी था, भला और क्या करता!

मज़ेदार बात है। किसी क्रोधी से पूछो कि आपने जिसे डांटा, उसने सबक़ सीखा या नहीं? दुनिया में सभी सिखा रहे हैं, लेकिन कोई नहीं सीख रहा। वे आपको सबक़ सिखाने का इंतज़ाम कर रहे हैं कि अगला मौक़ा मिला तो ठीक से सिखाएंगे। यहाँ कोई किसी से कुछ नहीं सीख रहा। दूर की तो बातें छोड़ो। आप अपने घर द्वार में जिन लोगों के साथ निरंतर कलह करते हो, उन्हें कुछ-कुछ सिखाने की कोशिश करते हो; आज तक उन परिचितों में से कोई कुछ सीखा क्या? अथवा आप किसी से कुछ सीखे? पचास बार क्रोधित हो चुके। पचास बार दूसरा व्यक्ति नाराज़ हो चुका। मगर मामला तो वहीं का वहीं है, जहाँ पहले दिन था। बात एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ती और फिर भी हम जस्टीफाई करते हैं कि नाराज़ होना बहुत अनिवार्य था। वरना परिवार में काम कैसे चलेगा? आश्चर्य यही है कि इतने नाराज़ होने के बावजूद कैसे काम चल रहा है? और आप कह रहे हो बिना नाराज़ हुए संसार कैसे चलेगा? ग़ौर से देखो! कोई समझा है आज तक? लेकिन हम स्वयं को जस्टीफाई किए जा रहे हैं कि हमारा इस प्रकार आग बबूला हो जाना रोग नहीं है। अरे! मैं तो बिल्कुल ठीक आदमी हूँ। ऐसा तो करना ही पड़ता है। तो क्या बुद्ध, महावीर, जीज़स वग़ैरह ग़लत क़िस्म के लोग थे? अगर हमारा गुस्सैल होना ठीक है, तो फिर इलाज कैसे होगा?

अगर हमें बीमारी की पहचान ही नहीं हो रही, तो इसका मतलब है कि हम गहन मूर्छा में हैं, बड़े अंधेरे में हैं। कोई गहरी बेहोशी हम पर छाई हुई है। वह शराबी जो डगमगा के चल रहा है, लड़खड़ाता है, गिर जाता है, चोट लग जाती है, उससे पूछो कि क्या तुम डगमगा के चल रहे हो? वह कहेगा कि नहीं, मैं तो बहुत संभल के चलने की कोशिश कर रहा हूँ। और सचमुच में बेचारा प्रयत्न कर रहा है। जितना संभल के शराबी चलता है, उतना संभल के कोई नहीं चलता। एक-एक क़दम संभल-संभल के उठाता है। मगर परिणाम कुछ नहीं आता। फिर गड्ढे में पैर पड़ता है, टक्कर लगती है, फिर बिजली के खंभे से टकराता है। उसे आश्चर्य होता है कि रात को ये लोग बीच सड़क में बिजली का खंभा क्यों लगा देते हैं? जब शाम को हम शराबखाने गये थे, तो खंभे साईड में थे। और जब रात को घर वापिस लौटे, तो बीच सड़क पर हैं। वह बिल्कुल मध्य में चलने का प्रयास करता है। वह बहुत संभल के चलता है। लेकिन फिर भी टकराता है। हम भली-भांति जानते हैं कि मामला उसके वश के बाहर है क्योंकि वह नशे में है।

क्या हम भी किसी प्रकार की आध्यात्मिक मूर्छा में तो नहीं हैं? अपने आपसे सच पूछो कि क्या आप क्रोधित होना चाहते हो? नहीं। किंतु फिर भी क्रोध होता है। क्या हम उस शराबी जैसी हालत में नहीं हैं, जो कहता है कि मैं तो संभल के चलता हूँ। मैं

टकराना नहीं चाहता, लेकिन क्या करूं? टक्कर हो जाती है। तो क्या हमारी भी ऐसी हालत नहीं है? आप कितनी बार क़सम खा चुके कि आप व्यर्थ बहस नहीं करेंगे, क्रोध नहीं करेंगे; लेकिन आपके क़सम खाने से कुछ नहीं होता। होता वही है, जो पहले भी हो चुका है। अक्सर ऐसा देखने में आता है कि घर में पति-पत्नी का झगड़ा हुआ। दोनों ने मन ही मन पश्चात्ताप भी कर लिया कि आगे से ऐसा नहीं करना है। आज पत्नी घर बैठे-बैठे इंतज़ार कर रही है कि जब पतिदेव आयेंगे, तो मैं उनसे बहुत अच्छे से बातें करूंगी। आज उन मुद्दों पर बिल्कुल चर्चा नहीं करूंगी, जिन पर झगड़ा हुआ था। मुद्दा ही ऐसा है, जिसमें झगड़ा होना सुनिश्चित है। मैं उनसे सहमत नहीं हो सकती और वह मुझसे सहमत नहीं हो सकते। तो आज उन विषयों की बातें नहीं करेंगे। पत्नी ने पक्का निश्चय कर रखा है कि पतिदेव जब घर आयेंगे, तो प्रेम से उनको चाय नाश्ता कराऊंगी। ख़ूब मीठी-मीठी बातें करूंगी!

वहाँ पति भी ऑफिस में सोच रहा है कि हे भगवान! फिर घर जाने का समय हो गया, पाँच बज गये। ईश्वर करे, जैसा कल हुआ था, वैसा आज न हो। बेचारा पूरी तैयारी करके आ रहा है कि अब कल वाली बात नहीं करनी है। शांत रहना है। मुस्कुराते हुए घर में प्रवेश करना है। और भीतर जाते ही 'इलू-इलू' का गीत गाना है। सब तय करके आ रहा है। उसने आज के लिये बड़े अच्छे निर्णय लिये हैं। उसकी पत्नी ने भी सुंदर योजना बनाई है। दोनों के इरादे बड़े अच्छे हैं। लेकिन न जाने क्या होता है... जैसे ही पति ने घर में पाँव रखा, दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने आए और दो मिनट भी नहीं लगते कि बस...! चौबीस घंटे में जो तय किया था, वह सब भूलभाल गये और फिर वही पुरानी बात निकल आई। कल जहाँ कहानी ख़त्म हुई थी, वहीं से आगे का सिलसिला चल पड़ा। अगला एपिसोड आरंभ! दोनों की योजनाओं का क्या हुआ? क्या इनकी हालत उस शराबी से भिन्न कही जा सकती है, जो कहता है कि मैं तो बहुत संभल-संभल के चलता हूँ। मैं टकराना नहीं चाहता। तो फिर कौन टकराता है? बिजली का खंभा या खुद भैंस आकर तुमसे टकराती है?

यहाँ मुंबई वाले मित्रों को भैंस का उदाहरण समझ में नहीं आएगा। हरियाणा में हर शराबी से भैंस अवश्य टकराती है। रात के काले अंधेरे में काली भैंस दिखाई ही नहीं देती। पूरे हरियाणा में सर्वत्र भैंसें खड़ी हैं, घूम-फिर रही हैं। इस प्रांत में जितने इंसान हैं, उनसे अधिक भैंसें विचरण करती हैं। और हरियाणवी शराबी बहुत मुश्किल में पड़ता है कि भैंस हमेशा मुझसे ही क्यों टकराती है? उसे लगता है कि भैंस आकर मुझसे टकरा गई। भैंस बेचारी निर्दोष। उसे क्या पता कौन शराब पिये है? कौन नहीं पिये है? शराबी स्वयं जाकर भैंस से टकराता है और सारा दोष बेचारी भैंस को देता है।

याद रखना! जब पति–पत्नी की टकराहट हो रही है, बाप बेटे में गरमा–गरमी छिड़ी है या भाई–भाई की टक्कर हो रही है, तो हमें हमेशा लगता है कि दूसरा आकर हमसे टकराया है। सारी ग़लती उसकी है। हमें यह ख़्याल ही नहीं आता कि हम किसी प्रकार के नशे में हैं। हम बचना चाह रहे थे और फिर भी जाकर टकराये हैं। काश! यह बात समझ में आ जाये कि हम मूर्छित हैं, तो जागरण की यात्रा शुरू हो जाती है। ध्यान की ओर आगे बढ़ने का पहला कदम यही है कि हमें इस बात का एहसास हो जाये कि ध्यान के बिना हम प्रमाद व नशे में जी रहे हैं। जिस पल आपको इस बात का एहसास होगा कि मैं किसी प्रकार की बेहोशी में हूँ, तत्क्षण होश आना शुरू हो जाएगा। बेहोशी की प्रतीति, होश का पहला कदम है। जब तक आप ख़ुद को जस्टीफाई कर रहे हैं कि मैं तो एकदम ठीक हूँ, बिल्कुल सही हूँ; तब तक आप जाग न सकेंगे। क्योंकि आप मानने को तैयार ही नहीं कि आप किसी प्रकार की नींद में हैं। ज़रा एक सूची बनाना और देखना कि क्या आपकी ज़िंदगी में वही हो रहा है, जो आप चाह रहे हैं? अगर नहीं हो रहा है, तो भलीभांति जानें कि आप किसी प्रकार की नींद में हैं। कोई मूर्छा या कोई विवशता आपको घेरे हुए है। आप चाहते हैं कि जीवन में प्रेम हो और होता है क्रोध। आप चाहते हैं कि मित्रता हो और हो जाती है शत्रुता। ऐसा क्यों और कैसे होता है? दोस्ती के लिये बढ़ाया गया हाथ अचानक दुश्मनी में क्यों बदल जाता है? आप तो गीत गाने चले थे, फिर गालियां कहाँ से निकल पड़ीं?

क्या आप होश में हो? जब आप स्वयं से ये सवाल पूछोगे, तो चौंकोगे। लेकिन वह चौंकना ही जगाने वाला होगा। जिस क्षण व्यक्ति को अहसास होना शुरू होता है कि मैं सोया–सोया जी रहा हूँ, इसलिये मेरे जीवन में वह सब हो रहा है, जो नहीं होना चाहिए। जैसे ही यह अहसास होता है, वैसे ही हमारे भीतर सूक्ष्म सजगता आनी शुरू हो जाती है। हम ज़्यादा मैडिटेटिव, ज़्यादा अवेयर, ज़्यादा कांशस होने लगते हैं। धीरे–धीरे हमारी चेतना प्रगाढ़ होने लगती है। और जितनी हमारी चेतना उज्ज्वल हो जाती है, हम अपने भीतर मैंटली, इमोशनली और स्पिरिचुअली उतने ज़्यादा स्वस्थ, उतने ज़्यादा हैल्थी होने लगते हैं।

तो प्यारे मित्रो! हमें स्वयं ही कुछ करना होगा। कोई डॉक्टर इसमें मदद न कर पायेंगे क्योंकि वे ख़ुद ही इन समस्याओं से पीड़ित हैं। चिकित्सकों और मरीज़ों में कुछ ज़्यादा भेद नहीं समझना। डॉक्टरों को भी वैसे ही क्रोध आता है, जैसे आपको आता है। उसे भी वासना वैसे ही पागल कर देती है, जैसे आपको करती है। उसका भी ईर्ष्या में ख़ून खौलता है, जैसे आपका खौलता है। कुछ फ़र्क़ नहीं है। जो डॉक्टर अस्पताल में आपको उपदेश दे रहा था कि सिगरेट पीने से हानि होती है और शराब पीने से नुक़सान होते हैं, वह स्वयं शराब और सिगरेट पीते हुए रात को क्लब में मिल जायेगा।

उसका ज्ञान अपने काम भी नहीं आता, तो दूसरों के क्या ख़ाक काम में आयेगा? मैडिकल कॉलेज में मेरे जो क्लासमेट्स थे, उनमें से दो की मृत्यु शराब पीकर लीवर ख़राब होने के कारण हुई है। अब सोचो! डॉक्टर्स हैं, जो दूसरों को समझाते हैं। इन्हें तो भलीभांति मालूम है कि शराब पीने से क्या होता है? मगर ये भी लीवर फेल होने से मरते हैं। तो फिर फ़र्क़ क्या रहा? ज्ञानी और अज्ञानी में कोई अंतर तो नज़र नहीं आता। इनका ज्ञान इनके किसी काम का नहीं। जब शराब की बोतल सामने आती है, तो सारी मैडिकल साईंस भूल जाते हैं। सोचते हैं कि चलो आज तो पी लें, कल से नहीं पीयेंगे। क्या कल कभी आता है? जब आता है, सदा आज आता है। क्या इन्हें होशपूर्ण कहा जा सकता है? अगर अपने भीतर होश की मात्रा बढ़ानी है, तो आपको स्वयं ही ध्यान साधना के मार्ग पर अपने जीवन में नये प्रयोग करने होंगे।

सद्‌गुरु ओशो ने ध्यान की बहुत महत्त्वपूर्ण विधियाँ ईजाद की हैं। ओशो से पहले अन्य ऋषि भांति-भांति की पद्धतियाँ खोज गये हैं। वह सारा ख़ज़ाना हमें वसीयत में मिला हुआ है। लेकिन उस औषधि का इस्तेमाल वही करेगा, जिसे अपनी व्याधि समझ में आ गई है। इसलिये मेरी उत्सुकता यह बताने में कम है कि इलाज क्या है? मेरी उत्सुकता यह बताने में ज़्यादा है कि बीमारी क्या है? एक बार अगर बात पकड़ में आ गई कि मैं इमोशनली, मैंटली और स्पिरिचुअली कुछ गड़बड़ हूँ, जैसा होना चाहिए था, वैसा नहीं हूँ; तो फिर आप चैन से न रह सकेंगे। वह बेचैनी ही आपको प्रेरित करेगी कि कुछ करो। फिर उपाय खोजना होगा। दूसरे लोग भले ही मुझे नॉर्मल समझते हैं, मगर मैं जानता हूँ कि मैं नॉर्मल नहीं हूँ। मेरे अंदर कुछ एबनॉर्मैलिटी है। और जब तक वह ख़त्म नहीं हो जाती, तब तक मेरे भीतर शांति, संतोष और आनंद व जीवन के प्रति प्रेम, आदर और रस नहीं हो सकता। ध्यान के प्रयोग से ऐसा होना संभव है। ध्यानपूर्ण होकर ही हम अधिक जागृत होकर अपना जीवन जी सकते हैं। अपनी भीतर की सारी मलिनताएं मिटा सकते हैं। यह बड़ा चैलंज है। और तभी डब्ल्यू. एच. ओ. द्वारा दी गई परिभाषा की कसौटी पर हम परिपूर्ण रूप से स्वस्थ कहलाने के अधिकारी बनते हैं। अंत में मैं आपको यही चुनौती देता हूँ।

ज़रूरी नहीं कि आप मेरी बातों से सहमत हों। आप स्वयं टटोलना, विचारना, अपने भीतर विमर्श व चिंतन करना। अगर मेरी कोई बात ठीक लगे, तो मैं आपको निमंत्रण देता हूँ। ध्यान सुगमता से सीखा जा सकता है। और विशेषकर सद्‌गुरु ओशो द्वारा दी गई विधियाँ आधुनिक मनुष्य के लिये बड़ी कारगर हैं। पुरानी विधियाँ आउट ऑफ़ डेट हो गई हैं। वे जिस प्रकार के मनुष्य के लिये बनाई गई थीं, वैसा मनुष्य ही अब नहीं रहा। सारी परिस्थितियां और मनोस्थितियां बदल गई हैं। गौतम बुद्ध के ज़माने में सीधे-सरल लोग थे। न इतनी चिंता थी, न ऐसे डर थे, न ऐसा आतंक था, न ऐसे युद्ध

थे और न ऐसी कुटिल राजनीति थी। वे तो खेती–बाड़ी व मज़दूरी करने वाले सीधे–सादे ग्रामीण लोग थे। कोई पढ़ाई–लिखाई व शिक्षा–दीक्षा नहीं थी। सिर पर विचारों का बोझ नहीं था। वे तो प्रकृति के संग सहज जीवन जीने वाले लोग थे। उन्हें साँस की एक छोटी–सी विधि बता दी– 'विपस्सना'। आती–जाती श्वास को होशपूर्वक देखो और ध्यान सध जायेगा। और वह तरकीब काम कर जाती थी। उस ज़माने में उतना पर्याप्त था। श्वास के प्रति होश साधते–साधते भीतर परम होश सध गया। सैकड़ों लोगों को बुद्धत्व फलित हो गया।

आधुनिक सिचुवेशन बहुत कांप्लीकेटिड है। ढाई हज़ार साल पहले जो लोग थे, हम उनसे अत्यंत भिन्न क़िस्म के लोग हैं– बड़े महत्त्वाकांक्षी, बड़े एम्बिशस। हमारी वासना ऐसी है कि पूरी होने का नाम ही नहीं लेती। हमने न जाने क्या–क्या सपने संजो रखे हैं? अभी पिछले हफ़्ते ही एक सज्जन ने आकर अपना परिचय दिया। उन्होंने अपना नाम बताया और कहने लगे कि वे डिप्रैशन के बीमार हैं। वे कई सालों से दवाइयाँ खा रहे थे, लेकिन ठीक नहीं हो रहे थे। वे इतने डिप्रैशन में थे कि उनमें सूइसाइडल टैन्डंसी पैदा हो गई थी। मैंने उनसे पूछा कि आपकी मुख्य समस्या की शुरूआत कैसे हुई? इतनी घनघोर निराशा में आप कैसे पहुँच गये? वे कहने लगे कि मैं धीरूभाई अंबानी बनने का सपना देखता था। मैंने कहा– 'ठीक है, समझ गया।' तुम एवरैस्ट पर चढ़ोगे, तो फिर गहरी खाई में गिरकर फ्रैक्चर तो करोगे ही। और याद रखना! दुनिया में ऐसा सपना देखने वाले कोई एक–दो आदमी नहीं हैं। ऐसे सपने देखने वाले करोड़ों लोग हैं। करोड़ों लोगों को दुनिया में राष्ट्रपति बनना है, प्रधानमंत्री बनना है, दुनिया का सबसे बड़ा धनपति बनना है। बड़ा पागलपन सवार है। आज से ढाई हज़ार साल पहले गौतम बुद्ध के ज़माने में इतनी दीवानगी नहीं होती थी। लौहार का बेटा लौहार होता था, बढ़ई का बेटा बढ़ई होता था, किसान का बेटा किसान होता था और हरिजन का बेटा हरिजन होता था। किसी ने ऐसे सपने नहीं देखे थे कि ये हो जाऊं कि वो हो जाऊं! आज हर किसी को सूझता है कि अरे और कुछ नहीं, तो एम. एल.ए. या एम.पी. ही बन जाऊं, क्या हाथ पर हाथ धरे बैठा हूँ? पहले ऐसा संभव नहीं था। उस ज़माने में राजा का बेटा ही राजा बनता था। अन्य लोगों को ऐसे फ़ितूर सवार नहीं होते थे। साधारण व्यक्ति को ऐसी पागलपन की बातें नहीं सूझती थीं। अब डैमोक्रसी है। आज जो कुर्सी पर बैठे हैं, उन्हें उतार फेंको। वे भी किसी को उतारकर ही चढ़े हैं, तो तुम भी चढ़ सकते हो। हर किसी को पागलपन सवार होता है। हमारी मैंटल और इमोशनल सिचुवेशन बहुत कांप्लीकेटिड है। विपस्सना विधि जिन लोगों के लिये काम करती थी, हम वे लोग नहीं हैं। हम दूसरे प्रकार के लोग हैं। हमारी बीमारियां बदल गई हैं। सर्दी–जुकाम वाला इलाज कैंसर में उपयोगी नहीं हो सकता।

सद्गुरु ओशो ने जो ध्यान–विधियाँ दी हैं, आज के समसामयिक आदमी के लिये वह विधियाँ ही कारगर होंगी। मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि कभी एक हफ़्ते का समय निकालकर आइये। यहाँ लोनावाला, महाराष्ट्र में क़रीब हर दो महीने में एक बार हमारा शिविर होता है। सुन्दर पहाड़ियों के बीच स्थित मोक्षधाम है। आप वहाँ छः दिन के लिये आ सकते हैं। मुरथल, हरियाणा में हमारा मुख्य केंद्र है। वहाँ सालभर नियमित ध्यान शिविर चलते हैं। हमारी मासिक हिन्दी पत्रिका ओशोटुडे और आस्था–चैनल पर हमारे कार्यक्रम के माध्यम से आपको आगामी शिविर की तारीख पता लग जायेगी।

अगर आपको लगता है कि आप मूर्छित ढंग से जी रहे हैं और जागृत होना है, ध्यानपूर्वक जीना सीखना है, तो मैं आपका स्वागत करता हूँ और साधना हेतु आपको निमंत्रण देता हूँ। यदि आपके भीतर यह प्रश्नरूपी कांटा चुभ जाये कि क्या मैं बेहोश शैली से जी रहा हूँ, तो मैं समझूंगा कि मेरा यहाँ आने का लक्ष्य पूरा हो गया। जब तक आप ध्यानपूर्वक जीना न सीख जाओ, जब तक आप परिपूर्ण स्वस्थ, संतुष्ट और शांत न हो जाओ; तब तक वह कांटा आपको चैन से सोने न देगा। मैडिटेशन ही आंतरिक मैडिसन है। बहुत–बहुत धन्यवाद! जय ओशो!

तनाव मुक्त कैसे हों?

प्यारे मित्रो, नमस्कार! जय ओशो!

मैं अनेक सालों से नगर–नगर घूमता–फिरता हूँ। हज़ारों लोगों से मुलाक़ात होती है। लेकिन जहाँ जाता हूँ, बार–बार एक ही शब्द सुनने मिलता है। वह शब्द है– 'तनाव'। आज मैं इसी विषय पर आप से चर्चा करूंगा कि कैसे हम तनावमुक्त हो जाएं? पहले तो यह समझ लें कि इसका कारण क्या है? और फिर मुक्ति का उपाय भी बड़ा आसान हो जायेगा।

जैसे हमें कोई शारीरिक बीमारी होती है, तो सबसे पहले हम यही जाँच पड़ताल करवाते हैं कि बीमारी का कारण क्या है? यदि कारण पकड़ में आ जाए, तो निवारण आसान हो जाता है। अगर बीमारी ठीक–ठीक डायग्नोज़ हो जाए, तो सही ट्रीटमैंट किया जा सकता है। लेकिन अगर हमारी डायग्नोसिस ही ठीक नहीं है, तो फिर ट्रीटमैंट कुछ काम नहीं करेगा। उल्टा साईडइफ़ैक्ट्स ही होंगे। ठीक ऐसे ही हमें डायग्नोज़ करना है कि हमारे मन के भीतर के तनावों के क्या कारण हैं? कुछ मुख्य बिंदुओं पर आपकी दृष्टि लाना चाहूँगा। फिर उपाय अपने आप समझ में आ जायेगा।

उदाहरण के लिये, तनाव का एक कारण है– भविष्य पर नज़र। किसी डिस्टैंट टारगेट पर दृष्टि रखना तनाव पैदा करता है। हमारे और हमारे लक्ष्य के बीच जितनी अधिक दूरी होगी, उतना ही अधिक हम तनावपूर्ण होंगे। तो निवारण का उपाय क्या हो सकता है? उपाय एकदम आसान है। उसका ठीक उल्टा कर दें। भविष्य पर नज़र रखने की बजाय अगर हम वर्तमान के क्षण में जीने की कला सीख जाएं, तो तनाव नहीं

होगा। हमारे सद्गुरु ओशो की प्रमुख देशनाओं में से एक है– 'लिव हियर एन्ड नाओ'। मोमैंट टु मोमैंट, आज, अभी और यहीं जीओ। ऐसा करने से तनाव ख़तम हो जाता है। मैं जहाँ हूँ और जो मैं होना चाहता हूँ, उसके बींच का गैप तनाव पैदा करता था। जब हम वर्तमान के क्षण में जीने लगते हैं, तो यह गैप ख़तम हो जाता है। क्या इसका अर्थ यह है कि हमारे जीवन में लक्ष्य ही नहीं होंगे? लक्ष्य भी होंगे और टारगेट्स भी होंगे। लेकिन हम एक दूसरे ढंग से उन्हें डील करना सीख जाऐंगे। उस दूर के टारगेट को हम छोटे–छोटे हिस्सों में डिवाइड कर लें।

इसे एक उदाहरण से समझें। अगर हमें किसी मकान की चौथी मंज़िल पर जाना है, तो हमें सीधे छलांग नहीं लगानी है। चौथी मंज़िल पर हम नीचे से ऊपर इतनी बड़ी छलांग लगा भी न सकेंगे। सीढ़ी से चढ़ कर जाना होगा। अगर हर मंज़िल में 20–20 सीढ़ियां हैं, तो चार मंज़िल में 80 सीढ़ियां होंगी। एक बार में हम एक ही सीढ़ी चढ़ते हैं। माना कि हमें 80 सीढ़ियां चढ़नी हैं, लेकिन एक सीढ़ी तो छः इंच की है ना! और हममें इतनी शक्ति और ताक़त तो है कि हम एक सीढ़ी चढ़ सकें। हमें एक–एक सीढ़ी चढ़कर मकान की चौथी मंज़िल पर पहुँचना है। जब हम एक सीढ़ी चढ़ गये, तब हम दूसरी सीढ़ी पर क़दम रखते हैं। फिर तीसरी, चौथी और धीरे–धीरे एक मंज़िल, दो मंज़िल, तीसरी मंज़िल और अंत में चौथी मंज़िल पर भी पहुँच जाते हैं।

इसी प्रकार अपने लक्ष्यों को छोटे–छोटे हिस्सों में बांट लें और एक बार में एक छोटे से हिस्से की फ़िक्र करें। ऐसा करने से हम वर्तमान में भी जी सकते हैं और दूर के लक्ष्य भी हासिल कर सकते हैं। अगर हम बहुत दूर के लक्ष्य पर निगाह रखेंगे, तो हम तनावग्रस्त हो जायेंगे। हमें हमेशा इस बात की चिंता रहेगी कि आगे क्या होगा? कैसे होगा? होगा भी कि नहीं होगा? सफल होंगे या असफल होंगे? और इसी डर और चिंता की वजह से अभी जो एक सीढ़ी चढ़नी थी; वह भी हम ठीक से नहीं चढ़ पायेंगे। हो सकता है कि हमारा पैर फिसल जाए और हम गिर जाएं। हम सीढ़ी की वजह से नहीं, बल्कि हमारे भय और चिंता की वजह से गिरे। हमारी नज़र तो ऊपर थी। हम देख ही नहीं पाए कि हम कहाँ पैर रख रहे हैं।

इसे एक दूसरे उदाहरण से समझें। मान लीजिए कि आप कार चला रहे हैं और आपको दस किलोमीटर दूर कहीं जाना है। तो आप नज़र कहाँ रखते हैं? आप दस किलोमीटर दूर नज़र नहीं रखते। ड्राईविंग करते समय आपकी नज़र आसपास के ट्रैफ़िक पर होती है। आप ध्यान रखते हो कि आपके ठीक सामने कौन आ रहा है? कौन जा रहा है? कौन सी गाड़ी आगे है? किस गाड़ी ने हॉर्न दिया? आप उस क्षणविशेष में वहाँ मौजूद होते हो, न कि दस किलोमीटर दूर। निश्चित रूप से आपकी दिशा अंततः आपको वहीं ले जायेगी। ड्राईविंग के समय अगर आप वर्तमान के क्षण में

हैं, तो ही आप एक कुशल ड्राईवर होंगे और उम्मीद है कि आप अपनी मंज़िल तक पहुंचेंगे। लेकिन अगर आप दस किलोमीटर दूर का हिसाब लगाने लगे, तो सामने के ट्रैफ़िक से आपकी नज़र हट जायेगी। ऐसे में दुर्घटना की भी संभावना है। और हो सकता है कि अपने घर पहुँचने की बजाय आप अस्पताल पहुँच जाएं। तो मैं ये नहीं कह रहा हूँ कि हमें दूर के लक्ष्य नहीं रखने हैं। दूर के लक्ष्य अवश्य रखें, लेकिन जो होशियारी आप ड्राईविंग करते समय या सीढ़ियां चढ़ते समय करते हैं; बस वही करें। मुख्य रूप से वर्तमान में जिएं और आप पायेंगे कि आप तनावमुक्त होने लगे। यह पहला सूत्र है।

तनावमुक्त होने का दूसरा सूत्र है कि केवल सोच विचार न करें, बल्कि थोड़ा भावनात्मक ढंग से जीना शुरू करें। दिमाग़ की ही नहीं, हृदय की भी सुनें। सारे तनावों की उपज हमारे दिमाग़ में होती है। वैचारिक–बुद्धि का काम है– विचार करना, चिंता करना और तनाव करना। लेकिन हमारे भीतर हृदय नाम की भी एक चीज़ है। हम केवल विचारात्मक नहीं, भावनात्मक भी हो सकते हैं। केवल थिंकिंग ही थिंकिंग नहीं, थोड़ा फ़ीलिंग में भी आएं। अचानक आप पायेंगे कि जैसे ही आपने फ़ीलिंग में आकर प्रेमपूर्वक और भावपूर्वक जीना शुरू किया; आपके तनाव की मात्रा एकदम घटने लगी। तनाव की मात्रा ज़ीरो पर भी पहुँच सकती है। लेकिन हमारे परिवार ने, समाज ने और विशेषकर हमारे एजुकेशन सिस्टम ने हमें केवल बुद्धि ही बुद्धि में जीना सिखाया है। सोच–विचार, तर्क–वितर्क, गुणा–भाग और हिसाब–किताब बस यही हमने सीखा है।

यूनिवर्सिटी से निकलते–निकलते हम पूरी तरह तनावग्रस्त होने में वैल–ट्रेंड हो जाते हैं। पच्चीस साल की स्कूल कॉलेज की ट्रेनिंग हमारे जीवन के बाक़ी के 50–60 साल बर्बाद कर देती है। कहीं कोई ऐसा स्कूल या कॉलेज नहीं है, जहाँ भावपूर्वक हृदय के तल पर जीना सिखाया जाता हो। निश्चित रूप से बुद्धि उपयोगी है। मैं मना नहीं कर रहा हूँ। जहाँ उसका काम है, वहाँ उसका उपयोग करना। लेकिन हमारी मुश्किल यह है कि हम हर जगह बुद्धि का ही इस्तेमाल करते हैं।

अगर आप ऑफिस में अपने कंप्यूटर पर काम कर रहे हैं, तो निश्चित रूप से आपका लॉजिकल माईंड काम करना चाहिए। जब आप फाईल में गुणा–भाग कर रहे हैं या हिसाब–किताब कर रहे हैं, तब भी निश्चित रूप से आप का कैलक्युलेटिव माईंड काम आयेगा। लेकिन चौबीसों घंटे इसी ढंग से जीने की ज़रूरत नहीं है। जब आप ऑफिस से बाहर निकलते हैं, तो कृपया बुद्धि से भी बाहर निकल आईये। ज़रा सोचिए! जिन फ़ाईलों को आप ऑफिस की अलमारी में बंद करके आये हैं, क्या वे फ़ाईलें आपने रियलि अलमारी में बंद की हैं। हमारी रियल फाईल तो ऑफिस में रह जाती है और मानसिक फाईल हमारे साथ घर आ जाती है। इस व्यर्थ के बोझ को हम

अपने संग क्यों ढो रहे हैं? कोई चीज़ कितनी ही उपयोगी हो, उसकी एक लिमिट है। जहाँ ज़रूरत है, वहाँ उसका उपयोग करना ठीक है। लेकिन बाद में उससे छुटकारा भी ज़रूरी है।

सद्‌गुरु ओशो के प्रवचन में एक जगह वे सुनाते हैं कि मैं किसी शहर में गया हुआ था। जिनके घर मैं रुका था, वे हाईकोर्ट के जज थे। उनकी पत्नी अपने पति की शिकायत करते हुए कहने लगी कि ये और किसी की तो सुनते नहीं हैं, तो आप ही इन्हें समझाइये। इन्हें एक छोटी–सी बात समझा दीजिए कि घर में न्यायाधीश की तरह, जज की तरह काम न किया करें। आप कोर्ट में जज बनो, बिल्कुल ठीक। वहाँ इन्हें इस काम की सैलरी मिलती है। लेकिन मेरे पति तो घर में भी ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे हम लोग अपराधी हैं। उस महिला ने कहा कि मुझे एक प्रेम करने वाले पति की ज़रूरत है, न कि एक न्यायाधीश की जो मेरी ग़लतियाँ और ख़ामियाँ निकालता रहे। मेरे बच्चों को भी एक प्रेमपूर्ण पापा चाहिए, न कि कोई जज। उस महिला ने कहा कि मेरे सास–ससुर भी साथ रहते हैं। आप उनसे पूछ लो। उन्हें भी इस घर में एक जज नहीं, बल्कि अपना बेटा चाहिए। ये चौबीसों घंटे एक जज की तरह व्यवहार करते हैं। बच्चों के साथ थोड़ा हंसो, बोलो, खेलो, गीत गाओ, गुनगुनाओ, बच्चे के साथ थोड़ा बच्चे जैसा हो जाओ। तुमको किसने कहा कि चौबीसों घंटे जज की नौकरी करनी है?

याद रखना! तुम्हारी पत्नी को एक प्यारा जीवन साथी चाहिए, जो उसके सुख–दुख की बातें सुन सके। तुम्हारी पत्नी को तुम्हारा न्याय नहीं चाहिए। अक्सर पति क्या करते हैं? तुरंत निर्णय लेने लगते हैं। फ़ैसला सुनाने लगते हैं। पत्नी कुछ बता रही है कि आज बच्चे ने ऐसा कर दिया और पड़ोस में ऐसा हो गया। वह न्यूज़ रीडर की तरह दिन भर की न्यूज़ सुना रही है और पति तुरंत सलाह देने लगते हैं कि तुम्हें ऐसा करना चाहिए। आप केवल सुनो। कुछ कहना नहीं है। न्यूज़ रीडर की बातें सुनकर कुछ कहते हो क्या? ऐसे ही जब पत्नी की बात पूरी हो जाए, तो कहो वाह! क्या मज़े की बात बताई तुमने? चलो, अब एक कप चाय हो जाए। इस तरह बात ख़तम करो। लेकिन आप तुरंत सलाहकार बन जाते हो और बिन मांगे सलाह देने लगते हो। थोड़े रिलैक्स होकर हृदयपूर्वक जीना शुरू करो। अपनी पत्नी की बात बुद्धि से मत सुनो। उसके हृदय से जुड़ो। पति–पत्नी का नाता हृदय का नाता है।

स्मरण रखो, अपने माता–पिता के सामने तुम बेटे हो। चाहे तुम कितना ही पढ़ लिख गये हो, कितने ही बड़े हो गये। हो सकता है तुम्हारे भी बाल सफ़ेद हो गये हों। पर याद रखना! तुम्हारे पिताजी की उम्र पहले भी तुमसे बीस साल ज़्यादा थी और आज भी है। और तुम्हारी माँ ने तुम्हें उंगली पकड़ कर चलना सिखाया है। उनके सामने भी तुम ज़्यादा होशियारी की बातें न बनाओ, तो ही अच्छा। वह तुम्हारी बातें सुनने के

लिये नहीं बैठी है। माता–पिता के सामने तुम्हें बेटे की तरह सलूक करना है। तुम उनसे छोटे हो। उन्हें बेटा चाहिए तुम चाहे जितना पढ़–लिख लो, चाहे जितना एक्सपर्ट हो जाओ। तुम्हारे माता–पिता को इस ज्ञान की कोई ज़रूरत नहीं है। अपना ज्ञान अपनी खोपड़ी में रखो।

तुम सात–आठ घंटे ऑफिस में काम करते हो। उतना ही समय बुद्धि का उपयोग करना। अगर आप सरकारी नौकरी में हैं, तब तो घंटा, दो–घंटा ही बहुत है। इससे ज़्यादा तो वहाँ कोई काम करता नहीं है। शायद मैं दो घंटे भी ज़्यादा ही कह रहा हूँ। सरकारी नौकरी तो वे लोग करते हैं, जिनको कुछ करना नहीं होता। दे वॉन्ट सैलरी, नॉट जॉब। तो चलो, चाहे जितने भी घंटे काम करते हो; लेकिन प्लीज़ कीप इट लिमिटेड टू योर ऑफिस। वहाँ की बातें घर में लाकर मत करो। घर, घर है; फैमिली, फैमिली है; और पड़ोस, पड़ोस है। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि एक क्लियर कट डिमार्केशन होना चाहिए। हमें पता होना चाहिए कि कहाँ हमें बुद्धि से जीना है? और कहाँ हमें हृदयपूर्वक जीना है? ऐसा करते–करते तुम पाओगे कि जीवन का एक बड़ा हिस्सा तुम हृदयपूर्वक जीने लगे और तुम्हारे जीवन में खुशहाली आ गई। तुम प्रसन्न होने लगे और तुम्हारे आसपास के सब लोग भी प्रसन्न होने लगे। तो बुद्धि का उपयोग ज़रूर करना। लेकिन वहीं, जहाँ इसकी ज़रूरत है।

तो पहली बात मैंने आपसे कही कि दूर के टारगेट को छोटे–छोटे हिस्सों में बाँट कर आगे बढ़ना। वर्तमान में जो करने योग्य है, उस पर नज़र रखना। और दूसरी बात कही कि केवल बुद्धि से नहीं, बल्कि थोड़ा हृदयपूर्वक जीना भी शुरू करना। अब तीसरी बात समझो। हम समाज में सहज और प्राकृतिक रूप से नहीं जी सकते। धीरे–धीरे यह बात हमारी सभ्यता के विकास में एक आवश्यक बुराई के रूप में सामने आई है। समझो कि आपको किसी बात पर गुस्सा आ गया। अब समाज यह स्वीकार नहीं करता कि आप क्रोध में आग बबूला हो जाओ और उल्टा–सीधा बोलने लगो। इसे कोई भी सभ्य समाज स्वीकार नहीं करता। अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती है कि इस क्रोध का क्या करें? किसी ने कोई अपमानजनक बात कह दी, तो भीतर आग बबूला हो गये और ख़ून खौल गया। शरीर लड़ने मरने के लिये तैयार हो गया। दिल हो रहा है कि उतार के दो जूते मारें उसके मुँह पर। आजकल जूते बड़े महंगे आने लगे हैं, तो लोगों ने जूते मारना भी छोड़ दिया है। दिल करता है कि दो झापड़ लगाएं, लेकिन नहीं कर सकते।

हमारे समाज की कुछ मर्यादाएं व सीमाएं हैं। हम एक सुशिक्षित व सुसंस्कृत समाज में रह रहे हैं। हम भीतर ही भीतर क्रोध को दबाए हुए हैं, लेकिन ऊपर–ऊपर से एक पाखंडी की तरह व्यवहार कर रहे हैं। हम मुस्कुरा रहे हैं, लेकिन हमारी मुस्कुराहट

झूठी है। ऊपर से तो हम एक शिक्षित व्यक्ति की भांति आचरण कर रहे हैं लेकिन भीतर क्रोध की ज्वाला भबक रही है। हम दुविधा में पड़ गये हैं।

एक है हमारे भीतर की प्रकृति–हमारा रियल नेचर, और दूसरी है हमारी सभ्यता और संस्कृति। प्रकृति हमें परमात्मा ने दी है। यह हमने सीखी नहीं है। लेकिन सभ्यता और संस्कृति हमने समाज में रहकर सीखी है। अब प्रकृति और संस्कृति के बीच में कॉन्फ्लिक्ट है। यदि हम अपनी प्रकृति के हिसाब से जीते हैं, तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती है। मान लो हम किसी बात पर क्रोधित होकर सामने वाले को दो झापड़ मार देते हैं। तो हमारे ऐसा करने पर वह भी रियैक्शन करेगा। हमने जिसे पीटा है, वह भी हमें छोड़ने वाला नहीं है। हमने उसे गाली दी है, तो वह और भी वज़नदार गाली देगा। इस तरह यह सिलसिला आगे बढ़ेगा। हर एक्शन का रियैक्शन होगा। फिर उस रियैक्शन का काऊंटर रियैक्शन होगा। और यह बात एक ही दिन में ख़तम नहीं हो जायेगी। यह सिलसिला तो दूर तक चलेगा। एक छोटी–सी बात आगे चलकर पता नहीं कितनी ख़तरनाक हो जाए। हो सकता है कि कोई किसी की हत्या भी कर दे। समाज में ऐसे व्यवहार की अनुमति नहीं है और इससे कोई सॉल्यूशन भी नहीं निकलता।

दूसरा उपाय है कि हम इस क्रोध को अपने भीतर दबा लें और किसी के सामने इसे एक्सप्रैस ही न करें। ऊपर से दिखाते रहें कि हम शांत हैं। लेकिन ऐसा करने से हमारे भीतर एक घाव पैदा हो जाएगा। जो क्रोध एक्सप्रैस होना चाहता था, उसका दमन कर दिया गया। समझो आप किसी ऑफिस में काम करते हैं। आपके बॉस ने किसी बात पर आपको डांट दिया। आपको ग़ुस्सा तो आया, लेकिन आप उसे व्यक्त नहीं कर पाए, क्योंकि बॉस के हाथ में ताक़त है। वह आपकी ट्रांसफ़र भी करवा सकता है। हो सकता है कि सस्पैंड करवा दे, नौकरी से निकाल दे या प्रमोशन रोक दे। वह बहुत कुछ कर सकता है। वहाँ तो आप यस सर! यस सर! कहते रहे। लेकिन भीतर जो ग़ुस्सा आया, उसका क्या होगा? इस प्राकृतिक भावना का क्या होगा? उस समय तो यह भावना हमने भीतर दबा ली, लेकिन अब ये प्रगट होना चाह रही है। निश्चित तौर पर ये मौक़ा–बेमौक़ा, कहीं न कहीं, किसी न किसी पर प्रगट होगी।

समझो, ये आदमी ऑफिस से डांट खाकर आया है और ग़ुस्से में आग बबूला है। घर पहुँचा, पत्नी ने चाय बना कर दी। उसने एक घूँट पिया और कप पटक दिया कि शक्कर डालना भूल गई! बहुत बेहोश रहती हो! आजकल कोई काम ठीक से नहीं करती। न जाने कब तुम्हें घर–गृहस्थी संभालना आएगा? बेचारी पत्नी को समझ में नहीं आता कि ये हंगामा किस बात का है? शक्कर नहीं डली, तो बोल दो ना! शक्कर डाल देंगे। लेकिन ये कप पटकना और उल्टी–सीधी बातें क्या करना! ये उल्टी–सीधी बातों का सिलसिला भी यहीं ख़तम नहीं होता। बात बहुत आगे बढ़ जाती है कि तुम्हारे

भाई–बहन और रिश्तेदार सब ऐसे हैं। एक्चुअली तुम्हारा पूरा ख़ानदान ही बेअक़्ल है। जब पत्नी ने यह सब सुना, तो वह भी गुस्से में आग–बबूला हो गई। लेकिन बेचारी क्या करे? जैसे आप अपने बॉस के सामने लाचार थे, मजबूर थे और यस सर! यस सर! कह रहे थे। वैसे ही अब वह बेचारी पत्नी लाचार है। न तो वह कुछ कह सकती है और न ही कुछ कर सकती है। वह आर्थिक और सामाजिक रूप से पति पर निर्भर है। लेकिन भीतर तो आग लग गई है। जैसे–तैसे दोबारा चाय बना लाई। झाड़ू–पोंछा लगाया और टूटा कप उठाया। दिल तो उसका हो रहा है कि चाय इसके मुँह पर दे मारे। लेकिन ऐसा करना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। तलाक़ की नौबत आ जायेगी। जीवन बड़ा मुश्किल हो जायेगा। इसलिए ऐसा नहीं कर सकती। लेकिन अन्दर जो गुस्सा भरा पड़ा है, उसका क्या करे? इंतज़ार करेगी।

शाम हुई। बच्चा अपना बस्ता झुलाता हुआ और फ़िल्मी गीत गाता हुआ स्कूल से घर आ रहा है। उसे पकड़ कर लगाये दो झापड़। क्रोध उसी पर ही व्यक्त होगा, जो हमसे कमज़ोर है। जो हमसे ज़्यादा शक्तिशाली है, पावरफुल है; उस पर तो हम क्रोधित हो नहीं सकते। वह हमें नुक़्सान पहुँचा सकता है। हम भी बड़ा देख कर चलते हैं कि कहाँ नुक़्सान नहीं होगा? क्रोध भी निकल जाए, भड़ास भी निकल जाए, और कोई हमारा कुछ बिगाड़ भी न सके। तो जैसे आप बॉस के ऊपर क्रोध नहीं कर सके, तो पत्नी पर कर दिया। पत्नी आप पर क्रोध नहीं कर सकी, तो आपकी औलाद पर करेगी। उसने उस लड़के को बहुत पीटा कि कपड़े गंदे क्यों किये? कितनी बार कहा है कि धूल–मिट्टी में न खेला करो। मैं तुम्हारे कपड़े साफ़ कर–कर के परेशान हो गई हूँ। कितने नंबर मिले टैस्ट में आज? नंबर कम मिले, तो एक झापड़ और लगा दिया।

उस लड़के को तो समझ ही नहीं आता कि रोज़ इतने ही नंबर मिलते हैं और रोज़ कपड़ों में धूल–मिट्टी लगती है–आज कोई नई बात तो है नहीं। लेकिन आज ठुकाई क्यों हो रही है। वह भी समझ जाता है कि मामला कुछ गड़बड़ है। वह भी समझ जाता है कि सोर्स कुछ और ही है। उसे अंदाज़ा हो जाता है कि पापा से कुछ हुआ है और ठुकाई मेरी हो रही है। क्योंकि इसकी शक़्ल भी बाप से मिलती जुलती है। तो वह अहसास दिलाना चाहती है कि अगर मेरे भाई–बहन, माँ–बाप किसी में अक़्ल नहीं, तो तुम्हारी औलाद में भी अक़्ल नहीं है। माँ ने तो बच्चे की पिटाई कर दी। अब बच्चा बेचारा क्या करे? वह माँ के ऊपर तो नाराज़ हो नहीं सकता, क्योंकि उसका पूरा जीवन माँ पर निर्भर है। लेकिन वह भी टेंशन में आ गया है। अब वह भी कुछ तो करेगा, जो कर सकता है। कहीं तो क्रोध निकलेगा।

वह अपने कमरे में जाता है और किताब फाड़ देता है। खिलौना रखा था। उठा के गुड्डे की टांग तोड़ दी। टांग तो अपनी मम्मी की तोड़ना चाह रहा था। लेकिन वह जानता

है कि मम्मी की टांग तोड़ना बहुत महंगा पड़ेगा। घर के बाहर देखता है कि एक कुत्ता बैठा हुआ है। एक पत्थर उठाता है और उस कुत्ते को ज़ोर से मारता है। बच्चा बेचारा कुत्ते को तो मार ही सकता है। कुत्ते को समझ में नहीं आती कि ये लड़का रोज़ तो ब्रैड खिलाता था। आज मैंने ऐसा क्या किया है कि पत्थर मार रहा है? लेकिन वह कुत्ता इस लड़के से कुछ कह नहीं सकता क्योंकि उसके हाथ में पत्थर है। तो बेचारा कैं, कैं, कैं करते हुए वहाँ से चला जाता है। गुस्से में वह कुत्ता भी आ गया।

अब वह इंतज़ार कर रहा है कि कोई निरीह प्राणी वहाँ से गुज़रे और उसे काटूँ। और हो सकता है कि ऑफिस के बॉस ही शाम को वॉक पर निकलें और कुत्ता उन्हें काट ले। तब कहीं जाकर वह सर्कल कम्पलीट हुआ। इस प्रकार हिसाब–किताब पूरा हुआ। लेकिन ये तो बड़ा ख़तरनाक हिसाब–किताब हुआ। इसमें तो बड़े अनावश्यक उलझाव खड़े हो गये। जिनसे हमें प्रेम व लगाव था, उनके साथ हमने कुछ ऐसा कर दिया, जो नहीं करना था। तो क्रोध को दबाना भी कोई उपाय नहीं है। बल्कि इससे तो हमारे भीतर तनाव पैदा हो सकता है। तो एक्सप्रेशन व सप्रेशन दोनों में मुसीबत है। एक तरफ कुआँ है, तो दूसरी तरफ खाई। तो फिर करें, तो क्या करें?

सद्‌गुरु ओशो ने ध्यान की ऐसी कई विधियाँ बनाई हैं, जिससे हम एकांत में हमारे भीतर दमित भावनाओं का रेचन कर लें और उनसे छुटकारा पा लें। अब न तो अपने क्रोध को किसी के ऊपर एक्सप्रैस करने की ज़रूरत है और न ही भीतर दबाने की ज़रूरत है। चौबीस घंटे में से आधा घंटा ध्यान के लिये निकाल लें। हो सके तो साऊंड–प्रूफ डबल कांच की खिड़की लगवा लो ताकि आवाज़ भी बाहर न जाये। फिर ख़ूब अच्छे से रेचन करें। कमरा बंद करके ख़ूब चीखें चिल्लाएं। गाली देना हो गाली दें। किसी का कोई नुक़सान नहीं होगा और आपके भीतर जो दबा हुआ तनाव है, उससे भी आप छुटकारा पा लोगे। सारे टैंशन से फ़्री हो जाओगे। इसके लिए ओशो ने जो ध्यान–विधियां बनाई हैं; उनमें से एक है– 'डाइनैमिक मैडिटेशन', दूसरी है– 'मिस्टिक रोज़ मैडिटेशन' तीसरी विधि है– 'नो माइंड मैडिटेशन' और चौथी पद्धति है– 'बोर्न अगैन मैडिटेशन'।

इन ध्यान विधियों से हम भीतर दबी हुई भावनाओं को एकांत में निष्कासित कर देते हैं और उनसे छुटकारा पा लेते हैं। तब यह क्रोध किसी के ऊपर एक्सप्रैस करने की ज़रूरत नहीं रहेगी। यहाँ का गुस्सा वहाँ नहीं निकलेगा। उस एकांत कमरे में थोड़ा–सा प्राणायाम करो ताकि आप शक्तिशाली हो जाओ। चाहे क्रोध हो, घृणा हो, नफ़रत हो, ईर्ष्या हो, जलन हो अथवा कोई भी नकारात्मक भावना हो; उसे निकाल बाहर करो। कल्पना में वह सब कर डालो, जो आप करना चाहते हो। अगर आप बहुत कल्पनाशील नहीं हो, तो एक तकिया रख लो। तकिये पर उस व्यक्ति का नाम लिख

लो और हो सके, तो उसका फ़ोटो लगा लो। जब आप अपने मोबाईल से अपने बॉस या पति की फ़ोटो लोगे, तो वह भी खुश हो जायेगा कि अरे वाह! आज मेरी फ़ोटो ली जा रही है। उनको क्या पता कि क्या करने वाले हो? तकिये पर उनकी फ़ोटो चिपका कर जो करना है, कर डालो। लात–घूँसे मारो, जूते मारो और चाहो तो, उठा के पटक भी दो। एक चाक़ू भी रख लेना। अगर पोस्टमार्टम करना है, तो तकिये का पोस्टमार्टम कर लेना। ऐसा करते–करते आप अचानक हल्के–फुल्के हो जाओगे। तनावों का जो भंडार भीतर भरा था, वह सब बह जाएगा। जब घंटेभर बाद आप ध्यान कक्ष से बाहर निकलोगे, तो एकदम प्रसन्न और वेटलैस होंगे। जैसे कि सारा बोझ उतार दिया हो। और तब आपको वे सब असभ्यताएं नहीं करनी पड़ेंगी, जो आप करने को मजबूर थे।

हम एक सभ्य और सुसंस्कृत सोसायटी के हिस्से हैं। निश्चित रूप से हमें उन सभ्यताओं की मर्यादा में जीना है। तो यह उपाय हमें तनावों से मुक्त कर सकता है। आधे घंटे के इस ध्यान के बाद आप पायेंगे कि बाक़ी के साढ़े तेईस घंटे एकदम प्रसन्नतापूर्वक बीतने लगे। अब आपके भीतर कोई तनाव मौजूद नहीं होगा। सब निकल गया। रोने का मन है, रो लिया। हँसने का मन है, हँस लिया। छोटे बच्चे की तरह सरल हो गये। छोटे बच्चे को देखो। जब उसे गुस्सा आता है, तो वह कैसा क्रोध करता है? बिल्कुल ऑथैंटिक, रीयल। ऐसा क्रोध करो। अगर तुम्हारे मन में दुख है, तो जी–भर के छाती पीट–पीट कर रो लो। किसी का कोई नुक़सान नहीं होगा और तुम्हारे भीतर का दुख भी निकल जायेगा।अगर खुश हो, तो ज़मीन पर लोटपोट होकर खूब हँसो।

तनाव से मुक्ति के लिये मैंने आपको तीन महत्त्वपूर्ण सूत्र कहे। इन्हें विस्तार में नहीं कहेंगे। विस्तार में तो बहुत बातें हो जाती हैं। फिर इतना सब आपको स्मरण भी नहीं रहेगा। तो पहली बात है वर्तमान के क्षण में जीना। हमेशा दूर की मत सोचो। हाँ, कभी–कभार इसका ख़्याल अवश्य रखना। समझो मुझे मुंबई से वापिस दिल्ली जाना है, तो एक बार तो सोचना पड़ेगा कि ट्रेन से जाना है या फ़्लाइट से जाना है? फिर रिज़र्वेशन भी करवा लेना। बस उतना ही सोचना। दैट्स ऑल। जब आप गाड़ी में बैठो, तो कृपया गाड़ी के डिब्बे में ही रहो। अभी दिल्ली मत पहुँच जाना। और मुंबई छूट गया, तो छूट जाने दो। इसे ही मैं कह रहा हूँ वर्तमान में जीना। मैं ये नहीं कह रहा कि रिज़र्वेशन मत करवाना। यात्रा करनी हो, तो रिज़र्वेशन तो कराना ही होगा। भविष्य का ख़्याल तो करना होगा, लेकिन बस उतना, जितना ज़रूरी हो।

तनावमुक्त रहने के लिए दूसरी बात है कि रोज़ ध्यान करना। अगर आपने रोज़ आधा घंटा यह ध्यान–विधि कर ली, तो आप एक बहुत ही खुशमिज़ाज, प्रसन्न व छोटे बच्चे जैसे सहज और सरल हो जायेंगे। और तीसरी बात भी याद रखना कि बुद्धि बड़े काम की है; लेकिन जहाँ उसकी ज़रूरत है, बस वहीं काम में लाना। एक उदाहरण से

समझो। एक आदमी सारा दिन काम करके थका–मांदा अपने घर पहुँचा। बाहर तेज़ धूप थी, तो उसके हाथ में छाता भी था। अगर वह सूट–बूट पहने, जूते–मोज़े पहने, टाई लगाये हुए और हाथ में छाता लगाये हुए अपने बैडरूम में लेटा हुआ है, तो उसे हम क्या कहेंगे? हम यही कहेंगे कि यह आदमी पागल है। अरे भई! ये कौन सा तरीक़ा है? बैडरूम में जूते–मोज़े पहनकर और हाथ में छाता पकड़ कर सोने की क्या आवश्यकता है? और गले में फांसी क्यों लगाये हो? अब इसका मतलब यह थोड़ी है कि हम छाता–विरोधी या जूता–विरोधी हैं। भई! जब सड़क पर चलो, तो जूता पहनना कि कांटे–कंकड़ न गड़ जाएं। जब धूप या बारिश हो, तो छाता ज़रूर इस्तेमाल करना। इट इज़ यूसफ़ुल। लेकिन चौबीसों घंटे अपने घर में छाता लेकर घूमने की क्या ज़रूरत है?

ठीक ऐसे ही मैं आपसे कह रहा हूँ कि हमारे भीतर जो विचारशक्ति है, उसका उपयोग वहीं करना जहाँ आवश्यक हो। हर जगह क्यों? चौबीस घंटे क्यों? इसका मतलब ये नहीं कि मैं बुद्धि का विरोधी हूँ। बल्कि अगर आप बुद्धि का इस्तेमाल कभी–कभी करोगे, तो आप उसका सदुपयोग कर पाओगे। ये आदमी जो चौबीसों घंटे छाता लगाए हुए है, इसका छाता बहुत जल्दी ख़राब हो जायेगा। याद रखना! जब बरसात आयेगी, तब उसे पता चलेगा कि इस छाते में कई छेद हैं।

आपके जूते भी आप आवश्यकता से अधिक इस्तेमाल नहीं कर सकते। अगर ज़रूरत के समय इस्तेमाल करोगे, तो आपके जूते पाँच साल चलेंगे। लेकिन अगर बाथरूम में नहाते समय भी जूते पहने रहेंगे, तो एक महीना भी नहीं चलेंगे। तो ठीक वैसी ही समझदारी अपनी बुद्धि के साथ करें। ज़्यादा से ज़्यादा समय भावपूर्वक हृदय से जीना सीखें। और एक बार यह बात ख़्याल में आ गई, तो पायेंगे कि इसके हज़ार मौक़े हैं। हमेशा बुद्धिमानी की ज़रूरत नहीं है। हृदयपूर्वक जीयें। आप पायेंगे कि आपके जीवन से तनाव ग़ायब होने लगा और आप बिल्कुल तनावशून्य अवस्था में पहुँच गए। इससे आपका जीवन अत्यंत ख़ुशी से भर सकता है। मैंने आपसे जितनी भी बातें कहीं, इनके अनुसार चलना बहुत आसान है। कोई भी कर सकता है।

प्यारे मित्रो! अब हम ध्यान का एक छोटा–सा प्रयोग करेंगे। इसका नाम है– 'संजीवनी–ध्यान'। इसमें स्टार्टिंग में हम एक–डेढ़ मिनट के लिये अपनी जगह पर खड़े होकर जॉगिंग करेंगे, ताकि शरीर की ऊर्जा जाग जाए। हमारी जो मांसपेशियाँ हैं, यह कुछ काम करने के लिये ही बनी हैं। प्रकृति ने हमें जैसा बनाया था, अगर हम वैसा जीवन जी रहे होते, तो हमें शरीर की ऊर्जा जगानी नहीं पड़ती। लाखों–लाखों सालों तक हम उसी प्रकार ही जिए हैं। ये सभ्यता तो अभी कुछ हज़ार साल पहले ही पैदा हुई है। ज़रा सोचो! पहले दिनभर में कितनी भागदौड़ करनी पड़ती थी! प्यास बुझाने के लिए पानी लाने के लिए दो–चार मील तक जाना पड़ता था। तब कहीं जाकर कोई नदी

या तालाब मिलता था। ऐसे नहीं कि फ़्रिज खोला और कोका–कोला पी लिया। भूख लगने पर खाना ढूंढ़ना कोई हँसी–मज़ाक़ नहीं था। विश्वास न हो, तो एकाध बार किसी जंगल में जाकर खाने योग्य फल ढूंढना– नानी याद आ जायेगी! तब भी मुश्किल है कि पेट भर पाये। किसी जंगल में सालभर इतने फल नहीं होते कि हम पेट भर लें। पेट भरने के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ेगी। न जाने कितने पेड़ों पर चढ़ना पड़ेगा और पता चला कि जैसे ही हम एक फल तक पहुँचे, इतने में ऊपर से एक बंदर छलांग मार के आया और वह फल ले गया। अब दूसरे पेड़ पर चढ़ो।

हमारा शरीर बहुत श्रम करने के लिये बना है। लेकिन आज के सभ्य समाज में हम किसी प्रकार का शारीरिक श्रम नहीं करते। ऑफिस में कुर्सी–टेबल पर बैठे रहते हैं। ऑफिस से घर आए, तो सोफ़े पर बैठ गये और इडियट–बॉक्स, यानि टीवी ऑन कर लिया। टीवी देखते हुए हम तो कुछ करते ही नहीं। जो कुछ करना है, बेचारे एक्टर–एक्ट्रैस कर रहे हैं। मारपीट भी वही करते हैं और प्रेम भी वही करते हैं। अपना काम तो बस बैठे–बैठे रिमोट–कंट्रोल दबाना है। चैनल बदलते रहो और फिर थक कर सो जाओ। कोई फ़िज़िकल एक्टिविटि नहीं। तो मांसपेशियों में भरे तनाव को निकालने के लिए कुछ न कुछ अवश्य करो। चाहे थोड़ी देर जॉगिंग कर लें, कोई व्यायाम कर लें, कोई योगासन कर लें या कोई और मेहनत कर लें। आपको जो अच्छा लगता हो, वही करें। आज के इस सैशन में हम एक मिनट जॉगिंग करेंगे। ज़रा दौड़ लें ताकि साँस तेज़ी से चलने लगे। कल्पना कर लें कि जंगल में शेर आपके पीछे दौड़ रहा है। उसका भी लंच टाईम हो गया है। और फिर देखो कैसे दौड़ते हो? और तब पता चलेगा क्या होता है शारीरिक श्रम! अपनी जान बचाना कितना कठिन है!

एक मिनट जॉगिंग करने के बाद बैठकर म्यूज़िक के साथ हम कपालभाति और भस्त्रिका प्राणायाम करेंगे। उसकी विधि आपको साथ–साथ बताते चलेंगे। फिर खड़े होकर नाचेंगे, गायेंगे, उत्सव मनायेंगे। एक प्यारी धुन चलेगी। अनहद बाजा बाजे रे, आओ ता थईया नाचें। हम सब नाचेंगे। थोड़ी देर के लिये भूल जाईये कि आप पढ़े–लिखे सभ्य व सुसंस्कृत इंसान हैं। थोड़े गांव के गंवार हो जाइए। थोड़ा रिलैक्स होना ज़रूरी है। इसके लिए चाहे नाच लो, गा लो या ताली बजा लो। याद रखना! घूँसा मारने में जितनी ताक़त लगती है, उतनी ही ताक़त ताली बजाने में भी लगती है। शरीर को ये नहीं पता कि आप घूँसा चला रहे हो कि ताली बजा रहे हो? आप कोई भी फ़िज़िकल एक्टिविटि कर लो। ऐसा करने से आप पाओगे कि भीतर की नैगटिव भावना निष्कासित हो गई। अगर आप रोज़ दस मिनट नाच लो या उछल–कूद कर लो, तो फिर आप क्रोध न कर पाओगे। इसकी ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। शरीर को जो करना था, उसने कर लिया और बड़े अच्छे ढंग से कर लिया। न किसी दूसरे का कोई

नुक़सान हुआ और न ही हमारा। कोई नुक़सान तो नहीं हुआ। लेकिन हाँ, कुछ न कुछ स्वास्थ्य लाभ अवश्य होगा। मोटे लोगों के लिए तो यह बहुत ही उपयोगी है। ऐसा करने से उनका थोड़ा वज़न कम हो जायेगा। बेचारे बड़े परेशान रहते हैं–विशेषकर महिलाएँ। डाईटिंग कर–कर के भी उन्हें कुछ फ़ायदा नहीं होता। अरे कुछ करो–धरो, तभी तो वज़न कम हो। आजकल करने–धरने को तो कुछ बचा ही नहीं है।

जब आप नाच–गा लोगे, तो स्वयं को तनावमुक्त महसूस करोगे। ज़रा ऊंची आवाज़ में चिल्ला–चिल्ला के अच्छे से गाना। ये नहीं सोचना कि जब लता मंगेश्कर या मोहम्मद रफ़ी जैसी आवाज़ होगी, तब गायेंगे। नहीं, जैसी आपकी आवाज़ हो, वैसे ही गा लो। यहाँ कोई कॉम्पिटिशन तो हो नहीं रहा। और आप पाओगे कि आप कितने रिलैक्स हो गये। ध्यान की भूमिका बन गई और फिर उसके बाद हम यहाँ लेट जायेंगे। लेटने की जगह हो, तो शवासन मे लेट जाइए। और जहाँ पूरी जगह न हो, तो वापिस कुर्सी पर बैठ जाईये। आँखें बंद कर लीजिए और पूरी तरह रिलैक्स हो जाईये। साथ–साथ म्यूज़िक चलेगा और आपको इंस्ट्रक्शन्स मिलते जायेंगे। तो आइए, सद्गुरु ओशो का स्मरण करते हुए हम ध्यान का यह प्रयोग शुरू करते हैं। सब लोग तैयार हो जाएं।

बहुत–बहुत धन्यवाद! जय ओशो!

तीथल (गुजरात) में धर्मसभा के आयोजक स्वामी प्रद्युम्न जी के उद्गार–

पारब्रह्म परमेश्वर स्वरूप, प्यारे परमगुरु ओशो का नाम सुनते ही हम दीवाने हो उठते हैं। जहाँ–जहाँ भी ओशो का नाम होता है, वहाँ हमें दौड़कर जाने की तमन्ना होती है। परमगुरु ओशो को श्रद्धाभाव से स्मरण करते हुए हम सब ओशो–प्रेमी, ओशो–दीवाने उन्हें प्रणाम करते हैं। जिस क्षण की हम कई दिनों से, कई महीनों से आतुरतापूर्वक राह देख रहे थे; वह सौभाग्य की घड़ी आज आ गई है। हमारे सामने ओशो शैलेन्द्र जी उपस्थित हैं। हम सभी हृदयपूर्वक उनका स्वागत करते हैं। आज एक अनूठे विषय 'ओऽम् इति ब्रह्म' के अनुसंधान में सद्गुरु की पवित्र वाणी सुनने के लिये हम सब यहाँ उपस्थित हुए हैं। गुरुदेव! कृपया हमें बोध दें कि इस संदर्भ में परमगुरु ओशो की क्या देशना है? ताकि हम उस रास्ते पर चलकर उस मंज़िल तक पहुँच सकें, जहाँ ले जाने के लिये ओशो हमें संकेत करते हैं। हरि ओऽम् तत्सत्!

ओशो शैलेन्द्र जी का प्रवचन

समस्त ओशो–प्रेमियों और अध्यात्म के जिज्ञासु मित्रों का आज की इस सभा में स्वागत है। आप सबके हृदय में मौजूद ओशो के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा को नमन। 'ओऽम् इति ब्रह्म' इस महावाक्य के अनुसंधान में सर्वप्रथम मैं एक छोटी–सी कहानी का ज़िक्र करना चाहूँगा, जो शायद आपने बचपन में सुनी होगी। नचिकेता की कहानी, बच्चों की टैक्स्ट बुक में रहती है। कठोपनिषद् में ज़िक्र आता है कि एक छोटा–सा बालक था

नचिकेता, जिसकी उम्र पाँच साल थी। उसके पिता बड़े अहंकारी थे। वह बड़े दानी भी थे और ज्ञानी भी। एक बार नचिकेता के पिता ने बहुत बड़ा यज्ञ करवाया और घोषणा की कि मैं अपना सर्वस्व दान कर दूँगा। उनके पास बहुत सी बूढ़ी गायें थीं, जो दूध भी नहीं देतीं थीं। वे उन गायों को भी दान कर रहे थे। वह छोटा बच्चा नचिकेता बैठा–बैठा देख रहा था। उसने अपने पिता से कहा–'पिता जी! ये गायें तो किसी के काम की नहीं। ये तो आप जिन्हें दान दे रहे हैं, उनके ऊपर बोझ हो जायेंगी। इन्हें खिलाना–पिलाना पड़ेगा और इनकी सेवा भी करनी पड़ेगी। जब इन गायों से कुछ मिलने वाला ही नहीं, तो इन्हें दान देने से क्या लाभ?'

पिता ने गुस्से में कहा कि तू बीच में मत टोक। मैंने संकल्प लिया है कि मैं अपना सबकुछ दान कर दूँगा, सबकुछ। उसके बेटे से रहा न गया। उसने थोड़ी देर बाद फिर पूछा कि पिता जी! आप कह रहे हैं कि आप अपना सबकुछ दान कर देंगे, तो मैं भी तो आपका ही हूँ। क्या आप मुझे भी दान कर देंगे? पिता बड़ा घमंडी था। वह क्रोध में आ गया। उसने कहा–'हाँ, तुझे भी दान कर दूँगा।' नचिकेता ने पूछा कि मुझे किसको दान में देंगे? पिता ने गुस्से में कहा कि तुझे मैं मृत्यु के देवता यमराज को दान देता हूँ।

कहानी कहती है कि वह छोटा बालक यमराज के द्वार पर जा पहुँचा। यमराज की पत्नी ने कहा कि बेटा! यमराज कहीं बाहर गये हैं। दो–तीन दिन बाद वापिस लौटेंगे। तू कुछ खा–पीकर, कुछ देर विश्राम कर ले। नचिकेता ने कहा–'अभी विश्राम कैसे कर सकता हूँ? जिस उद्देश्य से आया हूँ, पहले वह उद्देश्य तो पूरा हो जाए।' उसने तीन दिन तक न तो भोजन किया, न पानी पीया और न ही वह सोया। तीन दिन तक वह दरवाज़े पर ही बैठा रहा। तीन दिन बाद जब यमराज वापिस लौटे, तब उनकी पत्नी ने उन्हें बताया कि यह लड़का बड़ा संकल्पवान है। आपसे मिलने को आतुर यह तीन दिन से भूखा–प्यासा, जागा हुआ बैठा है।

यम भी उस छोटे बच्चे की लगन देख कर बहुत प्रभावित हुए। उसकी निष्ठा देखकर यम ने कहा कि बेटा! मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ, तू जो चाहे वरदान माँग ले। नचिकेता ने कहा कि मैं एक छोटा बालक हूँ, मैं तो अभी यह भी नहीं जानता कि माँगने योग्य क्या है? मुझमें तो इतनी अक़्ल भी नहीं कि कुछ माँग सकूँ। आप समझदार हैं, आप बड़े हैं, आप मृत्यु के देवता हैं; यदि आप प्रसन्न ही हैं, तो फिर वह दे दीजिए जो देने योग्य हो। मैं किस मुंह से माँगूं? यमराज ने कहा– 'मैं तुझे दुनिया की धन दौलत देता हूँ। तू पृथ्वी का सबसे अमीर व्यक्ति बन जा। बोल, ठीक है? ख़ुश है इसमें?' नचिकेता ने कहा कि कृपया एक बात बता दें कि क्या दुनिया का सर्वाधिक संपन्न व्यक्ति बन जाने से मुझे तृप्ति मिल जायेगी? क्या मैं संतुष्ट हो जाऊँगा?

यमराज चौंके कि ऐसा सवाल तो बड़े–बूढ़े भी नहीं पूछते। और इस छोटे से

नादान बालक ने इतना महत्त्वपूर्ण सवाल उठा दिया कि क्या दुनिया का सबसे अमीर आदमी बन जाने से मेरे भीतर संतोष हो जायेगा? क्या फिर मुझे जीवन में कोई कमी नहीं रहेगी? क्या इससे कोई अभाव नहीं पकड़ेगा? यमराज ने कहा– 'नहीं, ऐसा तो नहीं हो सकता। तुम्हें हीरे–जवाहरात मिल जायेंगे, धन–दौलत मिल जायेगी, ज़मीन–जायदाद मिल जायेगी; लेकिन संतोष नहीं मिलेगा। इन सबसे आज तक किसी को संतोष नहीं मिला।' नचिकेता ने कहा– 'फिर ऐसी चीज़ मुझे दे ही क्यों रहे हैं, जिससे संतोष न मिले?' यमराज ने कहा– 'तू पृथ्वी का एकमात्र सम्राट, चक्रवर्ती सम्राट बन जा। सारी धरती पर तेरा ही राज्य होगा।'

नचिकेता ने फिर वही सवाल दोहराया कि क्या सारी पृथ्वी का साम्राज्य हासिल कर लेने से मेरे जीवन में शांति और आनंद होगा? यमराज ने कहा कि तू तो बड़े कठिन सवाल पूछता है। साम्राज्य पा लेने से, शांति और आनंद पाने का कोई भी संबंध नहीं है। शायद इसका उल्टा होगा कि साम्राज्य पा लेने के बाद तू और अशांत हो जायेगा। इतनी चिंता, इतनी फ़िक्र हो जायेगी कि जीवन में जो थोड़ा बहुत आनंद था, वह भी नष्ट हो जायेगा। नचिकेता ने कहा– 'फिर ऐसी चीज़ दे ही क्यों रहे हैं, जिसे पाकर मैं अशांत हो जाऊँ। आप मुझे वरदान दे रहे हैं कि अभिशाप?'

यमराज ने कई प्रकार के लोभ दिए कि ये ले लो, वो ले लो; लेकिन नचिकेता का सवाल वही रहा कि क्या इसको पाकर मैं सदा–सदा के लिये तृप्त हो जाऊँगा? यमराज ने कहा–'नहीं।' नचिकेता ने कहा कि यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं और कुछ देना ही चाहते हैं, तो कृपया फिर वही दें, जिसे पाकर फिर कुछ और पाने की चाहत शेष न बचे, भीतर का वो भिखमंगापन ख़तम हो जाए। तब यमराज ने असली बात कही। यह कहानी आप सभी ने भी पढ़ी या सुनी होगी, अक्सर तो बच्चों की टैक्स्ट बुक में रहती है। जितनी मैंने बताई, यहाँ तक की कहानी आपको याद भी होगी। इसके आगे की कहानी क्या है? यमराज ने फिर क्या बताया? यह शायद ही लोगों को याद हो। हमारा मन बड़ा विचित्र है। कहानी क़िस्से तो हमें याद रह जाते हैं, लेकिन ये कहानी क़िस्से जिस तरफ़ इशारा करने के लिये गढ़े गए हैं, वह असली बात हम भूल ही जाते हैं।

यह सिर्फ़ एक कहानी है। न तो वास्तव में कहीं मृत्यु के देवता यमराज हैं और न ही शायद कभी नचिकेता हुआ। यह कहानी तो केवल यह बताने के लिये है कि दुनिया की सारी संपत्ति से ज़्यादा मूल्यवान और सारी पृथ्वी के साम्राज्य से अधिक क़ीमती, कुछ और ही है। यमराज ने कहा– 'नचिकेता! तू बहुत ज़िद्द कर रहा है। नहीं मानता तो ठीक है। अब मैं वह बात बताता हूँ, जिसे पाकर परमशांति मिलती है, संतोष मिलता है, जीवन में आनंद फलित होता है और मुक्ति हासिल होती है। जिसे जानने के लिये त्यागी, त्याग करते हैं; तपस्वी, तपस्या करते हैं; भक्त, भक्ति में डूबते हैं; तांत्रिक,

अपने ढंग की साधना करते हैं; ज्ञानीजन, अपने ढंग से साधना करते हैं; योगीजन, योग साधते हैं और नाना प्रकार के साधनों का उपयोग करते हैं। ब्रह्म का वह रहस्य, मैं तुम्हें संक्षेप में, एक अक्षर में बताता हूँ। और वह एक अक्षर है–'ओऽम्'। आज की चर्चा मैंने कठोपनिषद् की इस कहानी से शुरू की है, ताकि आपको स्पष्ट हो जाए कि जिस ओऽम् के बारे में हम जानने जा रहे हैं, वह दुनिया की सब चीज़ों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके पहले कि मैं और विस्तार में जाऊं, थोड़ी–सी चर्चा करना चाहूँगा।

लाखों साल पहले मनुष्य जाति का विकास बंदरों से और लंगूरों की प्रजाति से हुआ और मनुष्य और जानवरों में एक विशेष फ़र्क़ पड़ गया। मनुष्य में मन उत्पन्न हुआ। 'मन' शब्द से ही 'मनुष्य' शब्द उत्पन्न हुआ है। जानवरों के पास हमारे जैसा मन नहीं है। वे चिंतन–मनन नहीं कर सकते। न ही उनकी कोई भाषा है और न ही उन्हें सोच–विचार करना आता है। उनके जीवन में कोई समस्याएं और कोई प्रश्न भी नहीं हैं। जब से हम मनुष्य हुए, तब से हमारे भीतर पशुओं से भिन्न एक नया तत्त्व पैदा हो गया। हमारे भीतर 'मन' उत्पन्न हो गया और मन कई सवाल खड़े करता है। सवालों के जवाबों की खोजबीन करता है। मनुष्य बहुत कुछ जानना चाहता है लेकिन अन्य पशुओं में ज्ञान की तलाश नहीं है। उन्हें भोजन मिल जाए, पानी मिल जाए, कामवासना की तृप्ति हो जाए, बस इतना पर्याप्त है। भौतिक ज़रूरतें पूरी हो गई, बात ख़तम।

मनुष्य के साथ एक नई चीज़ पैदा हुई कि वह केवल भौतिक ज़रूरतों से ही तृप्त नहीं होता। उसके भीतर ज्ञान की जिज्ञासा है। उसके मन में हर चीज़ के बारे में सवाल पैदा होते हैं। ये सवाल मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं। कुछ सवाल बाहर के जगत की घटनाओं व प्रकृति के रहस्यों को जानने से संबंधित होते हैं और कुछ स्वयं को, अपनी भीतर की चेतना को, अपनी आत्मा को जानने से संबंधित होते हैं।

मनुष्य के इस चिंतन–मनन से कई फिलॉसफीज़ पैदा हुई। भांति–भांति के दर्शन शास्त्र हुए। सारे जगत में जहाँ–जहाँ मनुष्य है, वहाँ–वहाँ खोजबीन शुरू हुई। इस खोजबीन ने दो मुख्य दिशाएं पकड़ीं। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें, तो आज से लगभग पाँच हज़ार साल पहले वेद और उपनिषद् काल में ख़ासकर पूरब के मनीषी चिंतन–मनन में कुशल लोग थे। वे भीतर अपनी चेतना को, अपनी आत्मा को और परमात्मा को जानने में लग गए; जिससे दर्शन शास्त्र की एक ब्रांच, एक शाखा के रूप में अध्यात्म उत्पन्न हुआ। क़रीब–क़रीब ढाई हज़ार साल पहले यूनान में विशेषकर अरस्तू, प्लेटो इत्यादि के संग, बाहर की प्राकृतिक घटनाओं का विश्लेषण किया जाने लगा और उनके नियम समझने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। इस प्रकार विज्ञान की बुनियाद रखी गई। धीरे–धीरे पश्चिम में विज्ञान विकसित हुआ और पूरब में अध्यात्म विकसित हुआ। फ़िलॉसफ़ी ने ये दो रूप ले लिये। एक, बाहर प्रयोग करके प्रकृति के रहस्यों को

उद्‌घाटन करना और दूसरा, भीतर योग के माध्यम से, ध्यान और समाधि के माध्यम से अपनी अंतरात्मा के रहस्य को जानना। ये दो मुख्य विभाजन हुए। अब मैं क्रमशः इन्हीं मुख्य बिंदुओं पर आना चाहूँगा।

पूरब में, विशेषकर हमारे देश में चार बड़े धर्म पैदा हुए हैं– हिंदू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सिक्ख धर्म। ऊपर–ऊपर से देखें तो इनमें बड़े भेद हैं। इनकी फ़िलॉसफ़ीज़, इनके सिद्धांत, इनकी मान्यताएं, इनके विश्वास, बहुत अलग–अलग हैं। इनमें कुछ मेल–मिलाप करना संभव नहीं लगता। उदाहरण के लिये, हिंदू धर्म मुख्यतः ईश्वर की धारणा के इर्द–गिर्द घूमता है। ईश्वर की उपासना और ईश्वर की प्राप्ति ही हिंदुओं का मुख्य लक्ष्य है। ईश्वर की पूजा–आराधना और ईश्वर की भक्ति ही हिंदू धर्म का मुख्य बिंदु है। फिर आया जैन धर्म, जो कि पूर्णतः अनीश्वरवादी धर्म था। उसने ईश्वर को बिल्कुल नकार दिया।

धर्म जगत में ऐसा पहली बार हुआ। महावीर ने कहा कि आत्मा ही अंतिम सत्य है, इसके आगे और कुछ भी नहीं। उन्होंने परमात्मा को नकार दिया और कहा कि केवल आत्मा की खोज, उसे जानने की साधना ही वास्तविक धर्म, सच्चा अध्यात्म है। यहाँ हिंदू धर्म से बड़ा विरोध खड़ा हो गया। बुनियादी आधारभूत बात ही अलग हो गई।

फिर गौतम बुद्ध के संग बौद्ध धर्म आया। उन्होंने आत्मा और परमात्मा दोनों को ही नकार दिया। उन्होंने कहा कि न तो कहीं कोई ईश्वर है और न ही आत्मा है, बल्कि भीतर शून्यता है। जब तुम ध्यान में डूबोगे और समाधि में जाओगे, तो फिर महाशून्य को पाओगे। कोई आत्मा–परमात्मा भीतर नहीं मिलेंगे। बौद्ध धर्म भी ख़ूब फलीभूत हुआ। यह धर्म भारत के बाहर, सारे एशिया में फैल गया। गौतम बुद्ध से करोड़ों–करोड़ों लोग प्रभावित हुए। फिर आया चौथा धर्म, सिक्ख धर्म। गुरुनानकदेव जी के संग एक बिल्कुल नये बिंदु से धर्म की शुरूआत हुई। उन्होंने न ईश्वर को मान्यता दी, न आत्मा को मान्यता दी और न ही शून्यता की बात की। उन्होंने गुरु–शिष्य संबंध को प्रमुख कर दिया। छोड़ो भगवान की बात, छोड़ो आत्मा की बात, छोड़ो शून्यता और पूर्णता की बातें। असली बात है– 'गुरु–शिष्य संबंध'।

'शिष्य' शब्द का ही पंजाबी रूपांतरण है– 'सिक्ख'। 'सिक्ख' यानि 'शिष्य'। शिष्य वह है जो सीखने में उत्सुक हो। किससे? सद्‌गुरु से। तो शिष्य वह है, जो सद्‌गुरु से सीखने में उत्सुक हो। बुनियादी रूप से यह बिल्कुल ही अलग धर्म हो गया। भारत में चार बड़े धर्म पैदा हुए। ऊपर–ऊपर से इनके सिद्धांतों में, इनकी मान्यताओं में कोई भी बात आपस में मैच नहीं करतीं। किंतु एक बात ऐसी है, जिससे चारों धर्म सहमत हैं। अब मैं उसी बात की तरफ इशारा करना चाहूँगा।

अगर तुम उपनिषद् के ऋषियों से पूछो कि तुम जिसे ईश्वर कहते हो, उसका

अनुभव कैसा होता है? क्या होता है? तब विस्तार में जाने से पता चलता है कि वे ईश्वर को कहते हैं–'स्वर'। भीतर का वह स्वर ही ईश्वर है। भीतर ओऽम् जैसी एक ध्वनि गूंज रही है। 'ओऽम् इति ब्रह्म' वही है। ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप परमात्मा यानि 'ओंकार' ही है। महावीर से पूछो कि आप ईश्वर को नकारते हो और आत्मा की बात करते हो, तो ये बताइये कि आत्मा क्या होती है? कैसी होती है? जब उसका अनुभव होता है, तो कैसा महसूस होता है? मज़े की बात है कि महावीर भी कहते हैं कि आत्मा 'अपूर्व श्रूत' है। उनकी शब्दावली अलग है। वे संस्कृत भाषा नहीं बोलते थे। वे प्राकृत भाषा बोलते थे। 'अपूर्व श्रूत' का अर्थ है, एक ऐसा संगीत जिसे पहले नहीं सुना। वह संगीत ही तुम्हारी आत्मा है। महावीर ने उसी ओऽम् की ध्वनि की तरफ इशारा किया है। चलो बुद्ध से पूछो कि आप आत्मा और परमात्मा दोनों को नकारते हो, तो आप जिस शून्यता की बात करते हो, उस शून्यता में क्या होगा? बुद्ध कहते हैं कि उस शून्य गगन में, आकाश जैसे महाशून्य में एक ध्वनि गूंज रही है–वह ध्वनि 'ओऽम् की गुंजार' जैसी सुनाई देगी। वह शून्य वास्तव में शून्य नहीं है। वह ध्वनि–लहरी से भरा हुआ है।

गुरुनानकदेव से पूछो कि क्यों आप गुरु–शिष्य संबंध को इतना महत्त्व दे रहे हो? क्यों उसी को धर्म का आधार बता रहे हो? गुरु क्या सिखाता है? शिष्य क्या सीखता है? मुख्य बात क्या है? तब गुरुनानकदेव जी कहेंगे– 'एक ओंकार सत्नाम'। वह बात ओंकार की ध्वनि है। वही सतनाम है। शेष सब झूठ, काल्पनिक और स्वप्नवत् है। गुरु वही सतनाम सिखाता है। जो ओऽम् का राज़ सिखाए वह 'सद्गुरु' और जो सीखने को राज़ी है वह 'सद्शिष्य'। बड़े मज़े की बात है कि चारों धर्म जो एक दूसरे से इतने विपरीत नज़र आ रहे थे और बिल्कुल भिन्न–भिन्न दिखाई दे रहे थे, जब उनकी मुख्य बात पर हमने ग़ौर किया तो पाया कि वे सब एक ही बात कह रहे हैं। वही बात जो यमराज ने नचिकेता से संक्षेप में, एक अक्षर में कही थी। वह बात है– 'ओऽम्'।

ये तो हुए भारत के चार बड़े धर्म। जो धर्म भारत के बाहर पैदा हुए, आओ उन पर भी थोड़ा दृष्टिपात करें। विशेषकर यहूदी धर्म, जिसकी दो उपशाखाएं निकलीं–इस्लाम और इसलाईयत। चीन में ताओवाद और जापान में शिंटो व झेन रिलिजन। इन सब का ज़ोर भी भीतर की उस ओऽम् की ध्वनि पर ही है। बाइबिल कहती है कि सर्वप्रथम ईश्वर था। ईश्वर 'शब्द' के साथ था, वह 'शब्द' ही ईश्वर था। और जो कुछ भी उत्पन्न हुआ, उस 'शब्द' से ही उत्पन्न हुआ है। वे उस ध्वनि को 'शब्द' कह रहे हैं। केवल उनके कहने का अंदाज़ अलग है। पुरानी बाइबिल में उसे 'लोगोस' कहा गया है। इसका अर्थ वही है। जैसे संस्कृत में ओऽम् को 'प्रणव' कहा गया है। प्रणव यानि ध्वनि–'द साऊंड'। भारत में ब्राह्मणों का वर्ग भाषा और व्याकरण में बड़ा कुशल था। उन्होंने प्रॉपर, स्पैसिफ़िक नामकरण किया–'ओऽम्' को उन्होंने ध्वनि कहा, स्वर कहा। दूसरी

ओर जहाँ यहूदी धर्म पैदा हुआ, वहाँ कोई सभ्य सुसंस्कृत जाति के लोग नहीं थे। वहाँ बड़े जंगली क़िस्म के बर्बर लोग थे। हज़रत मूसा के ज़माने में, भाषा और व्याकरण पर उनका उतना ज़ोर नहीं था इसलिए उन्होंने उसे 'शब्द' कहा। 'शब्द' कहने में थोड़ी–सी भूल हो जाती है। 'शब्द' ऐसे ध्वनि–समूह को कहा जाता है जिसका कोई मीनिंग हो, कोई अर्थ हो। जब हम कहते हैं पानी, तो पानी एक शब्द है। 'पा' एक ध्वनि है और 'नी' भी एक ध्वनि है। इनका अपने आपमें कोई मीनिंग नहीं है। लेकिन जब हम कहते हैं पानी, तो दो ध्वनियों को जोड़ कर हमने उसमें स्पैसिफ़िक मीनिंग डाला है कि हम इस चीज़ को पानी कहते हैं। जब भी हम शब्द कहते हैं, तो उसका कोई न कोई अर्थ अवश्य होता है।

सभी शब्द सार्थक हैं, लेकिन ध्वनि में कोई अर्थ नहीं, केवल स्वर है। भारत के मनीषियों ने उसे 'स्वर' कहा और पश्चिम के ऋषियों ने उसे 'शब्द' कहा। दोनों के कहने का अंदाज़ अलग–अलग है लेकिन इशारा एक ही चीज़ की तरफ़ है। हज़रत मूसा कह रहे हैं–'शब्द', वह उतना उचित नहीं है। भीतर जो ध्वनि गूंज रही है, वह कोई शब्द नहीं है। उसका कोई अर्थ नहीं है। इट इज़ सिग्निफ़िकंट, बट इट इज़ मीनिंगलैस। वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और सार्थक स्वर है, किंतु शब्द की दृष्टि से उसका कोई भाषागत अर्थ नहीं है। यहूदी धर्म में उसे 'लोगोस' कहा गया। बाइबिल में उसे 'वर्ड' कहा गया।

जो परमात्मा की परिभाषा करते हैं, वे ये तीन शब्द कहते हैं–'ऑम्निप्रैज़ंट', 'ऑम्निपटंट' और 'ऑम्निशंट'। 'ऑम्निप्रैज़ंट' अर्थात् 'सर्वव्यापी', ओऽम् की तरह सर्वत्र व्याप्त। 'ऑम्निपटंट' अर्थात् 'ओऽम् की भांति सर्वशक्तिमान' और 'ऑम्निशंट' अर्थात् 'ओऽम् की तरह सर्वज्ञ', सब कुछ जानने वाला, सब का द्रष्टा, सब का साक्षी। परमात्मा के जो तीन लक्षण हैं, उन सब में ओऽम् आता है। लेकिन ऑम्नि के रूप में भाषा–भाषा में फ़र्क़ पड़ जाता है। भीतर ध्यान में जो ध्वनि सुनी जाती है, वह ठीक–ठीक ओऽम् जैसी नहीं है। पर हाँ, मिलती–जुलती है और ध्वनि के साथ एक ख़ूबी भी है कि अगर हमारे मन में कोई धारणा है, तो पहले से वह ध्वनि हमें वैसी ही सुनाई देनी लगेगी। समझो कि कोई मित्र ट्रेन में यात्रा कर रहे हैं और हम उनसे पूछें कि ट्रेन के चाक की आवाज़ कैसी है? कोई कह सकता है कि छक–छक, छक–छक, छक–छक सुनाई दे रही है। वह ठीक कह रहा है। वह ध्वनि लगभग ऐसी ही है।

एग्ज़ैक्टलि ठीक तो नहीं है, लेकिन ठीक है, काम–चलाऊ। अगर आप किसी और से पूछें, तो वह कह सकता है कि मुझे तो ऐसा लगता है कि भग–भग, भग–भग, भग–भग की आवाज़ हो रही है, तो वह भी ठीक कह रहा है। वह भी ग़लत नहीं है। कोई राम का भक्त हो और वह कहे कि मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे ट्रेन के पहिए राम–राम, राम–राम, राम–राम उच्चारण कर रहे हैं, तो वह भी ठीक ही कह रहा है।

इसमें भी कुछ ग़लत नहीं है, हम ऐसा भी सुन सकते हैं। ध्वनि के साथ एक मज़ा है। हम उस पर अपना कुछ भी प्रक्षेपण प्रोजैक्ट कर सकते हैं। फिर वह हमें वैसी ही लगेगी।

मैंने सुना है– मुल्ला नसरुद्दीन और उसके मित्र सेठ चंदूलाल सुबह–सुबह मोर्निंग–वॉक पर थे। वे एक ख़ूबसूरत बगीचे के पास से गुज़र रहे थे और भोर के समय वहाँ कोई पंछी बैठा आवाज़ कर रहा था। वह पंछी तीन बार आवाज़ निकाल रहा था। उसकी आवाज़ टी टी टी, टी टी टी कुछ ऐसी रही होगी। सेठ चंदूलाल ने कहा–'अरे! लगता है बड़ा धार्मिक पंछी है। कैसी अच्छी आवाज़ कर रहा है! ऐसा लगता है कि 'राम सिया दशरथ', 'राम सिया दशरथ', 'राम सिया दशरथ' कह रहा है। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि तुम्हारा हिंदू दिमाग़ है, तुम कट्टरपंथी हिंदू हो। पक्षी की आवाज़ में भी तुम्हें अपने देवी– देवताओं के नाम सुनाई दे रहे हैं। तो चंदूलाल ने कहा कि अच्छा! तुम बताओ कि तुम्हें क्या सुनाई दे रहा है? नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे तो स्पष्ट सुनाई दे रहा है कि ये पक्षी आवाज़ दे रहा है–'अल्लाह खुदा बरकत', 'अल्लाह खुदा बरकत', 'अल्लाह खुदा बरकत'।

चंदूलाल ने कहा कि तुम भी तो कट्टरपंथी मुसलमान हो। इसी बात पर दोनों में विवाद हो गया कि क्या करें? ध्वनि के साथ मज़ा है कि हम जैसे चाहें, यह वैसे ही सुनाई देती है और हम बिल्कुल कनविंस हो जाते हैं कि हम ठीक तो कह रहे हैं। फिर दूसरे की बात से राज़ी होना मुश्किल हो जाता है। उन्होंने कहा कैसे फ़ैसला करें कि पक्षी क्या कह रहा है? दोनों ने तय किया कि थोड़ी देर इंतज़ार करते हैं। जब कोई तीसरा व्यक्ति यहाँ से गुज़रेगा, तो उससे पूछेंगे। फिर वह जो कह देगा, वही मानना पड़ेगा। उन दोनों की हज़ार–हज़ार रुपये की शर्त लग गई। उन्होंने थोड़ी देर प्रतीक्षा की। थोड़ी देर बाद एक सब्ज़ी बेचने वाला अपना ठेला धकाते हुए वहाँ से निकला। उन्होंने उसे रोका और कहा कि भाई साहब! ज़रा इस पक्षी की आवाज़ ग़ौर से सुनिए। वह भी चौंका कि किसलिए सुना रहे हैं?

नसरुद्दीन ने कहा कि हम दोनों की एक हज़ार रुपये की शर्त लगी है। ये कह रहा है कि ये पंछी 'राम सिया दशरथ', 'राम सिया दशरथ' कह रहा है और मैं कह रहा हूँ कि ये पंछी 'अल्लाह खुदा बरकत', 'अल्लाह खुदा बरकत' कह रहा है। अब आप ही बताइए, आपको हम जज नियुक्त करते हैं। हम आपकी बात मानेंगे। उस सब्ज़ी बेचने वाले ने आँखें बंद कीं, ग़ौर से सुना और मुस्कुराने लगा। उसने कहा कि आप दोनों ही ग़लत कह रहे हैं। यह हज़ार रुपये मुझे दीजिए। यह पक्षी तो बिल्कुल स्पष्ट आवाज़ कर रहा है– 'आलू प्याज़ अदरक', 'आलू प्याज़ अदरक', 'आलू प्याज़ अदरक'। ध्वनि के साथ यह संभव है। हम लड़ सकते हैं, हार–जीत कर सकते हैं और हम बिल्कुल कनविंस हो जायेंगे कि मैं जो कह रहा हूँ, वही ठीक है और दूसरे ग़लत हैं।

भीतर की ध्वनि, जिसे हम ओऽम् कहते हैं; उसे किसी ने 'राम' कहा, किसी ने ओमीन कहा और किसी ने अमेन कहा। जैसे हिंदुओं के ग्रंथ ओ३म् शांति, शांति, शांति पर समाप्त होते हैं, वैसे ही ईसाईयों और मुसलमानों की आयतें ओमीन और अमेन पर समाप्त होतीं हैं। जैन और बौद्ध धर्म ओऽम् की ध्वनि को बहुत महत्त्व देते हैं। चीन में ताओवादियों का धर्म पैदा हुआ। चीन के प्रसिद्ध संत लाओत्से हुए, जिनका धर्म ग्रंथ है–**'दाओ द जिंङ्'**– जिसमें वर्णन आता है कि ध्यान की परम अवस्था में डूबकर महासंगीत सुना जाता है। और यह भी वर्णन है कि यह महासंगीत अत्यंत सूक्ष्म और बारीक है। बिल्कुल शांत होकर सुनो, तो हीं सुनाई देता है। मन में विचारों की ज़रा सी उथल–पुथल, और सुनने से चूक जाओगे। तो लाओत्से ने उसे नाम दिया महासंगीत–'द ग्रेट म्यूज़िक'। इट इज़ हर्ड ऑफ वेरी फेंटली। बड़ी बारीक और सूक्ष्म आवाज़ है।

जापान के दोनों धर्मों–**शिंटो रिलीजन और झेन बुद्धिज़्म** में मुख्य बिंदु ही ध्यान में भीतर डूबकर एक हाथ की ताली सुनना है। ये उनका शब्द है–एक हाथ की ताली। वे कहते हैं–'द साउंड ऑफ वन हैंड क्लैपिंग'। अब एक हाथ की तो कोई ताली होती नहीं। दुनिया में जितनी भी आवाजें हैं, वह किसी न किसी चीज़ की टक्कर से पैदा होतीं हैं। मैं बोल रहा हूँ तो होठ, होठ से टकरा रहे हैं; जीभ, तालु से टकरा रही है; वोकल कोर्ड से हवा टकरा रही है; तब कहीं जाकर कंठ में ध्वनि पैदा हो रही है। एक चीज़ से ध्वनि पैदा नहीं हो सकती।

झेन मास्टर अपने शिष्य से कहते हैं कि जाओ, चुप होओ, मौन होओ, ध्यान में डूबो और एक हाथ की ताली सुनो। यही तुम्हारे ध्यान का लक्ष्य है। भारत के मध्य युग के संतों ने एक हाथ की ताली का बड़ा प्यारा नाम रखा है। उसी का ट्रैंज़लेशन है–'अनाहत नाद'। 'आहत' यानि चोट, 'अनाहत' यानि बिना चोट का और 'नाद' यानि स्वर। तो 'अनाहत नाद' यानि 'बिना चोट की आवाज़' अर्थात् एक हाथ की ताली। तो जब झेन गुरु अपने शिष्य से कहता है कि जाकर एक हाथ की ताली सुनो,

बेचारा जंगल में जाता है, गुफ़ा में बैठता है, शांत होता है, मौन होता है, महीनों–महीनों आवाज़ सुनता है। फिर आकर वह गुरु को बताता है कि जब वृक्षों से हवा गुज़रती है, तो जो सरसराहट की आवाज़ उत्पन्न होती है, वही आवाज़ है ना एक हाथ की ताली? गुरु उसके सिर पर एक डंडा मारता है। कहता है कि नहीं, यहाँ दो हो गए। एक हवा और दूसरे पत्ते। वे दोनों आपस में टकरा रहे थे। यहाँ तो दो हाथ हो गए। जाओ, और अधिक गहराई से सुनो। वह जंगल में नदी के किनारे पहुँच जाता है और आवाज़ सुनने के लिए बैठ जाता है। फिर एक दिन आ कर अपने गुरु से कहता है कि मैंने नदी की कल–कल ध्वनि सुनी। वही आवाज़ है ना एक हाथ की ताली! फिर उसके

सिर पर एक डंडा पड़ता है। गुरु कहता है कि नहीं, यह ध्वनि तो चट्टानों और पानी की टकराहट से उत्पन्न हो रही है। जाओ, बिना टकराहट वाली आवाज़ सुनो। वह शिष्य कभी कुछ, कभी कुछ उत्तर ले लेकर आता है लेकिन बार–बार लौटा दिया जाता है कि नहीं, अभी बात बनी नहीं।

फिर एक दिन ऐसा आता है कि शांत होते–होते उसे अपने भीतर एक गूँज सुनाई पड़नी शुरू होती है। और तब उसके चेहरे की प्रसन्नता ही बता देती है कि उसने वह पा लिया है, जो पाने योग्य है। जब वह गुरु के पास आता है, तो इससे पहले कि वह कुछ बोले, गुरु कहता है कि अब ठीक है, तुम्हारी आँखों से ही पता चल रहा है। मेरा आशीर्वाद है। जाओ, अब इसमें डूबो। यही है वह–एक हाथ की ताली।

हज़ार साल से भी ज़्यादा हो गए। पूरा झेन–धर्म और जापान की सारी आध्यात्मिकता इसी एक बिंदु के आसपास घूमती है। भारत के मध्य युग के संतों ने उस एक हाथ की ताली को नाम दिया है–'अनाहद नाद'। बाद में सूफ़ियों ने अनाहत से और अपभ्रंश करके 'अनहद' बना लिया। इससे एक नई बात और आ गई। 'अनहद' यानि 'बिना हद का' जिसकी कोई सीमा नहीं, कोई ओर–छोर नहीं, अपरम्पार, अनहद। यह सारी शब्दावलियाँ भिन्न–भिन्न जातियों में, भिन्न–भिन्न देशों में, अलग–अलग बोलियों में बनी हैं। लेकिन इन सबका इशारा किस तरफ़ है?

इन सब का इशारा उस ब्रह्म की ओर है जिसे यमराज ने नचिकेता से एक अक्षर में कहा– 'ओऽम्'। यह अक्षर शब्द भी बड़ा अद्भुत है। हम सामान्यतः 'एल्फ़बैट्स' को अक्षर कहते हैं। जैसे–अ, व, स, द, क, ख, ग, घ। वास्तव में ये अक्षर नहीं है। अक्षर तो एक ही है। अक्षर का मतलब है जिसका क्षय न हो, जो अविनाशी हो, जो कभी नष्ट न हो, वह है अक्षर। भाषा के अन्य 'एल्फ़बैट्स' जो हम बोलते हैं, ये तो बोलते ही ख़तम हो जाते हैं। मैं एक सैकंड में कोई अक्षर बोल भी नहीं पाऊँगा और दो सैकंड में वह ख़तम हो जाएगा। उसकी शुरूआत भी है और समापन भी है। उसकी तो 'हद' हो गई। मैं बता सकता हूँ कि इतने बजकर इतने सैकंड पर मैंने बोला था और लाउडस्पीकर से अगर आधा किलोमीटर, एक किलोमीटर दूर तक आवाज़ भेजी जाए, तो हो सकता है कि तीन–चार सैकंड में आवाज़ वहाँ पहुँचे। पर अंततः वह आवाज़ ख़तम हो जाएगी। वह अक्षर सदा–सदा नहीं रह सकता। उसकी शुरूआत है, उसका समापन है, उसकी सीमा है, उसकी हद है।

'ओऽम्' न कभी शुरू होता है, न समाप्त होता है, इसलिए इसे 'अक्षर' कहा है। ओऽम्, अनादि और अनंत है। हम इसकी बाउंड्री नहीं खींच सकते। हम नहीं बता सकते कि यह कहाँ से कहाँ तक है? इसलिये ओऽम् को एल्फ़बैट्स से अलग चित्रात्मक रूप से पिक्टोरियल तरीक़े से लिखा गया है। ऐसे लिखने की क्या ज़रूरत थी? हम

ऐसा भी तो लिख सकते थे– अ, उ, म मिलाकर 'अ' में ओ की मात्रा और 'म' में हलंत् ओम्। अंग्रेज़ी में भी हम ए, यू, एम लिख सकते थे, लेकिन हमने नहीं लिखा। हमने उसके लिए एक अलग ही सिम्बल बनाया, जो हमारे बाक़ी के एल्फ़बैट्स से टोटली डिफ्रैंट है। ऐसा क्यों किया गया? ऐसा इसलिए किया गया ताकि यह स्पष्ट हो जाए कि वह ओऽम् रूपी अक्षर ऐसा नहीं है कि हमारी भाषा का हिंस्सा बन सके। यह हमारे द्वारा निर्मित शब्द नहीं है। इट इज़ नॉट द पार्ट आफ़ आवर लैंगवेज।

बाक़ी सारी भाषाएं हमारे मन में समाप्त हो जाती है, अंत हो जाती हैं, कोई शब्द नहीं बचता। हर भाषा के शब्द समाप्त होने के बाद भी जो शब्द गूंज़ता रहता है, वह है ओऽम्, वह है 'अनाहद नाद'। इसलिए भाषा से भिन्न उसका प्रतीक बनाया गया। यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात है। जब हमारे मन के सारे विचार रुक जाएंगे, जब हम निर्विचार जागरूकता में स्थित होंगे, ध्यान के उन क्षणों में वह मौन संगीत सुनाई पड़ेगा।

सद्‌गुरू ओशो ने अपनी एक किताब का नाम रखा है 'मौन संगीत'। अंग्रेज़ी में उसका ट्रैंज़लेशन है–'द साईलैंट म्यूज़िक'। यह उसी तरफ़ इशारा है। सन् 1981 में जब ओशो ने मौन धारण किया तो उनकी जो अंतिम किताब छपी, उन्होंने उस किताब का शीर्षक रखा– 'द साउंड ऑफ वन हैंड क्लैपिंग'। यही वह आख़िरी शब्द है जिसके बाद परम मौन में प्रवेश हो गया, निःशब्द हो गए, समाप्त हो गए, अब असली बात हुई। तो प्यारे **मित्रो!** यह तो हुई धरती पर उत्पन्न हुए लगभग सभी धर्मों की सार संक्षिप्त बात। इससे आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, स्वर्ग, नरक इत्यादि से भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात क्या है? अध्यात्म का रहस्य क्या है? वह है एक अक्षर–'ओऽम्'। सारी साधनाओं का लक्ष्य 'अनाहत नाद' को सुनना ही है।

अब मैं दूसरी तरफ़ आता हूँ। मैंने शुरूआत में आपसे कहा था कि मनुष्य के साथ मन आया। मन के साथ ज्ञान की खोज शुरू हुई, फिलॉसफीज़ पैदा हुईं, चिंतन–मनन पैदा हुआ और इस चिंतन–मनन ने दो दिशाएं पकड़ीं। जो लोग अंतर्मुखी हो गए, उन्होंने अपने भीतर सत्य की तलाश की और दूसरे वे जो बहिर्मुखी हो गए, उन्होंने संसार में, पदार्थ में सत्य की खोज की। इससे विज्ञान पैदा हुआ। धीरे–धीरे विकसित होते–होते बीसवीं सदी के शुरूआत में विज्ञान एक नए नतीजे पर पहुँचा कि हम जिसे पदार्थ कहते हैं, वह वास्तव में ऊर्जा का ही संघनित रूप है। मैटर इज नथिंग बट कंडैंस्ट एनर्जी।

इसके पहले तक ये दो चीज़ें बिल्कुल अलग–अलग थीं। मैटिरियलिस्टिक और स्पिरिचुअलिस्टिक लोग, आत्मवादी और पदार्थवादी, संसारी और संन्यासी, भौतिक वादी और परमात्मावादी लोग। यह दो बिल्कुल अलग–अलग बातें थीं। बीसवीं सदी की शुरूआत में विज्ञान अणु, परमाणु और सब–एटॉमिक पार्टिकल्स की खोज

करते–करते उस जगह पहुँच गया, जहाँ जाकर पता चला कि वे पार्टिकल्स हैं ही नहीं। यह तो तीव्र गति से घूमती हुई ऊर्जा है, शक्ति है। वैज्ञानिकों ने एक नया शब्द गढ़ा–'क्वॉन्टम'। ये बताने के लिए कि वे पार्टिकल्स वास्तव में पार्टिकल्स नहीं हैं, बल्कि बड़ी तीव्र गति से घूमती हुई ऊर्जा है। बस उससे ही ठोस पदार्थ का भ्रम पैदा होता है। वास्तव में वह ठोसपन कहीं भी नहीं है। वैज्ञानिक, जो अपने आपको पदार्थवादी और 'मैटिरियलिस्टिक' कहा करते थे; उन्हीं की खोजों ने सिद्ध कर दिया कि पदार्थ जैसी कोई चीज़ है ही नहीं। यदि कुछ है, तो केवल अत्यंत तीव्र गति से घूमती हुई विद्युत ऊर्जा है। बस फिर क्या था! बीसवीं सदी के आरंभ से लेकर अब तक स्टैप बाई स्टैप भौतिक शास्त्र बहुत आगे निकल गया।

खोजबीन से सिद्ध हुआ कि हम जिसे ऊर्जा कह रहे थे, वे भाँति–भाँति की तरंगें हैं। उन सबका बेसिक बिल्डिंग ब्लॉक, कई प्रकार की ऊर्जाएँ हैं। जैसे हम पूछें कि भवन किस चीज़ से बना है? तो हम कह सकते हैं कि बुनियादी रूप से ईंट से बना है। ईंट इसकी बेसिक बिल्डिंग ब्लॉक है, जिसे जोड़–जोड़ कर बड़ी इमारत खड़ी हो गई।

दुनिया में लाखों–करोड़ों प्रकार की इमारतें बन गईं और कई अरबों प्रकार की बन सकती हैं। लेकिन बुनियादी तत्त्व क्या है? वह है ईंट। ठीक ऐसे ही, पहले वैज्ञानिकों ने तत्त्व यानि एलिमैंट्स खोजे। उनकी खोजबीन करते–करते वे परमाणु पर पहुँचे। फिर इलैक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन पर पहुँचे। फिर ऊर्जा के विभिन्न रूपों का पता चला और अंततः इस बात पर पहुँचे कि सभी ऊर्जाओं में एक चीज़ कॉमन है। वह है–उनका तरंग जैसा, लहर जैसा होना। दे आर जस्ट लाईक वेव्स अप एन डाउन। जैसे पानी में लहरें उठती हैं ना, वैसे ही यह ऊर्जा की तरंगें हैं।

ऊर्जा की ये तरंगें भिन्न–भिन्न रूप ले सकती हैं। एक ख़ास तरह की ऊर्जा की तरंग प्रकाश कहलाती है। एक अन्य प्रकार की ऊर्जा की तरंग कैथोड किरण बन जाती है। एक ख़ास तरह की ऊर्जा की तरंग एक्स–रे बन जाती है, कि गामा रेज़ बन जाती है, कि कॉस्मिक वेव्स बन जाती है। सब वेव्स हैं, तरंग हैं, बस और कुछ भी नहीं। पहले पदार्थ ग़ायब हुआ, फिर ऊर्जा के विविध रूप ग़ायब हुए और बेसिक बिल्डिंग ब्लॉक मिला। वह बेसिक बिल्डिंग ब्लॉक है– लहर, तरंग।

अभी तीन चार साल पहले वैज्ञानिकों ने और एक अद्‌भुत इंस्ट्रूमैंट बनाया, जिसके माध्यम से उन्होंने अंतरिक्ष में रिकॉर्डिंग की। जो लोग विज्ञान में उत्सुक हैं, उन्होंने शायद इंटरनैट पर पढ़ा या सुना होगा। यदि नहीं, तो अवश्य देखिएगा। वैज्ञानिकों की यह खोज बहुत अद्भुत है। समझा जाता था कि अंतरिक्ष में जहाँ शून्य है, वहाँ हवा नहीं है। वहाँ वैक्यूम है। वहाँ किसी प्रकार की आवाज़ नहीं होगी क्योंकि आवाज़ होने के लिये कम से कम हवा तो चाहिए ही चाहिए। नहीं तो तरंग उठेगी

किसमें? मैं बोल रहा हूँ और आप तक आवाज़ जा रही है। अगर बीच में हवा न हो, वैक्यूम हो, तो मेरी आवाज़ आप तक नहीं पहुँच पाएगी। तरंगों को चलने के लिए एक मीडियम चाहिए। आधुनिक भौतिक शास्त्र की खोजें बताती है कि अंतरिक्ष में जहाँ कोई भी मीडियम नहीं है, ईथर भी नहीं है, वहाँ आवाज़ नहीं हो सकती।

पहले वैज्ञानिकों ने कल्पना की थी कि शायद ईथर होगा, फिर वह हाईपोथिसिस ग़लत साबित हुई। कहीं कोई ईथर नहीं है। लेकिन वहाँ पर तरंगें मौजूद हैं और अब जो नए इंस्ट्रूमैंट बने हैं, उनके द्वारा उन तरंगों को रिकॉर्ड किया गया है। मज़े की बात यह है कि वहाँ एक गुंजार जैसी ध्वनि सुनाई देती है। इंटरनैट पर वह आवाज़ें उपलब्ध हैं। विभिन्न ग्रहों के पास, अलग-अलग तारों नक्षत्रों के पास, उपग्रहों के पास थोड़ी सी भिन्न-भिन्न आवाज़ है। बिल्कुल एक जैसी ध्वनि नहीं है, थोड़ी सी डिफ्रैंट है। पहचान सकते हैं कि ये बृहस्पति ग्रह की ध्वनि है कि पृथ्वी के आसपास अंतरिक्ष में गूंज रही ध्वनि है। वैज्ञानिक बहुत हैरान हुए कि हम जिसे शून्य समझते थे, ख़ाली आकाश, जहाँ कुछ भी नहीं, वहाँ भी वाईब्रेशन्स मौजूद हैं।

गौतब बुद्ध ने अपने भीतर ध्यान में डूबकर जिस शून्य के संगीत को पहचाना था, अब वैज्ञानिकों ने आधुनिक उपकरणों द्वारा उसी चीज़ को बाहर के अंतरिक्ष में भी खोज लिया है और पाया गया है कि यही है वह बेसिक एलिमैंट, जिससे सब प्रकार की ऊर्जाएँ और एनर्जी वेव्स बनती हैं। आज से ढाई हज़ार साल पहले विज्ञान की यात्रा शुरू हुई थी। धीरे-धीरे आज बाहर के जगत में भी वैज्ञानिकों ने वही सत्य खोज लिया है; जो ध्यानियों और ऋषि-मुनियों ने अपने भीतर खोजा था। अब बात बिल्कुल आपस में मैच हो गई है। बड़े आश्चर्य की बात है और एक प्रकार से आश्चर्य की नहीं भी है क्योंकि सत्य तो एक ही होगा ना! चाहे हम किसी भी विधि से खोजें, कहीं भी खोजें, हम किसी भी भाषा के लोग हों। चाहे चीन में खोजें, चाहे जापान में, चाहे हिंदुस्तान में, चाहे अरब के देशों में। ध्यान में डूब कर कोई कहीं भी खोजेगा, तो अंततः वह एक ही सत्य को पाएगा।

अब तो दूसरी बात भी प्रमाणित हो गई है कि बाहर के जगत में, पदार्थ की दुनिया में भी कोई खोजेगा, तो भी उसी अल्टीमट ट्रूथ तक ही पहुँचेगा। परमसत्य तो एक ही होगा। चाहे भीतर खोजो, चाहे बाहर; उसमें भेद नहीं हो सकता। हाँ, हमारे एक्सप्रेशन के ढंग अलग-अलग हो सकते हैं। हमारी अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न हो सकती है। ब्रह्म, जिसे परमसत्य कहा जाता है- 'द अल्टीमट ट्रूथ', उसे चाहे अपने भीतर डुबकी लगा कर ध्यान की तरफ से खोजो, चाहे वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से खोजो; वह ध्वनि स्वरूप मिलता है। अंततः अध्यात्म और विज्ञान दोनों ही उसी छोर पर पहुँच जाते हैं कि एक प्रकार की ध्वनि है, जिससे सब कुछ निर्मित हुआ है।

ये तो फिर वहीं बात हो गई, जो बाइबिल में लिखी है कि 'ईश्वर' शब्द था और 'शब्द' से ही सबकुछ उत्पन्न हुआ है। केवल कहने का अंदाज़ अलग-अलग है। बात वहीं की वहीं हो गई। एक और वैज्ञानिक खोज के बारे में आपको संक्षेप में बताना चाहूँगा। विस्तार में नहीं जाऊँगा क्योंकि बहुत लोगों को विज्ञान में इंट्रैस्ट नहीं होता। उनके लिए यह बात बोरिंग और उबाऊ हो जाएगी।

एक और नया तथ्य सामने आया है कि हम जिसे पदार्थ कहते थे, एक मृत वस्तु समझते थे, वह मृत वस्तु नहीं है। उसमें चेतना का गुण है, उसमें कांशसनैस है। यही तो सारी दुनिया के धार्मिक लोग कह रहे थे कि ब्रह्म जो है, वह चैतन्य स्वरूप है। 'इट इज़ सुपर कांशसनैस'। अब तो वैज्ञानिक भी कहने लगे हैं कि हम जिसे मृत वस्तु समझते थे, वह मृत वस्तु नहीं है। उसका सूक्ष्म निरीक्षण करने के उपाय बन गए हैं। ख़ास कर 1930 के बाद, जहाँ से क्वॉन्टम-फ़िज़िक्स की शुरूआत हुई और क्लासिकल फ़िज़िक्स बिल्कुल ग़लत साबित हो गई।

पिछले ढाई हज़ार साल में क्लासिकल फ़िज़िक्स ने जो कुछ भी खोजा था, वह सब एक प्रकार से ग़लत साबित हो गया। क्वॉन्टम-फ़िज़िक्स की बात सुनने में बड़ी विचित्र लगती है लेकिन सब भाँति के प्रयोगों से वही सत्य साबित होती है। क्वॉन्टम-फ़िज़िक्स का कहना है कि जो एनर्जी पार्टिकल्स हैं, जिन्हें हम 'क्वॉन्टा' कहते हैं; इन्हें पार्टिकल्स नहीं कहना चाहिए। यदि हम उनका निरीक्षण करते हैं तो वे अलग ढंग से व्यवहार करते हैं और अगर निरीक्षण न करें तो वे अलग ढंग से व्यवहार करते हैं। आपने शायद उस प्रसिद्ध प्रयोग के बारे में सुना होगा जिसमें एक ट्यूब रहती है और वह ट्यूब आगे जाकर यू शेप में, दो में डिवाईड हो जाती है। उसमें दो बॉक्स लगे हुए हैं। अगर इस ट्यूब से कोई चीज़ भेजी जाएगी, तो या तो इस तरफ़ के बॉक्स में जाएगी या उस तरफ़ में जाएगी। फिर उन बॉक्स के सामने से निकल कर एक डिटैक्टिव स्क्रीन पर जाती है, जहाँ नोट किया जा सकता है कि वह चीज़ कहाँ से निकल कर आई है? वहाँ रिकॉर्ड हो रहा है और बॉक्स के ऊपर वह ढक्कन है जहाँ से निकाल कर आप आब्ज़र्वेशन कर सकते हैं।

क्वॉन्टम-फ़िज़िक्स के इस प्रसिद्ध प्रयोग में ट्यूब में एक सब-एटॉमिक पार्टिकल को भेजा जाता है। हमारा साधारण तर्क कहता है कि या तो वह पार्टिकल इस साईड वाले बॉक्स में गया होगा, या उस साईड के बॉक्स में गया होगा। एक ही पार्टिकल है, तो एक ही जगह जा सकता है। ऊपर का ढक्कन खोलकर अगर हमने उसे चैक किया, तो हम ऐसा ही पाते हैं। अगर इस बॉक्स में मिल गया, तो फिर दूसरे बॉक्स में नहीं मिलेगा। और अगर इसमें नहीं मिला तो कन्फ़र्म है कि दूसरे बॉक्स में है। दूसरे बॉक्स को खोलकर हम कन्फ़र्म कर सकते हैं कि हाँ, इसमें है। यहाँ तक हमारा साधारण

तार्किक मन जो कहता है, वैसा ही है।

अब मज़ेदार बात इसके आगे आती है। मज़ेदार बात यह है कि यदि हमने उसे ऑब्ज़र्व नहीं किया, ढक्कन खोलकर नहीं देखा और डिब्बे के सामने का दरवाज़ा खोल कर छोड़ दिया कि वह खुद ही अपने आप निकल कर स्क्रीन तक जाए और स्क्रीन रिकॉर्ड करे, डिटैक्ट करे, तब बहुत अद्भुत घटना घटती है। तब दोनों ही बॉक्सों में से दो तरंगें निकलती हैं और डिटैक्टिव स्क्रीन बताती है कि दो लहरें आईं, कण कहीं से भी नहीं आया। अगर हम खोल कर देखते तो किसी एक बॉक्स में कण था और दूसरे में नहीं था। अगर हमने नहीं देखा तो दोनों बॉक्सों में तरंग है, कण कहीं भी नहीं है। हमारे देखने से उसका व्यवहार बदल गया। हम नहीं देखेंगे, तो डिफ्रैन्ट ढंग से बिहेव करते हैं और देखेंगे तो अलग ढंग से बिहेव करता है। यह तो ऐसे हुआ कि हमने उस ट्यूब में बिल्ली भेजी थी और अगर हमने डिब्बा खोलकर देखा तो किसी एक डिब्बे में बिल्ली दिखाई दी और दूसरे में नहीं मिली। बिल्कुल ठीक जैसा हम सोच रहे थे, वैसा ही हुआ। लेकिन अगर हमने नहीं देखा कि बिल्ली किस डिब्बे में है और उसे अपने आप बाहर निकलने के लिए छोड़ दिया, तब दोनों डिब्बों से एक-एक कुत्ता निकला।

....यहाँ हमारा दिमाग़ काम नहीं करता कि ये कैसे हो गया? अगर देखेंगे तो किसी एक डिब्बे में बिल्ली है और नहीं देखेंगे तो दोनों में कुत्ता है। ये कैसे हो सकता है? क्या हमारे देखने न देखने से वह कुत्ता, बिल्ली बन जाएगा और बिल्ली, कुत्ते जैसी हो जाएगी? क्या वे दोनों आपस में चेंज हो जाऐंगे? अगर वे फ़िज़िकल पार्टिकल्स इस प्रकार चेंज हो जाते हैं, तो इसका मतलब ये हुआ कि उनमें चेतना है। वे इस बात को ग़ौर से ऑब्ज़र्व कर रहे हैं कि कोई आब्ज़र्व कर रहा है, या नहीं कर रहा है।

इसको ऐसे उदाहरण से समझो कि आप सुबह-सुबह मोर्निंग वॉक को निकले। सुनसान सड़क है, आप अपनी मस्ती में, मौज से गीत गुनगुनाते हुए, अपनी मस्तानी चाल में चले जा रहे हैं क्योंकि कोई है ही नहीं, आप अकेले ही हैं। रास्ता भी सुनसान है। तभी आपने अचानक देखा कि गली से एक आदमी आपकी तरफ़ आ रहा है, तो आप तुरंत बदल जाएंगे। न आप उस व्यक्ति को जानते हैं, न वो आपको जानता है। दोनों का आपस में कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन इसके एक सैकंड पहले तक; जो आपकी चाल थी, जो आपका गीत था, जो आपकी मस्ती थी; जैसे ही आपको पता चला कि कोई आपको देख रहा है, तो अचानक आप चेंज हो जाएंगे।

इससे यह सिद्ध होता है कि आपके भीतर भी चेतना है। यू आर अवेयर। आप कोई मृत वस्तु नहीं है। आप कोई मशीन नहीं है। मृत और जीवित में क्या फ़र्क़ है? 'मृत' हम उसे कहते हैं कि जो जैसा था, वैसा ही रहेगा। क्या उसे कोई फ़र्क़ पड़ता है? हम इस कमरे में इस कुर्सी को छोड़कर सब बाहर चले गए। जब हम लौट के आएंगे, तो

कुर्सी, कुर्सी रहेगी और जहाँ छोड़ी थी, वहीं की वहीं मिलेगी। ऐसा थोड़ी कि हम चले गए तो कुर्सी अचानक टेबल बन गई और फिर लौट कर आए, तो फट से फिर कुर्सी बन गई। ऐसा थोड़ी हो सकता है। यही तो ये परिभाषा थी कि ये मृत है। जीवित हम उसे कह रहे थे जो बदल जाएगा, जो वहीं का वहीं नहीं रहेगा। उसकी मौज है, उसकी मर्ज़ी है।

अगर हम एक छोटे बच्चे को यहाँ कमरे में छोड़कर बाहर चले गए, तो जैसा उसे बैठा कर गए थे, हम पक्का नहीं कह सकते कि पाँच मिनट बाद लौटेंगे, तो वह बच्चा वैसे ही मिलेगा, वहीं उसी पोज़ीशन में बैठा मिलेगा। बच्चा है, उसकी मौज है। हो सकता है वैसे ही बैठा रहे। हो सकता है न बैठा हो, खड़ा हो। किसी दूसरे कोने में हो, किसी कुर्सी पर चढ़ गया हो या कोई सामान तोड़ रहा हो। यह अनप्रिडिक्टबल है। जीवन का मतलब है अनप्रिडिक्टबल। जैसे हम बच्चे को देखें कि वह कोई चीज़ तोड़ रहा है।

अगर उसे पता नहीं है कि कोई उसे देख रहा है, तो उसका बिहेवियर अलग होगा लेकिन जैसे ही उसे पता चला कि दरवाज़ा खुला है और कोई उसे देख रहा है, तो वह भी चेंज हो जाएगा। उसने बल्ब को तोड़ भी दिया होगा, तो भी वह कहेगा कि मैंने नहीं तोड़ा। यही तो जीवन का लक्षण है। उसका अपना स्वतंत्र निर्णय है। वह कैसा व्यवहार करेगा, हम नहीं जानते। वैज्ञानिकों ने जब पदार्थ के बारे में खोजा, तो एक विचित्र बात हो गई कि पदार्थ अब मृत वस्तु नहीं रहा। इट इज़ नॉट अ डैड पार्टिकल, उसमें चेतना का गुण है।

फिर मुल्ला नसरुद्दीन की एक कहानी याद आ गई, जिसे सुनने के बाद आपको मेरी बात बड़ी आसानी से समझ में आएगी। नसरुद्दीन एक नए गाँव में कहीं गया था। वह किसी को जानता-पहचानता नहीं था। उसे भूख लगी, तो एक हलवाई की दुकान पर गया। वहाँ से उसने कुछ मिठाई ली, नमकीन ली और खा ली। उसने हलवाई को सौ रुपए का नोट दिया। हलवाई ने उसे साठ रुपए लौटाने थे। हलवाई ने कहा कि मेरे पास छुट्टे पैसे नहीं हैं, तो आप बाक़ी पैसे फिर कभी ले जाना।

नसरुद्दीन ने सोचा-' ठीक है।' मुझे तो गाँव में दो-तीन दिन रुकना है, बाद में ले लूँगा। लेकिन मैं तो जानता ही नहीं कि कौन हलवाई है? क्या है? तो जान-पहचान के कुछ निशान बना लूँ। उसने आसपास देखा कि पहचान के लिए क्या करूँ? दुकान के सामने एक भैंस बैठी थी उसने सोचा कि यह ठीक है। जिस दुकान के सामने भैंस बैठी है, उससे मुझे साठ रुपए लेने हैं।

हम सब इस बात पर हँस रहे हैं कि एक जीवित चीज़ को निशान नहीं बनाया जा सकता। हाँ, तुम बिजली के खंभे की पहचान बनाते, पीपल के पेड़ की पहचान बनाते या कुछ और पहचान बनाते, तो बात समझ में आती। लेकिन भैंस! भैंस जिस दुकान

के सामने बैठी है, उससे मुझे साठ रुपए लेने हैं! दूसरे दिन नसरुद्दीन फिर निकला और अब वह खोज रहा था कि भैंस कहाँ है? आखिर खोजते–खोजते उसे भैंस मिल ही गई। भैंस बैठी थी एक नाई की दुकान के सामने। वह नाई बेचारा अपने सैलून में किसी के बाल काट रहा था।

नसरुद्दीन ने जा कर उसकी गर्दन पकड़ ली और कहा निकालो साठ रुपए! उसने कहा–'कौन–से साठ रुपए भाई? आप हो कौन? हम तो आपको जानते ही नहीं?' नसरुद्दीन ने कहा कि जानते तो आपको हम भी नहीं। लेकिन आपने तो हद ही कर दी। साठ रुपए के पीछे अपनी दुकान का रंग रोगन भी बदल लिया और अपनी ज़ात भी बदल ली। हलवाई से नाई बन गए। हम तो आपकी पहचान लगाकर गए थे। वह देखो भैंस बैठी है। वही पहचान है कि तुमने हमारे साठ रुपये लौटाने हैं।

हम सब जानते हैं कि हम भैंस के बारे में भविष्यवाणी नहीं कर सकते कि वह कहाँ बैठेगी? बैठेगी भी या नहीं बैठेगी। हो सकता है कि इस तरफ़ आए ही ना, उसकी मौज है। तात्पर्य यह हुआ कि भैंस में जीवन है, भैंस में चैतन्य है, वह कोई मृत वस्तु थोड़ी है। क्वॉन्टम–फ़िज़िक्स की खोज के पश्चात पिछले 70–80 सालों में वैज्ञानिक बड़े विचित्र निष्कर्षों पर पहुँचे हैं। परंतु कैसे व्यक्त करें? यह समझ में नहीं आता। वह बात गणित की भाषा में नहीं समाती। गणित में उसका फॉर्मूला फ़िट नहीं बैठता। फॉर्मूला बनाने के लिए कुछ फ़िक्स चीज़ें चाहिएं।

आपने सुना होगा कि वैज्ञानिकों ने एक नया नियम बनाया है जिसे कहते हैं–'द प्रिंसिपल ऑफ अनसर्टन्टी'। अनिश्चितता का नियम। बड़ी मज़ेदार बात है। यह तो चुटकुला हो गया क्योंकि नियम का मतलब ही होता है 'सुनिश्चित बात'। स्पष्ट रूप से कहो 2+2=4 तो नियम होता है कि 2 और 2 मिलकर हमेशा 4 ही होंगे, पक्का है, इसमें कोई हेर–फेर नहीं हो सकता। तब तो नियम बनेगा, फॉर्मूला बनेगा। लेकिन वैज्ञानिकों ने जो खोजा है, वह बड़ा अनसर्टन मामला है। अनिश्चित! उन्होंने अनिश्चितता का नियम बनाया है। अनिश्चितता का नियम, लेकिन क्या करें? जो तथ्य है, उसे कैसे झुठला सकते हैं? वह जो क्वॉन्टम है, वह अनिश्चित है, अनप्रिडिक्टबल है। वे अगले क्षण में क्या करेंगे, हम नहीं जानते।

एक नया सिद्धांत बना है, जिसे कहते हैं– 'द प्रिंसिपल ऑफ पोसिबिलिटी'– 'संभावना का नियम'– प्रॉबैबिलिटी! जैसे आजकल रेलवे स्टेशन पर अनाउंस करते हैं न कि फलाना–फलाना ट्रेन 20 मिनट लेट आने की संभावना है! पक्का नहीं बताते कहीं कल आप केस मुक़द्दमा कर दो। तो वैज्ञानिक भी अब संभावना की बातें करने लगे, पक्की बातें नहीं बताते। यह नहीं कहते कि दो और दो चार होते हैं। कहते हैं कि दो और दो चार हो सकते हैं। 99 प्रतिशत चांस है कि हो जाएंगे, लेकिन नहीं भी हो सकते,

अपवाद भी हो सकता है। इसका मतलब कि प्रकारांतर से वैज्ञानिकों ने स्वीकार कर लिया कि पदार्थ में भी चेतना है।

मैंने विज्ञान की दो मुख्य बातें आपसे कहीं। एक, चेतना का गुणधर्म–'द क्वॉलिटी ऑफ कॉन्शसनैस' और दूसरी बात; उसका लहर–स्वरूप होना, तरंग जैसा होना, ध्वनिमय होना। विशेषकर अंतरिक्ष में जबसे उसकी रिकॉर्डिंग हुई है, तब से पूरा दृष्टिकोण ही बदल गया है। अगर आप इस बारे में विस्तार से जानना चाहें, तो आप मुझे ई–मेल भेजिएगा। मैं वह लिंक भेज दूँगा। वैज्ञानिकों की नई–नई खोजों के बारे में वह रिकॉर्डिड ध्वनियां इंटरनैट पर उपलब्ध भी हैं। आप भी उन्हें सुन सकते हैं। मज़े की बात है कि इस सब पंचायत में पड़ने की ज़रूरत ही नहीं है। बड़ा आसान तरीक़ा है। अपने भीतर ध्यान में डूबो और सुन लो। लेकिन अगर आपको बाहर के विज्ञान के बारे में भी जानने का शौक है, तो आप उसे भी जान सकते हैं।

अब मैं अपनी बात, जो मैंने फैला कर कही है, उसे वापिस समेटता हूँ। मनुष्य ने चिंतन–मनन के द्वारा ज्ञान की खोज की। ज्ञान की खोज की मुख्य दो दिशाएं हुईं। एक अंतर्मुखी, आध्यात्मिक और दूसरी बहिर्मुखी, वैज्ञानिक। दोनों दिशाओं में जो फाईनल कन्कलूज़न निकला, वह वापिस घूम–फिरकर एक ही हो गया। और वह ये है कि यह सारा जगत चैतन्यमय है और ओंकार के संगीत से ओत–प्रोत है। संक्षेप में अगर कहें तो कह सकते हैं– 'इट इज़ अ लाईव म्यूज़िक'। इसी को ऋषियों ने 'ब्रह्म' कहा है। याद रखना! यही है 'परमसत्य'।

हिंदुओं का एक धर्मग्रंथ है 'विष्णु सहस्त्र नाम'। इसमें भगवान के एक हज़ार नाम हैं। उन नामों में एक नाम 'राम' भी है। तभी तो दशरथ ने अपने बेटे का नाम राम रखा था। पुराने ज़माने में टिंकू, पिंकी, चिंकी, ऐसे नाम नहीं रखते थे। पुराने ज़माने में जितने भी नाम रखते थे, सब भगवान के ही नाम रखते थे। मुसलमानों में भी ठीक ऐसा ही है। सूफ़ियों का एक ग्रंथ है, जिसमें अल्लाह के सौ नाम हैं। सारे मुसलमानों के नाम उन्हीं नामों में से रखे जाते हैं। उन्हीं के डिफ्रैंट–डिफ्रैंट कॉम्बिनेशन्स हैं। हिंदुओं के सारे नाम भी भगवान के नाम पर ही रखे जाते थे। इसमें एक इशारा भी छिपा था कि याद आती रहे कि मेरे भीतर भी वही है। और हम जिससे मिल रहे हैं, जिससे बात कर रहे हैं, उसके भीतर भी वही है। यहाँ उस प्रभु के अतिरिक्त और कोई है ही नहीं। सब रूपों में, सब आकारों में वही है। वह एक ही ब्रह्म है। सब उसी के नाम हैं।

दशरथ ने अपने बेटे का नाम राम रखा था। स्मरण रखना कि यह नाम बहुत पुराना था। राम से भी बहुत पुराना। राम के पहले एक अवतार हो चुके हैं, जिनका नाम था–परशुराम। वह हमेशा फर्सा लिए घूमते थे, तो फर्सा रखने से उनका नाम पड़ गया– 'फर्सा वाले राम' और शॉर्ट में 'परशुराम'। 'राम' शब्द बहुत प्राचीन है। यह

भीतर की उस ध्वनि की ओर संकेत करता है। जैसे ईसाई और मुसलमान उसको 'एमैन' और 'आमीन' कह रहे हैं और उपनिषद् के ऋषि 'ओऽम्' कह रहे हैं; वैसे ही उसे राम भी कहा जा सकता है।

भीतर की यह ध्वनि ऐसी है, जैसे मंदिर के गुंबद के नीचे बैठ कर कोई ज़ोर–ज़ोर से, बड़ी तेज़ स्पीड से उच्चार करे– राम, राम, राम, राम, राम, राम या ओऽम्, ओऽम्, ओऽम्, ओऽम्। इतनी तीव्रता से कहें कि एक 'रा' दूसरे 'रा' के ऊपर ओवरलैप कर जाए। 'ओ' धीरे–धीरे ग़ायब हो जाए और एक 'म' की ध्वनि ही गूँजती रह जाए। ऐसी है वह भीतर की ध्वनि, उसे राम भी कह सकते है, ओ३म् भी कह सकते हैं, उसे ब्रह्मनाद भी कह सकते हैं। हमारे सद्गुरु ओशो ने ध्यान की जो सैकड़ों विधियाँ बनाई हैं, उनमें से जो सर्वाधिक गहरी विधि है, उसका नाम उन्होंने रखा है– 'ब्रह्मनाद ध्यान'। यह विधि ओंकार के गुंजार से संबंधित है। इसी ओंकार में डूबना है। यह ओऽम् ही ब्रह्म है। तुम्हारी मर्ज़ी चाहे तुम इसे 'राम' कह लो, तुम्हारी मर्ज़ी 'अनाहद नाद' कह लो, कि 'अनहद' कह लो, कि 'साउंड ऑफ वन हैण्ड क्लैपिंग' कह लो, कि लाओत्से की भाषा में 'द ग्रेट म्यूज़िक' महासंगीत कह लो, कि 'लोगोस' कह लो, कि 'शब्द' कह लो, कि 'एक ओंकार सत्नाम' कहो या फिर 'अनहद' कहो।

सूफ़ी उसे कहते हैंः 'सदा–ए–आसमानी' अर्थात् आकाश की आवाज़। ये बड़ा सटीक शब्द है। वैज्ञानिक भी इसे बड़ी आसानी से स्वीकार कर लेंगे क्योंकि उन्होंने भी आकाश में ध्वनि खोज ली है। 'सदा–ए–आसमानी' अर्थात् आकाशीय स्वर, अंतरिक्ष का स्वर। जैसे एक विराट आकाश बाहर है, वैसे ही एक विराट आकाश हम सब के भीतर भी है। उस शून्यवत् आत्मा में हम दो चीज़ें पाते हैं, एक है– चैतन्य का गुण और दूसरा गुण है कि वहाँ संगीत गूँज रहा है। वह संगीत कोई मृत आवाज़ नहीं है, इट इज़ ए लाइव म्यूज़िक। और इक्कीसवीं सदी में आकर अध्यात्म और विज्ञान, जो अलग–अलग छोरों से शुरू हुए थे; अब एक ही निष्कर्ष पर पहुँच गये हैं।

शायद इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकारने में दस–बीस साल और लगेंगे क्योंकि सैकड़ों साल से मैटिरियलिस्ट और स्पिरिचुअलिस्ट का एक दूसरे से विरोध रहा है। वे इतनी आसानी से मानने वाले नहीं कि हम दोनों ने एक ही चीज़ की खोज कर ली। सदियों–सदियों से उनका आपस में विरोध रहा है, तो दस–बीस साल तो लगेंगे। लेकिन एक दिन उन्हें मानना ही पड़ेगा। उनकी मजबूरी है कि मानना ही पड़ेगा, क्योंकि तथ्य ऐसा ही है। तथ्य यह है कि भीतर कोई अध्यात्म में डूबे, ध्यान की साधना करे तो वह जागरूकतापूर्वक ओंकार की ध्वनि सुनता है। और चाहे कोई वैज्ञानिक सब–एटॉमिक पार्टिकल्स और एनर्जी के विश्लेषण में जाए, तो वहाँ भी वह चैतन्यता को पाता है, स्वर–लहरी को पाता है। दिस इज़ द बेसिक बिल्डिंग ब्लॉक, जिससे सारा

यूनिवर्स बना है। इसे चाहो तो 'यूनिवर्सल साउंड' कह लो, चाहो तो 'एग्ज़िस्टैंशल साउंड' कह लो या फिर अस्तित्वगत ध्वनि कह लो। धार्मिक भाषा में इसे ब्रह्म कह लो, हिंदुओं की भाषा में ईश्वर कह लो, जैनों की भाषा में आत्मा कह लो, बौद्ध की भाषा में शून्य कह लो, सिक्खों की भाषा में गुरु के द्वारा दिया गया ओऽम् की शिक्षा का दान कह लो। जो तुम्हारी मर्ज़ी, वह नाम दे सकते हो। अगर तुम इन सब के भीतर छिपे एक तत्त्व को देखो, तो तब तुम हैरान होओगे कि सारे विवाद समाप्त हो गए। धर्मों के बीच जो दीवारें खड़ी थीं और एक दूसरे से जो दुश्मनी थी, अब उसके टिकने की कोई जगह न बची। तुम जानोगे कि सारे ही धर्म एक ही चीज़ की बात कर रहे थे।

हमारे सद्गुरु ओशो का अध्यात्म में बड़े से बड़ा योगदान यही है कि उन्होंने पृथ्वी के कोने-कोने में जहाँ-जहाँ भी ऋषियों व ध्यानियों नें, जो कुछ भी खोजा था; वह सब एक मंच पर लाकर उपस्थित कर दिया। नहीं तो हमारी कट्टरपंथी सोच ऐसी थी कि अगर मैं हिंदू धर्म में पैदा हुआ हूँ, तो मुझे फ़िक्र ही नहीं कि मुसलमान क्या सोचते हैं? कि ईसाई क्या सोचते हैं? मुझे क्या लेना-देना? मैं मस्जिद के सामने से यूँ ही गुज़र जाता हूँ, जैसे कुछ है ही नहीं। अगर मैं मुसलमान के घर में पैदा हुआ हूँ, तो मैं चर्च के सामने से यूँ गुज़र जाता हूँ, जैसे कुछ है ही नहीं। मेरी नज़र ही नही पड़ती। मुझे लगता है कि चर्च में कुछ देखने लायक है ही नहीं। ऐसी दुश्मनी की भावना हमारे भीतर भरी हुई थी। सद्गुरु ओशो की कृपा से मामला बिल्कुल साफ़ हो गया। चाहे जापान के झेन मास्टर्स ने खोजा, चाहे चीन के ताओइस्ट फ़क़ीरों ने खोजा, चाहे सूफ़ी संतों ने, चाहे हिंदू संतों ने, चाहे बौद्ध भिक्षु ने, चाहे जैन तीर्थंकरों ने और चाहे ईसाई संतों ने खोजा; जहाँ भी सत्य की खोज की गई, अंततः उन्होंने एक ही चीज़ को पाया। ऊपरी-ऊपरी विचार में, सिद्धांत में भेद हो सकते हैं; लेकिन वे सब गौण बातें हैं, मुख्य बात तो एक ही है। अब धर्म और विज्ञान का अद्भुत मिलन हो रहा है।

अभी बहुत साफ नहीं है, लेकिन दस-बीस साल में स्पष्ट हो जाएगा कि विज्ञान ने जो सत्य खोजा है; वह वही सत्य है, जिसे ध्यानियों ने अपने भीतर खोजा था। भविष्य में धर्म नाम की ज़रूरत ही नहीं है, विज्ञान ही काफ़ी होगा। विज्ञान के कई रूप हो सकते हैं- एक पदार्थगत विज्ञान, एक मनोविज्ञान और एक आत्मिक विज्ञान। आत्मिक विज्ञान को आप आत्म-विज्ञान, सायंस ऑफ द सोल, सायंस ऑफ द कॉन्शसनैस कुछ भी कह सकते हो। अब ज़रूरत ही नहीं कि हम हिंदू, सिक्ख, जैन, ईसाई और मुसलमान का अलग-अलग विभाजन करें क्योंकि इस विभाजन से सिवाय लड़ाई-झगड़े के और कुछ भी नहीं होता। मूल बात को पकड़ते ही अचानक हम सब एकता के धागे में बंध जाते हैं और फिर धार्मिक और वैज्ञानिक का विरोध भी

समाप्त हो जाता है। हम सब सत्य के खोजी हैं, हम मनुष्य हैं, हमारे पास मन है, हम जानने में उत्सुक हैं और निश्चित रूप से जब हम जानने की यात्रा पर निकलेंगे, तो अंततः हम एक ही निष्कर्ष पर पहुँचेंगे। बीच में थोड़ा बहुत भेदभाव खड़ा हो सकता है, लेकिन फाईनल कन्क्लूज़न तो एक ही होगा। वह अलग-अलग कैसे होगा? इस जीवन का सत्य एक है और वह है- 'एक ओंकार सतनाम'।

इति ओऽम् ब्रह्म, मैं यहीं पर अपनी बात समाप्त करता हूँ।

यदि कोई प्रश्न हों, तो पंद्रह मिनट में उन पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

पहला सवालः मैं बारंबार ध्यान शुरू करता हूँ किंतु पंद्रह-बीस दिन बाद छूट-छूट जाता है। क्या करूँ?

अभी-अभी जो मैंने आपसे कहा है कि जब आप अपने भीतर एक हाथ की ताली सुन लेंगे, तब सतत् ध्यान हो पायेगा क्योंकि वह ध्वनि निरंतर भीतर गूँज ही रही है। जैसे ही आप अंतर्मुखी हुए, वह ध्वनि सुनाई देने लगती है। फिर आप का ध्यान कभी नहीं टूटेगा, कभी नहीं छूटेगा। इसके पहले तो टूट-टूट ही जाएगा। आपने विस्तार से लिखा है कि आप कौन-कौन सी विधियाँ करते हैं; किंतु दस-पंद्रह दिन बाद फिर मामला ठंडा पड़ जाता है, चूक हो जाती है। विधि स्वरूप हम जो भी करेंगे, वह सदा-सदा नहीं किया जा सकता। जब तक आप स्वस्थ हैं, आपका शरीर काम कर रहा है, तब तक ही आप कोई क्रिया या कोई खास विधि-विधान कर सकते हैं। याद रखना! शरीर हमेशा स्वस्थ नहीं रहेगा। यह बीमार पड़ सकता है या इसे लकवा लग सकता है। ऐसी स्थिति में आप कोई विधि कैसे करेंगे? ऐसी चीज़ खोजो, जो बिना किसी विधि के निरंतर भीतर मौजूद है; तभी सतत् ध्यान हो सकेगा, अन्यथा नहीं।

हमारे कर्म-कांड के कर्त्ता-धर्त्ता हम ही हैं। हमारे शरीर पर सदा हमेशा हमारा वश नहीं रहेगा। जैसा कि आपने लिखा है कि अभी ही नहीं रह पा रहा, तो आगे कैसे रहेगा। आगे तो वृद्धावस्था आएगी, कई बीमारियाँ घेर लेंगी; तब शरीर पर नियंत्रण कैसे रखोगे? शरीर पर हमारा नियंत्रण हमेशा नहीं हो सकता, इसलिए कोई भी क्रिया हमेशा नहीं चल सकती। कोई ऐसी चीज़ खोजो, जिसके कर्त्ता-धर्त्ता हम नहीं हैं। वह है-नाद ब्रह्म की ध्वनि। जब तुम अपने भीतर उस ध्वनि को सुनोगे, तो पाओगे कि तुम उसके कर्त्ता-धर्त्ता नहीं हो। वह ध्वनि तुमने पैदा नहीं की, बल्कि तुम उससे पैदा हुए हो। उस ध्वनि को सुनो, वह सतत् रह सकती है, हमेशा-हमेशा रह सकती है।

दूसरा सवाल है कि क्या स्वाध्याय के द्वारा ओ३म् को जाना जा सकता है?

स्वाध्याय के द्वारा तो नहीं, किंतु किसी सद्गुरु की संगत में, उसकी मदद से, नामदान लिया जा सकता है। जैसा कि मैंने कहा कि जिसे 'ओऽम्' भी कहते हैं और

'राम' भी कहते हैं; ठीक ऐसे ही कई सम्प्रदायों में इसे 'नाम' भी कहा गया है। किसी सद्गुरु के माध्यम से, उनके शिष्य बनकर उनसे दीक्षा लो। वह तुम्हें परिचित करायेगा कि यह 'ओंकार नाद' क्या है? तब बात बन जायेगी। स्वाध्याय से सामान्यतः हम अर्थ लेते हैं कि किताबों का पढ़ना-लिखना, चिंतन-मनन, सोच-विचार, ग्रंथ, शास्त्र और सिद्धांत। इनसे वाद-विवाद तो पैदा हो सकता है, मस्तिष्क में विचारों का शोरगुल तो उत्पन्न हो सकता है; किंतु वह शांत संगीत सुनाई न देगा। यू कैन नॉट लिसन टू द 'साईलैंट म्यूज़िक'। आपके मन में विचारों का शोरगुल बढ़ जायेगा।

जितना बुद्धिमान आदमी, उतना ही उसके भीतर विचारों का भंडार अधिक, भीतर की वह सूक्ष्म ध्वनि फिर सुनाई न देगी। इसलिए स्वाध्याय के द्वारा आज तक किसी का भी ओंकारस्वरूप परमात्मा से मिलन नहीं हुआ है। जिसका भी मिलन हुआ है, वह शिष्य बनकर सद्गुरु की सहायता से ही हुआ है। यहाँ मैं एक बात आपको बता दूँ कि संत मीराबाई ज़िंदगी भर श्रीकृष्ण की उपासना करती रहीं। उनसे बड़ी प्रेम दीवानी और श्रीकृष्णभक्त और कौन होगी! लेकिन याद रखना! उनका प्रभु से मिलन न हुआ। उस समय के उनके जितने भी गीत हैं, भजन हैं; उन सब में विरह के आँसू हैं।

'अंसुअन जल सींच-सींच, प्रेम बेल बोई।'

बड़ा रुदन है, विरह की तड़प है, पुकार है कि हे प्रभु! दर्शन दो। लेकिन प्रभुमिलन नहीं हुआ। जानते हो मिलन कब हुआ? मिलन तब हुआ, जब सद्गुरु से मुलाक़ात हुई। उनके सद्गुरु बने संत रैदास। संत रैदास ने उन्हें ओंकार का ज्ञान दिया और तब मीराबाई गा उठीं।

'पायो जी मैंने, राम-रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सद्गुरु, कृपा कर अपनायो।।'

यह भजन आपने सुना होगा। अब इसमें विरह के आँसू और तड़प नहीं है। अब तो मिलन और आनंद की उद्घोषणा है। 'पायो जी' अर्थात् मिल गया परम धन-'राम-रतन धन'। याद रखना! भीतर की जो आवाज़ है, यह कृष्ण से मिलती जुलती नहीं है। यह ओऽम् या राम से मिलती जुलती है इसलिए कृष्ण की भक्तन होते हुए भी मीराबाई क्या कहती है अब?

'पायो जी मैंने राम-रतन धन पायो।'

और कैसे पाया? 'वस्तु अमोलक दी मेरे सद्गुरु', यह अमूल्य उपहार मेरे सद्गुरु ने दिया। मीराबाई जैसी महाभक्त को भी पूर्णावतार श्रीकृष्ण की भक्ति कर-कर के न मिला, बड़े-बड़े पंडित पुरोहितों को शास्त्र, ग्रंथ का स्वाध्याय कर-कर के न मिला। अंततः उन्हें जब भी मिला, गुरु के माध्यम से ही मिला।

जीसरा सवालः यह ध्वनि कहाँ से आती है और हमारे

शरीर के भीतर कैसे छिप जाती है?

यह ध्वनि न कहीं से आती है और न कहीं जाती है। सब कुछ उस ध्वनि में ही आता-जाता रहता है। इस ध्वनि की न शुरूआत है, न समापन। सब कुछ इसी में बनता और बिखरता है। यह ध्वनि शाश्वत सत्य है। इसलिए यह न पूछो कि हमारे शरीर में यह कहाँ से आयी? यह ध्वनि है, इसलिए यह शरीर हो पाया। एक दिन यह शरीर फिर बिखर जायेगा, माटी में मिल जायेगा, लेकिन वह ध्वनि तब भी रहेगी। इ

सलिए जो इस ध्वनि को जान लेते हैं, उन्होंने अमृत को पहचान लिया। फिर उनके लिये मृत्यु का कोई अर्थ नहीं रह जाता। शरीर जन्मा है, तो मरेगा। लेकिन जो ओंकार स्वरूप ब्रह्म हमने जान लिया है, वह अविनाशी, अजन्मा और अमृत है। उसे जानकर सब प्रकार के भय समाप्त हो जाते हैं।

एक मित्र ने पूछा है– 'वट आर गॉड पार्टिकल्स? डज़ इट इग्ज़िस्ट?'

मैं हिंदी में कह रहा हूँ। शायद आपने भी सालों पहले कुछ थोड़ा बहुत गॉड पार्टिकल्स के बारे में सुना होगा या अख़बारों में पढ़ा होगा। यह एक ग़लत नाम है, जो अन्य लोगों ने दे दिया है। यह वैज्ञानिक शब्दावली नहीं है। यह लैटिन, ग्रीक या अंग्रेज़ी भाषा का शब्द भी नहीं हैं। वैज्ञानिक कई प्रकार के सब-एटॉमिक पार्टिकल्स खोज रहे हैं। उसमें से एक विशेष प्रकार के पार्टिकल्स की खोज चल रही थी।

उन पार्टिकल्स के नये-नये नाम काफ़ी कठिन थे। सामान्य लोग उतना कठिन उच्चारण नहीं कर सकते थे, तो सामान्य भाषा में लोग इन्हें गॉड पार्टिकल्स कहने लगे। यह उसका वास्तविक नाम नहीं है। और जैसा अर्थ लोग निकालते हैं, उसका वैसा अर्थ भी नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि सद्गुरु ओशो जी की जीवन-कथा के बारे में कुछ कहें।

यह तो बड़ी लंबी चौड़ी बात हो जायेगी, तो मैं संक्षेप में दो मिनट में कह देता हूँ। ओशो का जन्म मध्यप्रदेश में एक छोटे से गाँव में हुआ। उस गाँव का नाम है– 'कुचवाड़ा'। सात वर्ष तक वे अपने नाना-नानी के पास रहे। फिर नाना जी की मृत्यु होने के पश्चात् वे अपने माता-पिता के पास आ गए। जबलपुर के निकट एक दूसरा गाँव है, जिसका नाम है– 'गाडरवाड़ा'। वहीं पर उनके बचपन की हाई स्कूल तक की शिक्षा हुई। वे बहुत ही साहसी, अत्यंत बुद्धिमान युवक निकले। वह सब से वाद-विवाद करते थे। वह बड़े तर्कनिष्ठ थे, कोई भी उनसे जीत न पाता था। **फिर उन्होंने जबलपुर से ग्रेजुएशन और सागर विश्वविद्यालय से फिलॉसफ़ि में एम.ए. किया तथा यूनिवर्सिटी टॉप किया।**

उसके पश्चात् रायपुर और जबलपुर विश्वविद्यालय में प्रोफ़ैसर के पद पर उन्होंने क़रीब–क़रीब नौ साल तक सर्विस की। इस बीच वे सारे देश

में घूम–घूम कर अपने उपदेश देते रहे। उनकी वाणी अत्यंत ओजस्वी, विचार अत्यंत क्रांतिकारी, चेहरा अत्यंत आकर्षक और स्वभाव अत्यंत विद्रोही था। सन् 1967 में उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र देकर सारे देश में वैचारिक क्रांति की लहर फैलाने का अभियान और तीव्र गति से शुरू कर दिया। फिर उन्होंने मुंबई आकर निवास किया और चार साल तक वहाँ रहे। इसी बीच पश्चिम के लोग भी उनके पास आना शुरू हो गए। 1974 में पूना में श्री रजनीश आश्रम की स्थापना की गई और अगले सात साल तक, 1981 तक ओशो ने पूना में ही निवास किया। इन सात सालों में पूना विश्वप्रसिद्ध मनोचिकित्सा केंद्र बन गया। दुनिया का सबसे बड़ा साईकोथैरपी सैंटर, जहाँ मनोचिकित्सा के सैकड़ों–सैकड़ों प्रयोग होते थे। यह एक प्रकार का स्पिरिचुअल सैंटर था, जहाँ ध्यान के विविध प्रयोग चलते रहे। दुनियाभर से हज़ारों–हज़ारों लोग वहाँ आने लगे और यह सारी दुनिया का आकर्षण केंद्र बन गया।

1981 में ओशो अमेरिका गए। वहाँ उनके नाम से दो शहर स्थापित हुए। एक का नाम था– 'द सिटी ऑफ रजनीश', जो छोटा शहर था और एक बहुत बड़ा शहर, जो न्यूयार्क से तीन गुना बड़ा, 64 हज़ार एकड़ ज़मीन पर बना था; उसका नाम था– 'रजनीशपुरम'। पाँच साल तक ओशो वहाँ रहे। किंतु अमेरिकन गवर्नमैंट उनके इस विस्तार को, उनके फैलाव को सहन न कर सकी। विशेषकर रोनॉल्ड रीगन, जो उस समय कट्टरपंथी ईसाई प्रैज़िडैंट थे; उन्होंने रजनीशपुरम को नष्ट करने और ओशो को निष्कासित करने के कई–कई षडयंत्र बनाए। और सरकार से लड़ना तो लगभग असंभव होता है, इसलिए वे अपने षडयंत्र में सफल हुए। उन्होंने रजनीशपुरम को नष्ट कर दिया। ऐसा शायद पहली बार हुआ कि सरकार ने स्वयं ऐसी ग़ैर क़ानूनी गतिविधियाँ की, जो उनके ही संविधान के ख़िलाफ़ हैं।

इसके पश्चात् ओशो वर्ल्ड टूर पर चले गए और अगले 6 महीने में उन्होंने 21 देशों की यात्रा की। 1986 के मध्य में वे वापिस मुंबई लौटे। 6 महीने तक ओशो वहाँ रहे और पुनः उनके प्रवचन नियमित रूप से आरंभ हुए। एक जनवरी 1987 में ओशो पूना आश्रम वापस लौटे और अगले तीन सालों तक वहाँ रहे। वहाँ फिर हज़ारों–हज़ारों शिष्य इकट्ठे हुए और अध्यात्म की गहरी साधना चलती रही। 1990 में उन्होंने अपनी देह त्यागी। यह ओशो की संक्षिप्त जीवनगाथा है। अगर आप विस्तार से पढ़ना चाहें, तो इंटरनैट पर आपको बहुत मैटर मिल जायेगा। 'डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली' की एक पत्रिका है– 'साधना पथ', जिसे वे हर महीने छापते हैं। क्योंकि ओशो का जन्म

दिवस 11 दिसम्बर है, तो हर साल 'साधना पथ' पत्रिका का दिसम्बर अंक 'ओशो विशेषांक' रहता है। आप इस मैगज़ीन को ज़रूर पढ़िएगा। उसमें आपको 'ओशो' के विषय में बहुत विस्तार से मिल जायेगा।

एक मित्र ने पूछा है कि आपमें और ओशो में क्या फ़र्क़ है?

प्रत्येक व्यक्ति के तन-मन में भेद है। प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है। बड़े-बड़े भेद क्या? प्रत्येक व्यक्ति का अँगूठे का निशान तक अलग-अलग होता है, फिंगर प्रिंट्स तक अलग-अलग होते हैं। तो जहाँ तक शरीर का सवाल है, शरीर तो भिन्न-भिन्न होते हैं। जहाँ तक मन का सवाल है, सभी के मन भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

कोई भी व्यक्ति एक दूसरे के समान नहीं है। हर व्यक्ति असाधारण और अद्वितीय है। हाँ, जहाँ तक भीतर की चेतना का सवाल है, तन-मन के पार जो चेतन है, कांशसनैस है; वह सब में एक है। न केवल ओशो में और मुझमें, बल्कि आप में भी वही की वही चेतना है। इसलिए उपनिषद् के ऋषि कहते हैं- 'अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूँ।' फिर यह भी कहते हैं- 'तत् त्वमसि (तत्त्वमसि), तू भी वही है।' ठीक वही, मैं आपसे कहना चाहूँगा कि जो ओशो के भीतर मौजूद था, वह प्रत्येक के भीतर मौजूद है।

एक मित्र ने पूछा है कि हम कब एक हाथ की ताली सुन सकेंगे?

मैं आपको आमंत्रण देता हूँ। हमारे यहाँ 6 दिन का ध्यान-समाधि कार्यक्रम होता है, आप उसमें आइए। उसमें पाँचवें दिन आप एक हाथ की ताली सुन लेंगे। तनावग्रस्त होकर नहीं, रिलैक्स होकर आईये। अहंकार साथ में मत लाईये, ज्ञानी होने का घमंड मत लाईये। बस यही बाधाएं हैं, और कुछ भी नहीं। आज तक लगभग 30 हज़ार लोग ध्यान-समाधि करने आ चुके हैं। मैं याद करता हूँ कि आज तक तीस हज़ार में से मुश्किल से केवल तीन लोग हैं, जो चूके हैं; जो एक हाथ की ताली नहीं सुन पाए। ये वे लोग हैं, जो बहुत घमंडी व अभिमानी हैं। याद रखना! जहाँ अहंकार है, वहाँ ओंकार नहीं हो सकता। 'अहं' और 'ब्रह्म', इसमें से एक ही संभव है। जो लोग झुकने के लिये तैयार हैं, शिष्य बनने को राज़ी हैं, वे बहुत आसानी से सुन लेते हैं।

तीस हज़ार में से जो तीन लोग चूके हैं, ये तीन लोग बहुत इगोइस्टिक थे। जो तय ही कर के आये थे कि जैसे सुनना ही नहीं है। सिद्ध करना है कि गुरु ग़लत है। तुम जो सिखा रहे हो, वह ग़लत है। उससे मेरा क्या बिगड़ेगा? मान लो उन तीन लोगों ने सिद्ध कर भी दिया कि मैं जो सिखा रहा हूँ, वह ग़लत है; तो उससे उनको क्या लाभ हुआ? आपसे बस इतना ही निवेदन करता हूँ कि शिष्य की भावदशा से आना, अर्थात् सीखने के लिये तत्पर, झुकने को राज़ी; और आप निश्चित रूप से सुन पायेंगे। मैं

बहुत अधिक समय भी नहीं माँग रहा हूँ। सिर्फ 6 दिन का समय माँग रहा हूँ। हमारी पत्रिका में आप देख सकते हैं कि कब–कब यह प्रोग्राम होता है? कहाँ–कहाँ होता है? अभी यहाँ चल ही रहा है। आज उसका पाँचवां दिन है। आज 'ओंकारदीक्षा' हुई है।

आस्था टी.वी. चैनल पर रोज़ शाम को पौने सात बजे हमारा प्रोग्राम आता है। आप उसे देखिए, उसमें आगामी कार्यक्रम की डेट्स आ जाती हैं कि कहाँ–कहाँ और कब–कब हो रहा है। आने से पहले आप बुकिंग करा लीजिए और आ जाईए। दिसम्बर महीने के एंड में जो क्रिसमस हॉलीडेज़ का समय होता है, उस समय हम 'ध्यान–समाधि कार्यक्रम' रखते हैं। इसके अतिरिक्त वर्ष में कई बार 'ध्यान–समाधि कार्यक्रम' होता है। मुरथल, हरियाणा में हमारा मुख्य आश्रम है; वहाँ आइए, ब्रह्मज्ञान प्राप्त कीजिए और एक हाथ की ताली सुनिए।

अंतिम सवालः जीवन में बहुत तनाव और डिप्रैशन है, इससे कैसे बचा जा सकता है?

अगर हम बाहर की दुनिया में महत्त्वाकांक्षाओं के पीछे दौड़ रहे हैं कि मैं यह पा लूँ, मैं वह पा लूँ, तो निश्चित रूप से तनाव पैदा होगा। जितने दूर हमारे टारगेट्स होंगे, उतना ही हम तनावग्रस्त हो जायेंगे। तनाव का जो रेशियो है, वह हमारे और हमारे टारगेट के बीच की दूरी पर निर्भर करता है। इसे ऐसे समझो कि जैसे अगर मुझे लगभग सौ फुट ऊँची एक छोटी–सी पहाड़ी पर चढ़ना है और एक दूसरे व्यक्ति का टारगेट है कि हिमालय की एवरेस्ट की चोटी पर पहुँचना है; तो दोनों के तनाव अलग–अलग होंगे। मुझे कुल सौ फुट ऊपर जाना है, जो 5–6 मंज़िल के बराबर है। बस उतनी ही सीढ़ियां चढ़नी हैं, तो मेरा तनाव भी छोटा होगा। मेरा लक्ष्य नज़दीक का है। मैं इसे बड़ी आसानी से पा लूँगा। इसमें कुछ ख़ास बात नहीं है।

जिसने टारगेट को बहुत ऊँचा रखा है, एवरेस्ट की चोटी पर पहुँचना है; उसे तो निश्चित रूप से अपनी जान जोखिम में डाल कर बहुत से तनावों, बहुत परेशानियों से गुज़रना होगा। और इतना सब करने के बाद भी अगर नहीं पहुँच पाया, तो भारी डिप्रैशन में चला जायेगा। निराश हो जायेगा कि जीवन बेकार गया। जो लक्ष्य पाना था, उसे पा ही न सका। उसकी यह धारणा हो जायेगी कि जीवन व्यर्थ है। बाहर के जगत में बहुत आपाधापी हो रही है कि मुझे ये मिल जाय, वो मिल जाय, ये हासिल कर लूँ, वो हासिल कर लूँ, धनी हो जाऊँ, शक्तिशाली हो जाऊँ, बलशाली हो जाऊँ, ऊँचे पद पर पहुँच जाऊँ। जितनी हमारी दौड़ बढ़ती जायेगी, उतने ही हम तनावग्रस्त होते जाएंगे। यदि हम सफल हो भी गये, तो हमारे टारगेट और खिसक जायेंगे।

समझो मैं सोच रहा था कि मेरे पास एक करोड़ रुपये हो जाएं। दस–पाँच साल मेहनत करके अगर एक करोड़ हो गये, तब तक मेरा टारगेट चेंज हो जायेगा। मैं

सोचूँगा कि अब एक करोड़ में क्या होता है? महंगाई बहुत बढ़ गई है, दो करोड़ से कम में काम न चलेगा। मेरा टारगेट फिर आगे खिसक गया, लेकिन तनाव वहीं का वहीं रहा। जब तक दो करोड़ हो पायेंगे, तब तक मैं चार करोड़ के बारे में सोचने लगूँगा, क्योंकि मेरी आदत यही है कि जितना मेरे पास है, उससे दुगना–तिगुना मुझे चाहिए।

इसका मतलब यह हुआ कि मैं ज़िंदगी भर, मरते दम तक तनावग्रस्त ही रहूँगा और अगर असफल हो गया, तो फ्रस्ट्रेशन के कारण डिप्रैशन में चला जाऊँगा। दुनिया में जितनी महत्त्वाकांक्षा बढ़ती जा रही है, उतना ही सूइसाईड रेट बढ़ता जा रहा है, उतनी ही आत्महत्या करने वालों की गिनती बढ़ती जा रही है। महत्त्वाकांक्षा पूरी न होने पर भारी डिप्रैशन घेर लेता है। तब ऐसा लगता है कि जीवन निरर्थक है, क्या फ़ायदा ऐसे जीने से? सोच रहे थे प्रधानमंत्री बनने की और एम.एल.ए. तक का चुनाव हार गये। अब समाज में क्या मुँह दिखाएं? तब आत्महत्या ही एकमात्र समाधान नज़र आता है।

तनाव और डिप्रैशन का कारण एक ही है, और वह है– 'महत्त्वाकांक्षा', एम्बिशन, बाहर के जगत में दौड़ने की वृत्ति। फिर पूछा है कि इसका समाधान क्या है? अपने अंतस जगत में उसे पा लो, जो मिला ही हुआ है। भीतर कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं होती, क्योंकि भीतर वह परमात्मा, वह ब्रह्म, वह ओऽम् मौजूद ही है। उसमें कोई छीना–झपटी नहीं है। मीराबाई कहती हैं कि उस राम–रतन धन को कोई चुरा नहीं सकता। न वह धन खर्च होता है और न ही कम होता है। वह सबके भीतर एक–सा मौजूद है। बाहर की चीज़ें ऐसी नहीं हैं। अगर एक आदमी बहुत धनी हो गया, तो कई लोगों को ग़रीब होना पड़ेगा क्योंकि धन सीमित है। सब को नहीं मिल सकता। ऊँचे पद पर थोड़ी–सी कुर्सियाँ हैं। कुछ लोग उन पदों पर पहुँच गये। सभी के लिये यह संभव नहीं है। बाक़ी के लोग वहाँ नहीं पहुँच सकते।

भीतर इससे ठीक उल्टा है। वहाँ परमात्मा सब के लिये उपलब्ध है। मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि अपने भीतर उस राम–रतन धन को, उस ब्रह्म को जानो और पहचानो। तब न कोई महत्त्वाकांक्षा होगी और न ही कोई तनाव होगा; बल्कि तुम बहुत शांत, शिथिल और रिलैक्स हो जाओगे। फिर डिप्रैशन का तो सवाल ही नहीं उठता। जो भीतर गया, उसने सुनिश्चित रूप से उस राम–रतन धन को पाया। वहाँ कभी कोई असफल नहीं होता।

धन्यवाद। जय ओशो।

प्यारे मित्रो, नमस्कार! जय ओशो!

आज 'श्वास की साधना' संबंधित कुछ सवाल आए हैं। उन पर चर्चा होगी। चर्चा केवल चर्चा के लिए नहीं, बल्कि प्रायोगिक समझ व रुचि जगाने के लिए है।

एक साधक ने पूछा है कि अनापानसती–योग का क्या अर्थ है?

'अनापानसती–योग', यह शब्द पाली भाषा से लिया गया है। 'अनापान' शब्द 'पान' और 'अपान' दो शब्दों के मेल से बना है। भगवान बुद्ध जिस इलाक़े में विचरण किया करते थे, वहाँ पर पाली भाषा बोली जाती थी। पाली भाषा में 'अनापान' शब्द का अर्थ है– 'आती–जाती श्वास'। इन्हेलेशन एण्ड एक्शलेशन। 'सती' शब्द 'स्मृति'

का अपभ्रंश है। तो 'अनापानसती' का मतलब हुआ 'आती–जाती श्वास की स्मृति' अर्थात् होश व सजगतापूर्वक अपनी आती–जाती श्वास को देखना। 'योग' का अर्थ है– 'अपने भीतर अपने चैतन्य से जुड़ना'। जब हम अपने भीतर अपनी चेतना से तादात्म्य बनाते हैं, तो इसका तात्पर्य हुआ कि हम स्वयं से जुड़े, तो 'अनापानसती–योग' का पूरा अर्थ हुआ कि आती–जाती श्वास का स्मरण रखते हुए अपनी आत्मा से जुड़ना व स्वयं में रमण करना।

दूसरा सवाल है कि प्राणायाम तथा विपस्सना में क्या अंतर है?

'प्राणायाम' शब्द का अर्थ है– 'एक्स्प्रैशन ऑफ द वाईटल फ़ोर्स'। 'प्राण' अर्थात् हमारी जीवन–ऊर्जा और 'आयाम' अर्थात् 'फैलाव' या विस्तार। जब हम गहरी श्वास लेते हैं, तो हमारे भीतर जीवन–ऊर्जा का विस्तार होता है। जब हमारे भीतर ऊर्जा जागती है, तो उसे 'प्राणायाम' कहा जाता है। योग में प्राणायाम की विभिन्न विधियाँ हैं, जिनसे आप परिचित ही होंगे। तो यहाँ मैं उनका उल्लेख नहीं करूँगा। दूसरा प्रश्न आपने विपस्सना के विषय में पूछा है। 'विपस्सना' शब्द संस्कृत के 'पश्य्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'देखना'। बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहा करते थे कि भिक्षुओ! पलट कर देखो। 'विपस्सना' यानि 'पलट कर देखना'।

पलटना कहाँ है? अपने भीतर पलटना है। सामान्यतः हमारी जीवन–ऊर्जा बहिर्मुखी होती है, जो निरंतर संसार की तरफ़ गति करती है। यदि हमारी जीवनधारा पलट कर 'धारा' से 'राधा' बन जाए और संसार से स्वयं की तरफ़ लौट आए, तो उसे पलटना कहा जाता है। लौट कर अपनी श्वास को देखो, ताकि अपनी आत्मा तक पहुँच सको और स्वयं की चेतना को जान सको। भगवान बुद्ध ने विपस्सना की तीन विधियाँ कहीं हैं, जिसके अनुसार विपस्सना के तीन रूप हैं। एक है– 'स्थूल रूप', दूसरा है– 'बहुत सूक्ष्म रूप' और दोनों के बीच में है– 'मध्यम रूप'।

विपस्सना का सबसे स्थूल रूप है– अपनी शारीरिक क्रियाओं का अवलोकन करना। चलते–फिरते, उठते–बैठते, खाते–पीते और यहाँ तक कि स्नान करते हुए भी द्रष्टाभाव से अपने शरीर की क्रियाओं का निरीक्षण करो। यह निरीक्षण ऐसा होना चाहिए, जैसे किसी और को देख रहे हों। विपस्सना का सूक्ष्मरूप है– अपने मन में चल रहे विचारों के द्रष्टा बनो। अपने हृदय में आती–जाती भावनाओं के द्रष्टा बनो और उन्हें ऐसे देखो, जैसे किसी और को देख रहे हो। विपस्सना का मध्यम रूप है– अपनी आती–जाती श्वासों का अवलोकन करना। तो इस प्रकार विपस्सना के तीन रूप हो गये। चूंकि महात्मा बुद्ध मध्यम मार्ग पर बहुत ज़ोर देते थे, तो उन्होंने स्थूल या बहुत

सूक्ष्म मार्ग को महत्त्व नहीं दिया। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि श्वास को देखो। श्वास न तो शारीरिक क्रियाओं की तरह बहुत स्थूल है और न ही विचारों और भावनाओं की तरह बहुत सूक्ष्म है। आती–जाती श्वास को देखते–देखते धीरे–धीरे सूक्ष्म व स्थूल विपस्सना भी सध जायेगी। प्राणायाम और अनापानसती योग को भी मध्यम विपस्सना का एक अंश माना जा सकता है।

तीसरा सवाल है कि साँस किस प्रकार ध्यान में सहयोगी होती है?

साँस प्रकृति–प्रदत्त बहुमूल्य उपहार है। चूंकि यह सहज रूप से, स्पोंटेनियसली व अपने–आप दिन रात चल ही रही है; इसलिये अगर हम इसके प्रति सजग हो जाएं, तो हमारा ध्यान सध जाए और होश की साधना होने लगे। अगर हम किसी अन्य चीज़ के प्रति ध्यान साधने का प्रयत्न करते हैं, तो वह असहज होता है और थोड़ी बहुत देर ही किया जा सकता है। किंतु साँस तो लगातार चल ही रही है। इसके लिए अलग से समय देने की भी ज़रूरत नहीं है। बस अपनी साँसों का सजगतापूर्वक निरीक्षण करो और विपस्सना घटित होने लगेगा।

साँस की विधियाँ अन्य सभी विधियों की तुलना में ज़्यादा सरल और सुगम हैं। इन विधियों को एक छोटा–सा बच्चा भी कर सकता है और बिस्तर पर पड़ा हुआ कोई बीमार अथवा वृद्ध व्यक्ति भी कर सकता है। जब तक हम जीवित हैं, साँस तो चल ही रही है; इसलिये साँस की विधियाँ अत्यंत आसान और सुगम हैं। कुछ भी करते हुए या न करते हुए भी श्वास के प्रति सजग हुआ जा सकता है, इसलिये श्वास की विधियाँ सर्वाधिक प्रचलित हुईं। सदगुरु ओशो ने तो यहाँ तक कहा है कि आज तक जितने व्यक्ति भी परमज्ञान को उपलब्ध हुए हैं, संबोधि को उपलब्ध हुए हैं; उनमें से सर्वाधिक गिनती उन लोगों की है, जिन्होंने साँस की विधि के माध्यम से साधना की है।

एक साधक ने पूछा है कि साँस की विधियों के बारे में सद्गुरु ओशो ने किन प्रवचनों में बोला है?

ओशो ने मुख्य रूप से 'विज्ञान भैरव तंत्र' पर प्रवचनमाला देते हुए श्वास की विधियों को बहुत विस्तार से समझाया है। 'विज्ञान भैरव तंत्र' बड़ा पुराना ग्रंथ है, जिसमें 'भगवान् शिव' ने 'देवी पार्वती' को ध्यान की 112 विधियाँ कही हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि इन एक सौ बारह विधियों में से प्रथम नौ विधियाँ श्वास से संबंधित हैं। इससे सिद्ध होता है कि 'भगवान शिव' की दृष्टि में श्वास की विधियाँ कितनी मूल्यवान हैं। ओशो की यह प्रवचनमाला मूलरूप से अंग्रेज़ी में है और उसका टाईटल है– 'द बुक ऑफ सीक्रेट्स'। हिंदी में 'तंत्र–सूत्र' के नाम से पाँच भागों में

इसका ट्रैंज़लेशन प्रकाशित हुआ है। इसके प्रथम भाग में श्वास की विधि आती है। आप वह सुनिए या पढ़िए। एक अन्य प्रवचनमाला 'पतंजलि योग सूत्र' में भी ओशो ने श्वास की विधियों का और प्राणायाम का उल्लेख किया है। 'पतंजलि योग सूत्र' भी मूलरूप से अंग्रेज़ी की प्रवचनमाला है, जिसका नाम है– 'योगा, द एल्फ़ा ओमेगा'। जिस–जिस प्रवचनमाला में भी ओशो ने श्वास की विधियों का उल्लेख किया है, हमने उन सारे प्रवचन अंशों को इकट्ठा करके एक एमपी थ्री बनाई है; जिसका नाम है– 'स्वास्थ्य और शांति का सूत्र– श्वास'।

आप यह एक सीडी सुन लें, तो आपको सारांश समझ में आ जायेगा कि किस प्रकार साँस हमारे शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के साथ–साथ आध्यात्मिक स्वास्थ्य में भी सहयोगी हो सकती है। साँसों के माध्यम से ध्यान और समाधि में डूबना भी सुगम हो जाता है। संक्षेप में एक बात समझ लें कि मन है हमारी व्याधि, और समाधि है उसकी औषधि। श्वास के माध्यम से इस औषधि को घुटकना(निगलना) बहुत आसान है। जैसे वैद्यराज कोई कड़वी दवाई देते हैं, तो शहद में या दूध में मिलाकर पीने को कहते हैं। इसी प्रकार अगर हम साक्षीभाव की औषधि को श्वास के संग जोड़कर ग्रहण कर लें, तो ध्यान में डूबना बहुत आसान हो जाता है।

अगला सवाल है कि विपस्सना करने का उपयुक्त समय कौन सा है?

सुबह का समय विपस्सना करने का सर्वाधिक उचित समय है। विपस्सना ही नहीं, बल्कि प्राणायाम, अनापानसती–योग, अथवा श्वास की कोई भी विधि कृपया दोपहर बारह बजे से पहले ही कर लें। श्वास की विधियों को अगर हम संध्या अथवा रात के समय करते हैं, तो उसका नुक़सान संभव है। श्वास की विधियों में बहुत अधिक सजगता सध जाती है, जिससे नींद आने में बाधा पड़ सकती है। जैसे कि मैडिक्ली रैकमंड किया जाता है कि शाम को सात बजे के बाद कोई व्यक्ति चाय और कॉफ़ी न लें क्योंकि उनका असर पाँच–छः घंटे तक रहता है और नींद की प्रक्रिया में बाधा पहुँचती है। ठीक वैसे ही मैं कहना चाहूँगा कि श्वास की ध्यान–विधियों का प्रयोग दोपहर से पहले–पहले ही कर लें। सुबह के समय सारी प्रकृति जाग रही है। फूलों ने अपनी पंखुड़ियाँ खोल दी हैं। पक्षी उड़ने लगे हैं और सभी पशु जागृत हो गये हैं।

अभी मनुष्य भी अधिक जागा हुआ है। स्वाभाविक रूप से प्रकृति में जागरण की लहर छाई हुई है। यदि उस समय हम भी अत्यंत सजग व ध्यानपूर्ण हो जाएं, तो मामला बड़ा आसान होगा। अगर हम रात को सजगता साधते हैं, तो हम प्रकृति के ख़िलाफ़ कुछ करने जा रहे हैं। यह अस्वाभाविक घटना है और इसकी कुछ हानियाँ भी हैं।

अगर कोई रात को विपस्सना करेगा, तो हो सकता है कि वह अनिद्रा का रोगी हो जाए। ऐसी स्थिति में बड़ी मुश्किल खड़ी हो जायेगी। अगर उस व्यक्ति को रात को ठीक से नींद नहीं आई, तो दूसरे दिन वह बेचैन और परेशान रहेगा। उसे दिनभर उबासियाँ आती रहेंगी और नींद घेरती रहेगी। उसने दिनभर मूर्छित महसूस किया और नींद आती रही। रात को फिर वह विपस्सना ध्यान करेगा और उसकी रात की नींद फिर ग़ायब हो जायेगी। इससे एक विशेष सर्कल पैदा हो जायेगा। दिन में नींद आयेगी लेकिन रात में नींद नहीं आयेगी। इससे हमारे जीवन के कई अन्य क्रियाकलाप भी प्रभावित होंगे, जो कि उचित नहीं है। इसलिये ध्यान–विधियों का सही समय जानना भी अत्यावश्यक है। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कौन–सी विधि कब करनी है? ख़ास कर सुबह के समय ऐसी विधियाँ करें; जिनमें साक्षीभाव साधना है, होश साधना है और ऊर्जा जगानी है।

दोपहर या संध्या के समय ऐसी विधियाँ करनी चाहिएं, जिनमें मदहोशी की साधना है और जिनमें ख़ुमारी छा जाती है। रात्रि को ऐसी विधियाँ करनी चाहिएं, जो नींद में सहयोगी हों। उसमें साक्षीभाव नहीं साधना चाहिए। इसलिये विपस्सना की विधि सुबह के लिये बहुत उपयुक्त है। जिन लोगों की सुबह जल्दी नींद खुल जाती है, वे ब्रह्ममुहुर्त्त में इन विधियों को करें, तो बहुत लाभ होगा।

अगले सवाल में एक अन्य साधक ने पूछा है कि सोहम् की साधना और विपस्सना की साधना में क्या फ़र्क़ है?

विपस्सना में मुख्य रूप से हम आती–जाती श्वास को देखते हैं। सोहम् की साधना में श्वास को तो देखना ही है, उसके संग श्वास की आवाज़ को भी सुनना है। जब हम धीमी गहरी श्वास भीतर लेते हैं, तो 'सो' से मिलती–जुलती एक ध्वनि होती है और जब हम आराम से श्वास छोड़ते हैं, तो 'हम्' जैसी एक हमिंग साउंड होती है। मैं केवल उदाहरण के लिये ऐसा कह रहा हूँ। वह ध्वनि न तो एग्ज़ैक्टलि 'सो' है और न 'हम्' है। लेकिन हम उसे कैसे व्यक्त करें? इसे व्यक्त करने के लिए निकटतम ध्वनि है– 'सोहम्'। याद रखना! 'सोहम्' शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है। 'सोहम'् श्वास की ध्वनि का प्रतीकमात्र है। तो जब हम विपस्सना अथवा अनापानसती–योग करते हुए अपनी श्वास की ध्वनि को भी सुनने लगे, तो एक नया आयाम जुड़ गया। श्वास को देखने से तो होश सधेगा ही सधेगा। लेकिन ध्वनि श्रवण करते हुए हमारी चेतना ऐसी हो गई, जिसमें दो तरफ़ तीर हों। इसे डबल–एरोड–कांशसनैस कहते हैं।

इसमें हम आती–जाती श्वास को भी देख रहे हैं और सोहम् की ध्वनि भी सुन रहे हैं। सोहम् की ध्वनि सुनते–सुनते, विशेषकर दो श्वासों के अंतराल में एक घड़ी ऐसी आयेगी; जब श्वास नहीं होगी, लेकिन सुनने की एकाग्रता ज्यों की त्यों बनी रहेगी।

दिस इज़ द गैप बिटवीन टू ब्रैथ्स। जब श्वास नहीं चल रही, तो साँस की आवाज़ भी नहीं होगी। चूंकि हम सुनने की एकाग्रता साधे हुए हैं, तो उस समय हमें चेतना की ध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी; जिसे संतों ने 'अनाहत-नाद' कहा है। तो सोहम् अपने भीतर प्रवेश का द्वार बन जायेगा।

अगला सवाल है कि श्वास के विधियों से चेतना का ज्ञान किस मैकनिज़म से होता है?

जिस प्रकार एक नदी के दो किनारे होते हैं, ठीक वैसे ही एक तरफ़ पदार्थ का जगत है और दूसरी तरफ़ परमात्मा है। एक तरफ़ हमारी भौतिक देह है और दूसरी तरफ़ हमारी अभौतिक चेतना है। इन दोनों को जोड़ने वाला तत्त्व श्वास है। श्वास, हमारी देह और चेतना के बीच का सेतु है। जन्म लेते ही हमने श्वास लेना शुरू किया, जिससे आत्मा और शरीर आपस में जुड़ गये। मृत्यु के समय श्वास बंद हो जायेगी। शरीर लाश की तरह पड़ा रह जाएगा और आत्मा विदा हो जायेगी। जिस प्रकार कोई पुल गिर जाए, तो नदी के दोनों किनारे अलग-अलग हो जाते हैं; उसी प्रकार श्वास रूपी सेतु टूटने पर देह और चेतना अलग-अलग हो जाते हैं। ज़रा सोचो! अगर इस पार से उस पार जाना है, तो सबसे सरल विधि क्या होगी?

इस किनारे से उस किनारे जाने की कई विधियाँ हो सकती हैं। यदि कोई आदमी बहुत पहलवान है, तो हो सकता है कि वह इतनी लंबी छलांग मारे कि इस किनारे से उस किनारे पहुँच जाए। लेकिन यह विधि अत्यंत कठिन है। बहुत थोड़े से लोग ही इतनी लंबी छलांग लगा पायेंगे। दूसरी विधि हो सकती है कि कोई तैरकर चला जाए। लेकिन इसके लिये तैरना आना चाहिए। यदि नदी का प्रवाह बहुत तेज़ है, तो हो सकता है कि तैरने वाले भी डुबकी खा जाएं। तो इस विधि में भी ख़तरा है।

तीसरी विधि हो सकती है कि किसी नाव या जहाज़ का इंतज़ाम किया जाए। लेकिन इसके लिए भी बड़ी व्यवस्था जुटानी होगी। इसके अतिरिक्त हैलीकॉप्टर, हवाई जहाज़ या ट्रॉली से भी जा सकते हैं। इस प्रकार एक नदी पार करने की कई-कई विधियाँ हो सकती हैं। लेकिन सबसे सरल विधि क्या होगी? सबसे सरल विधि है कि अगर नदी पर पुल बना हुआ है, तो उस पुल के ऊपर से चले जाईये। इससे सरल भला और क्या होगा?

इसी प्रकार शरीर से आत्मा तक अथवा पदार्थ से परमात्मा तक पहुँचने की विभिन्न विधियाँ हैं। किंतु सबसे सरल विधि, श्वास की विधि है। यह प्राकृतिक सेतु है इसलिए संसार रूपी भवसागर को पार करने के लिये इससे ज़्यादा सुगम और कुछ भी नहीं है। इसलिए सद्‌गुरु ओशो का यह कथन बिल्कुल ठीक है कि आज तक जितने भी लोग बुद्धत्व को प्राप्त हुए हैं, उनमें से सर्वाधिक लोग श्वास की विधियों द्वारा पहुँचे

हैं। हो सकता है कि कोई तैर के भी गया हो। यह भी संभावना है कि किसी ने हैलीकॉप्टर का सहारा लिया हो। लेकिन सबसे ज़्यादा लोग तो पुल पर से ही जा सकते हैं । यह राजमार्ग बन सकता है। तो श्वास की विधियाँ ही अध्यात्म का राजमार्ग है। यही कारण है कि भगवान शिव ने 'विज्ञान भैरव तंत्र' में सबसे पहले श्वास की विधियों का उल्लेख किया है।

महर्षि पतंजलि, भगवान् कृष्ण, भगवान महावीर और भगवान बुद्ध ने भी इन पर बहुत ज़ोर दिया। संत गोरखनाथ, संत कबीर साहब और मध्ययुग के विभिन्न संतों ने भी आध्यात्मिक प्रगति में श्वास की विधियों को बहुत महत्त्वपूर्ण बताया है। प्यारे सदगुरु ओशो का भी श्वास की विधियों पर बहुत ज़ोर है। तो अनापानसती योग के साथ यदि सोहम् की साधना भी जोड़ दें, तो सोने पर सुहागा हो जाता है। इससे शीघ्र ही हम हर क्षण अपने भीतर गूंजते हुए ओंकार को सुनने में सक्षम हो जाते हैं।

धन्यवाद! जय ओशो!
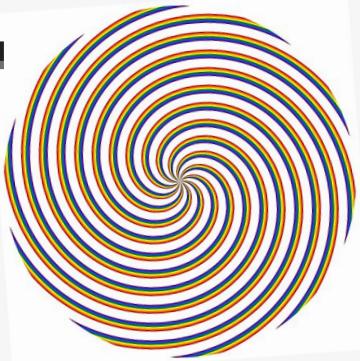
प्यारे मित्रो, नमस्कार! जय ओशो!

प्रश्न– हर इंसान जीवन में बहुत कुछ चाहता है। सभी मनुष्यों की एक से अधिक चाहतें होती हैं। तो क्या एक समय में हमें किसी एक की ही संकल्पना करनी चाहिए या फिर एक साथ एक से अधिक संकल्पनाएं भी कर सकते हैं? इस पर थोड़ा प्रकाश डालें।

बुज़ुर्गों से एक पुरानी कहावत सुनी होगी, बड़ी सार्थक है–

'एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाए।'

इसका अर्थ है कि हमारी कई इच्छाएं हैं। अगर हम सभी को एक साथ पूरी करने की कोशिश करेंगे, तो कहीं ऐसा न हो कि एक भी पूरी न हो पाए। प्रगाढ़ आकांक्षा ही संकल्पना बन सकती है। यदि आपकी बहुत सी इच्छाएं हैं, तो उनमें से खोजें कि किसमें ज़्यादा बल है? कौन–सी इच्छा शक्तिशाली है? क्या वह इच्छा 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' है? क्या वह इच्छा स्वयं के लिये और सभी के लिये हितकारी व कल्याणकारी है? क्या वह इच्छा पूरी करने योग्य है? अगर ऐसा है, तो बिल्कुल ठीक उस एक चीज़ पर अपनी सारी ताक़त लगा दें। इसे एक उदाहरण से समझें। जब तक सूरज की रोशनी बहुत से बिंदुओं पर फैली रहती है, तब तक इससे अग्नि पैदा नहीं होती। लेकिन यही धूप अगर हम लैंस से किसी एक बिन्दु पर फ़ोकस कर दें, तो यह लकड़ी या काग़ज़ में आग लगा सकती है। दुनिया में अधिकांश लोग फैली हुई धूप की

तरह बड़े कुनकुने–कुनकुने से जी रहे हैं। अगर हम अपनी इच्छाओं पर कंडैंस्ट हो जाएं, तो हम पाएंगे कि अचानक अग्नि पैदा हो गई। शक्ति मिलते ही हमारी वह संकल्पना पूरी हो गयी। तो आपने कहा कि चाहतें तो बहुत है। यह स्थिति सभी लोगों की है कि बहुत सारी कामनाएं हैं। लेकिन जिस कामना के पीछे शक्ति जुड़ेगी, वही संकल्पना बनेगी। बहुत सारी कामनाएं शक्तिहीन होती हैं। न ही उनमें कुछ ताक़त होती है और न ही उनका कोई अर्थ होता है। उनमें बहुत समय ख़राब होता है।

मान लीजिए कि एक आदमी किसी चौराहे पर खड़ा है और उसके मन में कई इच्छाएं हैं। वह चाहता है कि उसके बाईं तरफ एक सुंदर मूर्ति है, वह भी देख ले और दाहिनी ओर एक भव्य इमारत बनी है,वह भी देख ले। उसे सामने वाली रोड पर भी जाना है और पीछे वाली रोड पर भी जाना है। ऐसे तो बात नहीं बनेगी ना! जाना तो एक ही दिशा में होगा। हम सब दिशाओं में एक साथ तो नहीं जा सकते। हाँ, ये बात ठीक है कि आप तय कर लीजिए कि किस तरफ़ जाने की सबसे ज़्यादा इच्छा है? पहले पूरी ताक़त से, टोटैलिटी से उस तरफ़ चलें। जब आप वहाँ पहुँचने में सफल हो गये, तो फिर आप दिशा परिवर्तन कर सकते हैं। एक लक्ष्य पाने के पश्चात् आप दूसरा लक्ष्य चुन सकते हैं। बस ऐसे ही कॉमनसैंस से चलिए। आपकी जो भी इच्छा आपके लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, पहले उस पर काम करिए। फिर प्रमुखता के अनुसार आगे बढ़िये। सब चीज़ों पर एक साथ कार्य करेंगे, तो उसमें कुछ भी नहीं हो पायेगा।

मैं आपको एक ऐसे सज्जन के विषय में बताता हूँ, जिनसे क़रीब दस साल पहले मेरी मुलाक़ात हुई थी। उन्होंने बताया कि उनकी दो गर्लफ़्रैंड हैं और तीसरी लड़की से बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ है। फिर उन्होंने पूछा कि आप ही बताएं कि किससे शादी करूँ? मैंने कहा कि मैं कैसे बता सकता हूँ? आपकी तीन–तीन गर्लफ़्रैंड हैं और आगे भी होने वाली होंगी। उन्होंने कहा कि कुछ कह तो नहीं सकते, लेकिन भविष्य उज्ज्वल ही नज़र आ रहा है। उन सज्जन की अभी तक शादी नहीं हुई। ये जिस तरीक़े से चल रहे हैं, इससे कोई मंज़िल हासिल नहीं होगी, बल्कि समय ही ख़राब होगा। अगर हम किसी को पूरे प्राणों से चाहते हैं और हमें उसके सामने कोई दूसरा नज़र नहीं आता, तभी हम उसे सच्चा प्यार कहेंगे। अगर पहले से कई ऑप्शन्स बने हुए हैं, तो इसका मतलब है कि इन्हें किसी से प्रेम नहीं है। ये सज्जन कहते ज़रूर हैं कि इनकी कई गर्लफ़्रैंड हैं। लेकिन मैं समझता हूं कि इनकी एक भी गर्लफ़्रैंड नहीं है और न ही कभी होगी। इस प्रकार का खंडित व्यक्तित्व वाला आदमी, जिसका मन हमेशा टुकड़ों में टूटा हुआ है; ये कभी किसी को प्यार नहीं कर सकेगा। ठीक इसी प्रकार आप अपनी कामनाओं को देखें कि वास्तव में कौन–सी कामना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है? पहले उस एक चाहत को ठीक से पूरा करें। बाक़ी चाहतों को फ़िलहाल भूल जाएं।

प्रश्न– मेरी उम्र बारह साल है और मेरा सपना वकील बनने का है। किंतु घर परिवार के लोग कहते हैं कि तुम्हें अध्यात्म की तरफ़ जाना चाहिए। तो क्या आध्यात्मिक होने के लिये मैं अपने इस सपने को न्यौछावर कर दूँ? कृपया समाधान करें।

इस प्रश्न में एक दूसरे डायमैंशन की बात आ गई। एक दूसरा आयाम, जो हमें अपने भीतर ले जाता है। आपने जो बताई, ये दोनो चीज़ें एक साथ हो सकतीं हैं। बाहर आप ख़ूब मन लगाकर पढ़ाई करें और वकील बनने की दिशा में मेहनत करें। वहीं भीतर आप ध्यान और समाधि में डूबें, जिसे हम स्पिरिचुवैलिटी कहते हैं। ये दोनों बातें एक साथ संभव हैं। इनमें कोई आपसी विरोध नहीं है। जैसे मैंने अभी–अभी एक उदाहरण दिया कि आप चौराहे पर खड़े हैं, तो एक ही दिशा में जा सकते हैं। चारों दिशाओं में आपस में विरोध है। लेकिन किसी भी दिशा में जाते हुए आप ध्यानपूर्ण, होशपूर्ण व प्रेमपूर्ण हो सकते हैं। इसमें कोई विरोध नहीं है। एक आयाम बाहर का है और एक आयाम भीतर का है। ये दोनों इकट्ठे साईमलटेनियसली मौजूद हैं। इन दोनों में एक साथ गति हो सकती है। आप यह नहीं कह सकते कि बाईं तरफ की रोड पर जाने से ध्यानपूर्ण कैसे होऊंगा? कोई भी कर्म करते हुए आप ध्यानपूर्ण हो सकते हैं। तो इस बात को ठीक से समझ लें कि अध्यात्म और संसार में विरोध नहीं है। हाँ, सांसारिक इच्छाओं में आपस में विरोध हो सकता है। जैसे कोई सोचे कि मैं वकील भी बन जाऊं, इंजीनियर भी बन जाऊं, डॉक्टर भी बन जाऊं और एक्चुअली तो सी.ए. बनना ही है।

यह सोचना कि सब चीज़ें एक साथ कर लूँ, यह क़रीब–क़रीब असंभव है। इनमें आपस में विरोध है। यह सब एक साथ नहीं हो सकता। इनमें से एक होना भी अपने आपमें कठिन है। अगर किसी ने यह सब कर भी लिया, तो उसके लिए बड़ी मुसीबत हो जाएगी। अगर आपके मन में स्पष्ट धारणा है कि लॉयर बनना है, तो आप उसी दिशा में चलें। परिवार वाले जो कह रहे हैं, वह भीतर की दिशा है। इससे आपके लक्ष्य में कोई रुकावट नहीं आएगी। बाहर आप जो करना चाहते हैं, वैसा अवश्य करें। लेकिन साथ–साथ ध्यान व समाधि की साधना करते चलें। भीतर शांत, प्रेमल एवम् होशपूर्ण बनें। इनमें कोई विरोध नहीं है। आप चाहे वकील बनें, डॉक्टर बनें या कम्प्यूटर साईंटिस्ट बनें; कोई भी कर्म करते हुए आप ध्यानपूर्ण, होशपूर्ण व प्रेमपूर्ण हो सकते हैं।

बड़ी हैरानी की बात है कि हज़ारों–हज़ारों सालों से संसार और अध्यात्म का आपस में विरोध समझा जाता रहा है। बड़ी विचित्र स्थिति है कि जहाँ विरोध नहीं है, वहाँ सारी दुनिया विरोध देखती रही। आप साधारण वस्त्र पहनें अथवा बहूमूल्य परिधान धारण करें, इनका ध्यान से कोई विरोध नहीं है। आप किस प्रकार अपनी

आजीविका कमाते हैं? इसका भी ध्यान से कोई विरोध नहीं है। लेकिन हज़ारों–हज़ारों सालों से हमें यही समझाया गया है कि अध्यात्म में जाने के लिये संसार का बलिदान करना होगा। हमें यही लगता है कि घर–गृहस्थी, बीवी–बच्चे, माता–पिता, भाई–बहन, यहाँ तक कि सारे समाज को छोड़ो, तभी अध्यात्म की ओर यात्रा संभव है। जबकि असल बात कुछ और ही है। सद्‌गुरु ओशो ने एक आध्यात्मिक क्रांति प्रस्तुत की। उन्होंने इस बात को पूरी तरह स्पष्ट किया है कि संसार और परमात्मा में विरोध नहीं है। अध्यात्म और विज्ञान में विरोध नहीं है। इसीलिये आप देख रहे हैं कि उन्होंने एक नये प्रकार के संन्यास की शुरूआत की। 'गृहस्थ होते हुए भी संन्यस्थ', ये एक बिल्कुल नयी बात थी। उन्होंने अपने शिष्यों को संसार से भागने को नहीं कहा है। उन्होंने तो कहा है कि संसार में मज़े से जीओ। हाँ, ज़रा होशपूर्वक! ताकि पूरा–पूरा मज़ा ले सको। ज़्यादा संवेदनशील! ताकि पूरा आनंद उठा सको। शांत और प्रेमपूर्ण! ताकि वास्तव में तुम्हारा जीवन सुखदायी हो। अध्यात्म और संसार तो आपस में परिपूरक हैं। इनमें कोई आपसी विरोध नहीं है। आपके परिवार वाले जो कह रहे हैं कि तुम्हें अध्यात्म के रास्ते पर चलना है, यह बात अति उत्तम है। लेकिन जो तुम्हें लगता है कि इसके लिए सांसारिक इच्छाओं का त्याग करना होगा, यह बात बिल्कुल ग़लत है।

संसार में कुछ न कुछ तो करना ही होगा। अभी तो तुम्हारी उम्र बारह साल ही है। अभी तो तुम्हें ख़ूब अच्छे से पढ़ाई–लिखाई करनी है। निश्चित रूप से यह भी चुनना होगा कि आगे चलकर क्या पढ़ना है? यदि आपके मन में स्पष्ट ख्याल है कि वकील बनना है, तो बिल्कुल वैसा ही करें। हाँ, ध्यान रहे कि अध्यात्म भी उसके समानान्तर चलता रहे। इन दोनों बातों में कतई विरोध नहीं है।

ओशो ने अपने संन्यासी के लिये जो आदर्श रखा है, वह है– 'ज़ोरबा द बुद्धा'। 'ज़ोरबा' ग्रीक उपन्यास का एक पात्र है, जो पूरी तरह भौतिकवादी है। उसे धर्म से कुछ लेना–देना नहीं है। वह संसार को सुख–सुविधापूर्वक जीना चाहता है। 'बुद्ध' शब्द गौतम बुद्ध की ओर इशारा करता है। तो 'ज़ोरबा' संसार में धन का प्रतीक है और 'बुद्धा' अध्यात्म में ध्यान का प्रतीक है। अतीत में ये दोनों ही अधूरे–अधूरे रहे हैं। जो लोग संसार में उत्सुक थे, उन्होने अध्यात्म को छोड़ दिया, और जो अध्यात्म में उत्सुक थे, वे लोग संसार से पलायन कर गये। इससे बड़ी भारी भूल हो गई। हज़ारों सालों तक लोगों का यही दृष्टिकोण चलता रहा और करोड़ों लोग इसमें इनवॉल्व्ड रहे।

अगर कोई चीज़ हज़ारों साल से चल रही है, तो फिर हम ग़ौर ही नहीं करते कि कहीं इसमें कोई बेसिक फॉल्ट तो नहीं है। क्या आपके मन में कभी यह प्रश्न उत्पन्न हुआ है कि जो साधु–संन्यासी हैं, उनसे कुछ भूल हुई है? नहीं, ऐसा कभी नहीं लगा होगा। हज़ारों वर्षों से जो चीज़ चल रही है, उसपर संदेह होना बंद हो जाता है। हम सोचते हैं

कि जब सभी लोग ऐसा कर रहे हैं, तो यही ठीक होगा। अच्छा हुआ कि आपने यह सवाल उठा लिया। तो आप संसार में जो करना चाहते हैं, अवश्य करें। लेकिन साथ–साथ ध्यान साधना भी करें।

प्रश्न– मैं नेपाल की एक फार्मा कम्पनी में ऑफिसर के रूप में पिछले पाँच सालों से कार्य कर रहा हूँ। मैं अपने जॉब से बहुत संतुष्ट हूँ। लेकिन मैं विश्वासपूर्वक अपने विचार किसी के सामने नहीं रख पाता। सैल्फ़ कॉन्फ़िडैंस बढ़ाने का उपाय बताएं।

सैल्फ़ कान्फ़िड़ैंस अपने आप नहीं आएगा। इसके लिए उस कार्य को करना होगा। सामान्यतः हम लोग सोचते हैं कि जब हमारे भीतर आत्मविश्वास होगा, तब हम कोई कार्य करेंगे। सोचनेमात्र से तो वह कार्य कभी भी नहीं होगा। हमारे भीतर डर व संकोच के बावजूद भी हमें कार्य शुरू करना चाहिए। हो सकता है पहली बार सफलता न मिले। लेकिन प्रयास करते–करते जब हम उस कार्य में निपुण हो जाते हैं, तो परिणामस्वरूप सैल्फ़ कान्फ़िड़ैंस आ जाता है। जब भी हम कोई नया काम शुरू करेंगे, तो थोड़ी हिचकिचाहट तो होगी और कुछ भय भी होगा। हम एक मनुष्य हैं, तो ऐसा होना बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन इसकी वजह से रुक जाना ठीक नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन तैरना सीखना चाहता था। उसके गाँव में एक सज्जन थे। उन्होंने कहा कि मैंने कई लोगों को तैरना सिखाया है। चलो, नदी किनारे चलते हैं। मैं तुम्हें तैरना सिखाता हूँ। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं बहुत डरपोक आदमी हूँ , इसलिए पहले मुझे सब समझा दीजिए। मैंने पढ़ा है कि तैरना सीखते हुए कई बार लोग नदी में डूबकर मर जाते हैं। उसके शिक्षक ने कहा– 'हाँ, कभी–कभार ऐसा होता है।' यह सुनते ही नसरुद्दीन के तो हाथ–पैर कांपने लगे। उसने कहा–'कभी–कभार होता है, आप कन्फ़मर्ड कह रहे हैं?' शिक्षक ने कहा– 'हाँ, ऐसा हो सकता है। लेकिन तुम चिंता मत करो। मैं नदी के किनारे पर ही खड़ा रहूँगा। अगर ऐसा कुछ होगा, तो मैं तुम्हें एकदम से बाहर खींच लूँगा।' नसरुद्दीन बेचारा डरता–डरता नदी किनारे पहुँचा। वहाँ पत्थर की बनी हुई सीढ़ियां थीं और पत्थरों पर काई जमी हुई थी। तो जैसे ही उसने पहली सीढ़ी पर पैर रखा, वह काई में फिसल गया। वह एकदम उठा और घर की तरफ़ भागा। जो शिक्षक उसे सिखाने आये थे, उन्होंने कहा– 'मुल्ला कहाँ भाग रहे हो? अभी तो नदी में उतरे ही नहीं। अभी तो केवल पहली सीढ़ी पर ही पैर रखा है।' नसरुद्दीन ने कहा– 'बस, बाय–बाय! ये तो बहुत ख़तरनाक मामला है। अब तो इस तरफ़ कभी फटकूंगा भी नहीं। जब तक मैं तैरने में पूरा कान्फ़िड़ैंट न हो जाऊँ और एक कुशल तैराक न बन जाऊँ; तब तक मैं पानी के पास आऊँगा भी नहीं।' कोई सोचे कि मैं तैरना

सीखना चाहता हूँ। लेकिन पानी में तभी उतरूँगा, जब भली-भांति तैरना सीख जाऊँगा। तो फिर कुशल तैराक कैसे बनोगे? पानी में जाए बिना कैसे सीखोगे कि तैरना कैसे है? क्या घर में बिस्तर पर लेटकर हाथ-पैर चलाओगे? ओशो ने एक जगह मज़ाक़ में कहा है कि सबसे ख़तरनाक जगह पलंग है। अधिकांश लोग पलंग पर ही मरते हैं। फिर चाहे वह पलंग घर का हो या किसी अस्पताल का। इस वजह से क्या आप पलंग पर सोना बंद कर देंगे? सड़क पर एक्सीडैंट होता है, तो क्या आप सड़क पर निकलना बंद कर देंगे? अगर घर में बैठे हैं और भूकम्प आ जाए, तो क्या हम स्वयं को बचा पाऐंगे? क्या-क्या नहीं करेंगे? मेरी बात समझ रहे हैं न आप! पहले शुरूआत करनी होगी।कान्फ़िड़ैंस बाद में आयेगा। भय व घबराहट के बावजूद जब हम हिम्मत करके पानी में घुसते हैं और सिखाने वाला जैसा कह रहा है, वैसा करते हैं; तो भी एक-दो बार कभी नाक-मुँह में पानी घुसेगा। लेकिन जब हम दोबारा हिम्मत करेंगे, तो डुबकी लग जायेगी। हम ये नहीं कह रहे हैं कि एकदम से समुद्र में तैरना सीखो। शुरूआत में स्विमिंग पूल में, उथले पानी में या नदी के किनारे-किनारे सीखना। ऐसी जगह अभ्यास करना कि डूबने लगो, तो खड़े हो सको। इस प्रकार धीरे-धीरे हिम्मत बढ़ेगी। फिर थोड़े गहरे में जायेंगे, तो कान्फ़िड़ैंस बढ़ेगा। एक दिन तुम वहाँ भी तैरने लगोगे, जहाँ पैर ज़मीन को नहीं छूते। इस बात के प्रति ख़ूब सावधान रहना कि यह सब धैर्यपूर्ण होकर करना होगा। इसके लिए हमें कान्फ़िड़ैंस की नहीं, साहस की ज़रूरत है।

प्रश्न- जब भी मैं ध्यान करने बैठता हूँ, तो बहुत से विचार आने लगते हैं और मैं उनमें शामिल हो जाता हूँ। क्या करूं कि मैं इनमें शामिल न होऊं बल्कि इनका साक्षी बन सकूं?

यदि हम विचारों को महत्त्वपूर्ण मानते हैं, तो हम उसमें बह जाते हैं। असली सवाल यह नहीं है कि विचार क्यों आते हैं? असली सवाल तो यह है कि हम उन विचारों में क्यों बह जाते हैं? इसको समझ लें, तो मामला आसान हो जायेगा। मैं आपको एक नया प्रश्न देता हूँ। ज़रा इस बात पर ग़ौर कीजिए कि चौबीसों घंटे हमारे भीतर जो विचार चलते रहते हैं, क्या ये वाक़ई इतने इंपोर्टैंट है? क्या इनसे हमें कुछ हासिल होता है? पूरा दिन आपके भीतर जो मोनोलॉग चलता रहता है, क्या इसकी कोई यूटिलिटी, कोई उपयोगिता है। एक हफ़्ते के लिये इस पर ग़ौर करिए। यह तय कर लीजिए कि दिनभर में तीन-चार बार आप अपने विचारों को डायरी में नोट करेंगे। यह भी नोट करना कि पिछले तीन-चार घंटे में ऐसे कौन-कौन से विचार आए, जिनका आपकी ज़िंदगी में कोई ख़ास मतलब नहीं है। हफ़्तेभर डायरी लिखने के बाद आप हैरान होंगे कि वही की वही बातें बार-बार, बार-बार रिपीट होती रहती हैं।

चौबीस घंटे में एक–दो बातें ही काम की होती हैं। वह एक–दो बातें भी ऐसी होती हैं, जो आपको ऑलरेडी पता हैं। इनके अतिरिक्त बाक़ी सब बातें बिल्कुल अनर्गल, महत्त्वहीन और इरैलिवैंट होती हैं। लेकिन हम उन्हें बहुत इंम्पोर्टैंट मान रहे हैं। जैसे ही इस बात के प्रति आप स्वयं जागरूक होंगे, तब आपको पता चलेगा कि ये कूड़े–कचरे का ढेर है। फिर आपको इन सब बातों में कोई रस नहीं आएगा। आप द्रष्टा बन कर, साक्षी बन कर इससे दूर खड़े हो जायेंगे।

प्रश्न– हम मन के किस तल से सपने देखते हैं? उन्हें रोकने का क्या उपाय है?

मन के अवचेतन हिस्से से सपने देखे जाते हैं और मन के चेतन हिस्से से विचार चलते हैं। अभी–अभी मैंने मन को विचारों से मुक्त करने की विधि कही। यह विधि बहुत आसान है। लेकिन आपने जो सवाल पूछा है, ये ज़रा कठिन है। आप सपनों को रोकने का उपाय पूछ रहे हैं। जब हम चेतन अवस्था में सचेत होते हुए भी विचारों के साक्षी नहीं हो पा रहे हैं, तो रात को निंद्रा में सपनों के साक्षी भला कैसे होंगे? यह तो बहुत दूर का लक्ष्य है। जब हम उथले पानी में भी नहीं तैर पा रहे हैं, तो भला गहरे पानी में कैसे जायेंगे? 'अवचेतन–मन' यानि 'गहरा पानी' और 'चेतन–मन' यानि 'उथला–उथला जल।' कृपया सपनों से शुरूआत न करें। सपनों से शुरूआत करने पर द्रष्टा–भाव साधना संभव नहीं हो पाएगा। प्रैक्टिक्ली हमेशा वही करिए, जो संभव है। जैसा मैंने पहले भी कहा है कि समुद्र में तैरना नहीं सीखना है। तैरना तो कहीं उथले पानी में ही सीखना होगा। चेतन–मन उथला पानी है। पहले चेतन–मन में द्रष्टा–भाव सध जाए और आप निर्विचार जागरूकता में जीने लगो, तब सैकंड स्टैप आएगा। रात्रि में सोते समय आप यह भाव करके सोएं कि मैं सपनों को भी दूर से देख पाऊंगा। यह सोच कर सोएं कि सपने में जैसे ही गुलाब का फूल दिखेगा, मैं जागरूक हो जाऊंगा। अगर आप रोज़ रात को सोते समय पंद्रह–बीस मिनट यही भाव करके सोयें, तो तीन–चार दिन बाद आप पायेंगे कि सपने में गुलाब का फूल प्रगट हुआ। जैसे ही गुलाब का फूल प्रगट होगा, आप पायेंगे कि आप एक भिन्न प्रकार के जागरण में पहुँच गये। अचानक वह सपना भी ख़तम हो गया और गुलाब का फूल भी विदा हो गया। अगर कुछ बचा है, तो वह है– आपकी जागरूकता। जैसे मैंने विचार–रहित होने की विधि कही, उसी प्रकार स्वप्न–रहित होने की भी विधियाँ हैं; किंतु ये बहुत जटिल और कठिन हैं। इनसे शुरूआत मत करिए। विचार–रहित होने की विधियों से शुरूआत करिए।

प्रश्न– मैं कल से सम्मोहन का प्रयोग कर रहा हूँ लेकिन सफलता नहीं मिल रही। भीतर कूप नहीं बन पा रहा है। कृपया मार्गदर्शन करें।

सफलता की चिंता छोड़ो। सम्मोहन के प्रयोग में सफलता प्राप्त करने के लिए तीन प्रकार की चीज़ें उपयोग में लाई जा सकती हैं। जिनमें से एक है– 'अतीत की स्मृति।' कुछ लोगों की यादगार बड़ी मज़बूत होती है। वे कोई चीज़ याद करें, तो फिर से वैसा ही विज़ुअलाईज़ कर लेते हैं। ठीक इसी प्रकार कुछ लोग वर्तमान में जीते हैं। उनके लिए **हिप्नोडिस्क** (हिप्नोसिस स्पायरल) उपयोगी है। इसे देखकर उन्हें गहरे कुएँ जैसा एहसास हो सकता है। और तीसरे प्रकार के लोग हैं– 'कल्पनाशील।' जो इमैजिन कर सकते हैं। जो चीज़ उन्होंने नहीं देखी, उसका वर्णन भी कर दो; तो कल्पना द्वारा उसे अपने भीतर रच लेते हैं। ये तीन प्रकार के लोग हैं। तो कुछ लोग पास्ट ओरिएंटिड हैं, कुछ फ्यूचर ओरिएंटिड और कुछ हैं प्रैज़न्ट ओरिएंटिड। इन तीनों में से किसी एक में आपको ज़रूर सफलता मिलेगी। हो सकता है कि आप ट्राई कर रहे हों, इसलिये सफलता नहीं मिल रही। अगर एक कल्पनाशील व्यक्ति कुछ याद करने की कोशिश करेगा, तो उसे बड़ी मुश्किल होगी। उसको याद नहीं आयेगा। भविष्य के प्रति खुले व्यक्ति सदा अतीत से मुक्त रहते हैं।

एल्बर्ट आईंस्टीन के बारे में आपने सुना होगा। वह बड़ा इनोवेटिव माईंड वाला व्यक्ति था। वह हमेशा ही कुछ नया करने की सोचता था। जो व्यक्ति नए की तरफ़ रुख़ करता है, उसका अतीत छूट जाता है। तो अल्बर्ट आईंस्टीन से किसी ने पूछा कि शिक्षा के बारे में आप के क्या विचार हैं? आईंस्टीन ने जो बात कही, वह बड़ी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि अगर हम चाहते हैं कि बच्चे वैज्ञानिक, आविष्कारक व खोजी प्रवृत्ति के बनें, तो हमें उनके दिमाग़ में कम से कम सूचनाएँ डालनी चाहिएं। उनका कहना बिल्कुल सही था। जो बात किताबों में लिखी हैं, उसे दिमाग़ में डालने की ज़रूरत नहीं है। मन को हल्का–फुल्का व निर्भार रहने दो। याददाश्त जितनी कम होगी, मन उतना ही ज़्यादा इनोवेटिव हो पायेगा। हमारी सारी शिक्षा–पद्धति यादगार बढ़ाने पर ज़ोर देती है।

आजकल बच्चे कुछ भी समझने से अधिक रटने पर ज़ोर देते हैं और फिर वही रटे–रटाये उत्तर परीक्षा में लिखते हैं। इस प्रकार धीरे–धीरे हम बच्चों की इंटैलिजैंस को ख़तम कर रहे हैं। विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोग करने के लिए दुनिया में कई विश्वविद्यालय और रिसर्च डिपार्टमैंट चल रहे हैं। सारी दुनिया के विश्वविद्यालयों में चल रहे शोध–कार्यों पर हर वर्ष अरबों–खरबों डॉलर ख़र्च होता है। पर मज़े की बात तो यह है कि यूनिवर्सिटी में चल रहे इस रिसर्च प्रोजैक्ट से कभी भी कुछ उपयोगी बात हासिल नहीं होती। इनमें से 99 प्रतिशत रिसर्च व्यर्थ जाती है। यहाँ तक कि पीएचडी की थीसिस भी वहाँ की अलमारी में दीमक व चूहों के ही काम आती है।

आश्चर्य की बात है कि इतनी सुविधा के बावजूद भी कुछ नया नहीं खोजा जाता। जो लोग कुछ नई खोजबीन करते हैं, वे इस तरह की शिक्षा–पद्धति का सहारा

नहीं लेते। आप हैरान होंगे कि आईंस्टीन खुद हाई–स्कूल पास नहीं हो पाया था क्योंकि उसे कुछ याद ही नहीं होता था। आईंस्टीन स्कूल छोड़कर भाग खड़ा हुआ था। उसके स्कूल के रिकॉर्ड में कभी किसी टीचर या प्रिंसिपल ने ये नहीं लिखा कि आईंस्टीन एक अच्छा विद्यार्थी है। उन्होंने हमेशा यही लिखा कि आईंस्टीन किसी काम का नहीं है। आईंस्टीन इज़ गुड फॉर नथिंग।

नोबेल प्राईज़ जीतने वाले रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी हाई–स्कूल पास नहीं किया था। याद रखना! अगर वे हाई–स्कूल पास हो गये होते, तो बेचारे कहीं प्राइमरी स्कूल में टीचर होते। फिर उन्हें नोबेल प्राईज़ नहीं मिलता। हमारी शिक्षा–पद्धति बिल्कुल पास्ट ओरिएंटिड है। यह पूरी तरह स्मृति पर आधारित है। लेकिन इंटैलिजैंस सिर्फ़ यहीं तक नहीं है। इंटैलिजैंस तो तीनों हिस्सों में काम करती है। स्मृति, इंटैलिजैंस का लोएस्ट फंक्शन है। सर्वाधिक इंटैलिजैंस वर्तमान में कार्य करती है और भविष्योन्मुख होती है। जिसे हम आई–क्यू टैस्ट अर्थात् 'इंटैलिजैंस क्वोशंट' कहते हैं, वास्तव में उसे एम–क्यू अर्थात् 'मैमरी क्वोशंट' कहना चाहिए क्योंकि उस टैस्ट को पास करने के लिए कुछ ख़ास इंटैलिजैंस की ज़रूरत नहीं होती। अब तो कंप्यूटर बन गये हैं। आप जानते ही हैं कि आधा इंच की एक पैनड्राईव में कितनी इन्फ़र्मेशन होती है? हम सवा सौ लोग यहाँ बैठे हैं, हम सब मिलकर भी उतनी इन्फ़र्मेशन नहीं रट सकते। हम सब मिलकर भी इतना स्मरण नहीं कर सकते, जितना कि एक छोटी सी पैनड्राईव में संग्रहीत होता है।

स्मरण बिल्कुल कैमिकल एक्ट है। इसे हम इंटैलिजैंस समझते रहे, ये हमारी ग़लती थी। क्या पैनड्राईव को इंटैलिजैंट कहेंगे? नहीं, पैनड्राईव तो मात्र एक यंत्र है। इस प्रकार स्मृति, चैतन्य का नहीं यंत्र का हिस्सा है। तो प्यारे मित्रो! तीन प्रकार के लोग हैं। सभी को अपने–अपने ढंग से चलना चाहिए। अगर आप की स्मृति तेज़ है, तो आप स्मृति का उपयोग करें। अगर आप कल्पनाशील हैं, तो कल्पना का उपयोग करें और अगर आप वर्तमान में अधिक होते हैं, तो आपके लिये **हिप्नोडिस्क** काम आयेगी इस प्रकार तीनों ही प्रकार के लोगों को सफलता मिलेगी।

प्रश्न– निरति समाधि में उल्टा कुआँ अपसाईड डाऊन दिखता था लेकिन यहाँ पर सीधा कुआँ दिख रहा है इनमें क्या भेद है? क्या ऊपर जाते हुए सम्मोहन के प्रयोग नहीं हो सकते?

दोनों दिशाएं अलग–अलग हैं और दोनों के बीच में हमारा कॉन्शस माईंड है। इसके नीचे सबकॉन्शस और ऊपर की तरफ़ सुपरकॉन्शस माईंड है। अगर हम उल्टा कुआँ अर्थात् ऊपर की तरफ देखेंगे, तो हम सुपरकॉन्शसनैस की तरफ़, अतिचैतन्य हिस्से की तरफ़ गति करेंगे। अगर हम नीचे की तरफ़ देखेंगे, तो हम सीधा कुआँ

अर्थात अवचेतन की दिशा में अधोगमन करेंगे। ध्यान समाधि में ऊर्ध्वगमन होता है और सम्मोहन में अधोगमन होता है। दोनों दिशाएँ अलग-अलग हैं और दोनों पर एक साथ नहीं जा सकते। एक बार एक तरफ़ जाएं। फिर पलट कर दूसरी तरफ़ आ सकते हैं।

दोनों में एक साथ नहीं जाया जा सकते, वे विपरीत प्रयोग हैं। एक बार में एक साधिये और जब पूरा हो जाए, उसके बाद आप सैकंड स्टैप कर सकते हैं। इसलिये हम यहाँ भी कभी-कभी सम्मोहन के अंत में दस मिनट ध्यान कराते हैं, ताकि हम सुपर कॉन्शसनैस की तरफ मुड़ सकें। ये पूरा महल हमारा है। इसकी तीनों मंज़िलें हमारी हैं। क्यों न हम इन सब का सदुपयोग करें? सामान्यतः हम केवल बीच की मंज़िल में रहते हैं और केवल उसी को अपना घर समझते हैं। घर के बड़े हिस्से को हम भूल ही गए हैं। हमें स्मरण ही नहीं है कि नीचे और ऊपर की मंज़िल पर भी अमूल्य ख़ज़ाना छिपा है।

प्रश्न- जब हम चेतन से अवचेतन में जाते हैं, तब भी मन में विचार चलते रहते हैं, क्या ऐसा नहीं होना चाहिए? हम किस प्रकार समझें कि हम अवचेतन में पहुँच गये?

चेतन मन विचारात्मक और लिंग्विस्टिक है, जबकि अवचेतन मन चित्रात्मक और पिक्टोरियल है। जब तक आप के भीतर तीव्र गति से विचार चल रहे हैं, तब तक समझना कि आप अभी अवचेतन में नहीं पहुँचे हैं। समझ लेना कि अभी वह द्वार नहीं खुला है और आप ऊपर-ऊपर सुपरफ़िशियल लेयर में ही अटके हैं। इसलिये यहाँ संकल्पना पर इतना ज़ोर दिया जा रहा है। हम आप से चिंतन मनन करने को नहीं कह रहे हैं। हम आप से कह रहे हैं कि कल्पना करें, कीप ऑन विज़ुअलाईज़िंग।

हम जिस ख़ूबसूरत दृश्य का वर्णन कर रहे हैं, उसे सोचना नहीं है; बल्कि उसकी कल्पना करनी है। समझो हम कह रहे हैं कि आप एक बगीचे से गुज़र रहे हैं, तो इसको फ़ील करें। कल्पना करें कि जब आप बिना जूते-चप्पल के हरी-हरी घास पर चल रहे हैं, तो घास पर पड़ी ओस की बूंदों से पंजों में कैसा अहसास होता है? किसी वृक्ष के निकट से गुज़रते हुए किसी पंछी की मधुर ध्वनि कल्पना में ही सुनें। किसी बगीचे से गुज़रते हुए गुलाब व चमेली आदि फूलों की मनमोहक खुशबू का अहसास करें।

जितना ही अपने सैंस ऑर्गन्स एक्टिव करेंगे, आप पायेंगे कि उतना ही आप पिक्टोरियल वर्ल्ड में प्रवेश कर गये। सैंस ऑर्गन्स का प्रयोग करते हुए विचार नहीं चलते। जब आप अपनी पसंद का स्वादिष्ट खाना खा रहे हैं, तो उस समय विचार नहीं चलते और मन भी शांत हो जाता है। इसी प्रकार जब आप कोई अच्छी फ़िल्म देख रहे हैं और उसमें बहुत मनोहर दृश्य आ गया, तो भी आपके भीतर के विचार बंद हो जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आप देखने में पूरी तरह संलग्न हैं। इस बात को भली-भांति समझ लें कि चाहे स्वादिष्ट भोजन का रस हो, चाहे सौन्दर्य देखने का रस

हो अथवा फ़िल्म की कहानी का रस हो; वास्तव में यह रस भीतर की निर्विचार चेतना से ही आता है। बाहर की परिस्थिति ने ऐसा अवसर बना दिया कि भीतर मन शांत हो गया।

समझो एक युवक–युवती आपस में प्रेम में पड़ गये। वे लोग एक–दूसरे की मौजूदगी को इसका कारण समझ रहे हैं। वस्तुतः यह कारण नहीं है। वास्तविक कारण तो यह है कि जब वे एक दूसरे से मिलते हैं, बात करते हैं; तो उनका मन चुप हो जाता है। थोड़ी देर के लिये भीतर अद्भुत शांति छा जाती है, जिसे हम ध्यान कहते हैं। उन दोनों की मौजूदगी से निर्विचार जागरूकता घट रही है, इसलिये आनंद आ रहा है। जबकि वे सोच रहे हैं कि आनंद दूसरे से आ रहा है। इसी प्रकार स्वादिष्ट भोजन से आनंद नहीं आ रहा था। हाँ, उसे करते हुए आप निर्विचार हो गये थे, इसलिए आनंद आया था। आनंद का स्त्रोत तो हमारे भीतर है। जहाँ–जहाँ भी विचार बंद हो जाते हैं, हम एक दूसरे ही लोक में पहुँच जाते हैं। जिसकी वजह से विचार बंद हुए, हम उस चीज़ को महत्त्वपूर्ण मानने लगते हैं और धीरे–धीरे उस पर निर्भर हो जाते हैं।

सच्चाई क्या है? अगर हमें यह बात समझ में आ जाए कि यह मेरे भीतर की ही बात है, तो हम सीधा भीतर ही प्रयोग करें। जैसे मैंने कहा कि कल्पना करें कि एक सुन्दर बगीचा है, बगीचे में सुंदर फूल खिले हैं और आप हरी–हरी घास पर चल रहे हैं। जब आप इसे कल्पना में ही पूरी तरह फ़ील करेंगे, तब भी आप पायेंगे कि आप अत्यंत शांत हो गये। वह युवक अगर अपनी प्रेयसी की कल्पना भी करे, तो भी वह वैसा ही शांत और प्रफुल्लित हो जायेगा; जैसा कि वास्तव में उस स्त्री की मौजूदगी में होता है। इन दोनों बातों में फ़र्क़ नहीं होगा कि वह कल्पना है या वास्तविक। इससे क्लियर हो जाता है कि वास्तव में जो सुखदाई घटना है, वह हमारे भीतर ही घट रही है। दूसरा व्यक्ति इसका बहाना हो सकता है, कारण नहीं।

तो इस बात को ख़ूब अच्छे से समझ लें कि चेतन मन विचारात्मक और शब्दात्मक है। जबकि अवचेतन मन चित्रात्मक है। संवेदनशीलता इनके बीच का लिंक है। जैसे–जैसे हम बाहर के जगत के प्रति और भीतर कल्पना के प्रति अपनी सैंसटिविटि बढ़ायेंगे, हम पायेंगे कि हमें अवचेतन में प्रवेश का दरवाज़ा मिल गया।

धन्यवाद! जय ओशो!

प्यारे मित्रो, नमस्कार! जय ओशो!

प्रश्न– समाधि में डूबने में या सम्मोहन में जाने से शरीर में झटके से लगते हैं। यह क्या है?

झटके लगना लगभग ऐसा ही है, जैसे कार में गियर बदलते हुए कार में झटका लगता है। हमारी चेतना के कई गियर्स हैं। जिनमें एक है साधारण जागरण की स्थिति, दूसरी स्वप्न देखने की स्थिति, तीसरी स्वप्न–रहित निद्रा अर्थात् सुषुप्ति की स्थिति और चौथी अवचेतन में जागरूकतापूर्ण प्रवेश करने की अर्थात् योग–निद्रा की स्थिति। जब हम एक गियर से दूसरे गियर में जाते हैं, तो एक हल्के–से झटके का अहसास होता है और बीच में न्यूट्रल गियर से गुज़रना पड़ता है। जैसे चौराहे से चार सड़कें जा रही हों, तो किसी भी एक सड़क से दूसरी सड़क पर जाने के लिये हमें चौराहे से गुज़रना ही होगा। यही स्थिति हमारी चेतना की है।

दूसरी बात जब कोई व्यक्ति नई–नई ड्राईविंग सीखता है, तो गाड़ी में बड़े ज़ोर के झटके लगते हैं। लेकिन जब वह एक्सपर्ट ड्राईवर हो जाता है, तो झटके लगने कम हो जाते हैं। जब वह बहुत कुशल ड्राईवर हो जाता है, तो सवारी को पता ही नहीं चलता कि गियर कब बदल गया। ठीक वैसे ही जब हम सम्मोहन में या समाधि में जाने का नया–नया प्रयत्न करते हैं, तो शरीर में हल्का–सा झटका सा लगता है। लेकिन जब हम इसके अभ्यस्त हो जाते हैं, तो फिर झटके का अहसास नहीं होता।

प्रश्न– मैं बैंगलोर में कम्प्यूटर साईंस का स्टूडेंट हूँ। बचपन से मुझे हकलाने की तकलीफ़ है। मेरे पापा ने बहुत इलाज करवाये किंतु सुधार नहीं हुआ। मैं अपने करियर और जॉब को लेकर चिंतित हूँ। यह तकलीफ़ कैसे दूर होगी? मार्गदर्शन करें।

यह कोई शारीरिक रोग नहीं है इसलिये इसका इलाज किसी दवा के द्वारा संभव नहीं है। किसी भी बाहरी चिकित्सा से इसका निदान संभव नहीं है। यह एक मानसिक रोग है। जिस व्यक्ति की माँ या पिता बहुत दबंग क़िस्म के या डॉमिनेटिंग पर्सनैलिटी के होते हैं, उनके बच्चे डर की वजह से उनके सामने बोलने से बचना चाहते हैं कि कहीं डांट न पड़ जाए। जो पिता अपने बच्चे को बहुत अधिक डॉमिनेट करता है और बात–बात में आदेश देता है कि ये करो, ये मत करो; तो उसके बच्चे भयभीत हो जाते हैं। वे पिता के सामने आने से भी कतराते हैं। वे उनके सामने कुछ बोलना ही नहीं चाहते क्योंकि उन्हें पता है कि कुछ बोले और डांट पड़ी। उस तरह का व्यवहार बच्चों के मन में एक मनोवैज्ञानिक ग्रंथी पैदा कर देता है। उन्हें बोलने में घबराहट होती है और नर्वसनैस पैदा हो जाती है। धीरे–धीरे ऐसी स्थिति आती है कि वे हकलाने लगते हैं।

बच्चे जब मिडल या हाई स्कूल तक पहुँचते हैं, तब अच्छी तरह अंग्रेज़ी बोलना सीखते हैं। तब तक बचपन वाला पीरियड गुज़र चुका होता है। किशोर अवस्था में प्रवेश होने पर शिक्षकों से भी कोई ख़ास डर नहीं रहता। इसलिए शिक्षकों ने जो सिखाया, उनके सामने बोलने में नहीं कतराते। ये बच्चे अंग्रेज़ी बोलने में नहीं अटकते। मित्रों के संग उठते–बैठते हैं और गीत गाने में भी नहीं अटकते।

जिसने यह सवाल पूछा है, उसके पिता ने मुझे बताया था कि यह लड़का हिंदी बोलने में अटकता है लेकिन अंग्रेज़ी ख़ूब अच्छे से बोलता है। यह लड़का हिंदी और भोजपुरी बोलने में अटकता है क्योंकि यह इसकी मातृभाषा है। मातृभाषा में मातृ और पितृ का डर भी समाया हुआ है।

आप मेरी बात समझ रहे हैं न कि यह एक मानसिक रुग्णता है। यह गले या जीभ का कोई फ़िज़ियोलॉजिकल डिफ़ैक्ट नहीं है कि कोई स्पैशलिस्ट इसका इलाज कर देगा। यह अवचेतन मन में छिपा हुआ बचपन का भय है। अगर इन पिता–पुत्र को सामने खड़ा करके देखें, तो आप भी समझ जायेंगे कि पिता कितने डॉमिनेटिंग दिखाई ही दे रहे हैं और पुत्र बेचारा दुबला–पतला सा है। ज़रा दोनों सामने तो आइए। आइए! उस तरफ़ मुंह करके खड़े हो जाइए, ताकि सब आपके दर्शन कर सकें। अब बताइए! ये बेचारा हकलाए नहीं तो क्या करे? अपनी इस मानसिक अवस्था को सुधारने की शुरूआत अपने मित्रों से करें। अपने मित्रों से अपनी मातृभाषा भोजपुरी या हिंदी में

बात करें। उनसे तो डरने का सवाल ही नहीं है। धीरे–धीरे आपके शब्द क्लियर हो जाएेंगे और पंद्रह–बीस दिन में आप पायेंगे कि मित्रों के साथ बातचीत करना सुगम हो गया। इस प्रकार प्रयास करते–करते आप पाएंगे कि अंग्रेज़ी की तरह आप हिंदी व भोजपुरी बोलने में भी नहीं अटक रहे। हकलाने की बीमारी हमेशा एक मानसिक बीमारी होती है और यह सम्मोहन के द्वारा दूर हो सकती है। इसके अतिरिक्त भी अगर किसी प्रकार का भय हो, तो उसे भी सम्मोहन के द्वारा दूर किया जा सकता है।

फ़ोबिया या फ़ियर किसी भी चीज़ का हो सकता है। जैसे किसी को अंधेरे में जाने से डर लगता है, किसी को ऑफिस में बॉस के सामने जाने में डर लगता है और किसी को कोई नया चैलंज स्वीकारने में डर लगता है। किसी भी प्रकार का डर हो, उसे दूर करने का उपाय एक ही है। जब हम अर्धनिद्रित अवस्था में हों, तो उस समय इमैजिन करें कि जिस चीज़ से हमें भय लगता है; हम कल्पना में उस सिचुएशन को बिना डरे फेस कर रहे हैं। कल्पना तो हमारी ही है और हमें पता है कि यह वास्तविकता नहीं है। ठीक है, वास्तविक पिताजी डरावने होंगे, लेकिन कल्पना में तो पिताजी को मुस्कुराते हुए, पीठ पर हाथ फेरते हुए और शाबाशी देते हुए देख ही सकते हैं। हम देख सकते हैं कि हम उनसे अच्छे से बात कर रहे हैं। चूंकि यह कल्पना ही है, इसलिये इसमें डरने का तो सवाल ही नहीं उठता।

समझो कि किसी को अंधेरे में जाने से डर लगता है, तो इसमें घबराने की बात नहीं है। अंधरे में जाना शुरू करें। मैं नहीं कह रहा कि आप वास्तविक अंधेरे में जाने से शुरूआत करें। आप आँख बंद करके काल्पनिक अंधेरे में जा सकते हैं। आपको तो पता ही है कि यह अंधेरा आपकी कल्पना है, इसलिए अगर ज़्यादा डर लगे, तो उसी समय छोड़ देना। यह रियल सिचुएशन नहीं है और सबकुछ आपके कंट्रोल में है। आप दस–पंद्रह दिन में आसानी से इस स्थिति का सामना कर पायेंगे। धीरे–धीरे आप स्वयं को इस भांति देखें जैसे आपको बिलकुल भी डर नहीं लग रहा। फिर पंद्रह–बीस दिन के अंदर आपमें थोड़ा बहुत कॉन्फ़िडैंस आयेगा। फिर वास्तविक प्रयोग करना शुरू करें। मैं यह नहीं कह रहा कि घनी अंधेरी रात्रि में आप किसी जंगल में चले जाएं। इससे बेहतर होगा कि जब आपके घर की लाईट बुझी हो, तो थोड़ा इधर–उधर चल फिर लें। कुछ ही दिनों में आप पाऐंगे कि आपका डर पूरी तरह समाप्त हो गया।

अगर किसी को अपने माता–पिता से बात करने में डर लगता है, तो उसे शुरूआत में अपनी माँ से बात करनी चाहिए। माँ से तो उतना डर नहीं लगता होगा ना। पिताजी से बात करनी भी हो, तो फ़ोन पर बात करना–बैंगलौर टु बिहार–आमने–सामने भिड़न्त हो सकती है। झगड़ा हो सकता है। बच्चों के मन में फ़िज़िकल वायलैंस का डर रहता है। वैसे भी भारत के माता–पिता काफ़ी ख़तरनाक

क़िस्म के हैं। अमेरिका या कैनेडा में होते, तो कब के गिरफ़्तार हो गये होते और केस भी चल रहा होता। इन देशों में बच्चों पर हाथ उठाना तो दूर की बात है; अगर ज़ोर से डांट भी दिया, तो वहाँ के छोटे–छोटे बच्चे भी अपने माता–पिता के ख़िलाफ़ फटाक से पुलिस को फोन करते हैं और पुलिस उन्हें तुरंत अरैस्ट कर लेती है। भारत में फ़िलहाल यह नहीं है। पिताजी से फ़ोन पर तो बात कर ही सकते हैं। फ़ोन पर क्या बिगाड़ लेंगे? ज़्यादा से ज़्यादा फोन काट देंगे और क्या? चार छः बार ऐसा प्रयोग करना।

इससे थोड़ा और साहस बढ़ेगा। फिर आमने–सामने वार्तालाप का ऐसा विषय चुनना कि जिसमें झगड़े–फ़साद की नौबत ही न आये। मान लो कि तुम पूछोगे आज का मौसम कैसा है? तो इसमें झगड़े की तो बात ही नहीं है। अगर गरम है, तो गरम ही कहेंगे; ठंडा है, तो ठंडा कहेंगे; बरसात है, तो बरसात, और सुहावना है, तो यही कहेंगे कि अच्छा मौसम है। इसमें कोई दो राय हो ही नहीं सकती। आप पूछोगे आज कौन सा दिन है? जो दिन होगा वही कहेंगे। इसमें कोई विवाद हो ही नहीं सकता। तो ऐसे मुद्दे पर चर्चा करना, जिसमें विवाद की गुंजाइश नहीं है। कोई डिमांड मत करना।

बच्चों को सबसे ज़्यादा मुश्किल होती है क्योंकि वो माता–पिता पर निर्भर होते हैं। बचपन में उन्हें हर चीज़ अपने पिता से मांगनी पड़ती है। वे बड़े भयभीत हो जाते हैं कि जो माँगा है, वो मिलेगा या नहीं मिलेगा! अब इस युवक के मन में था कि पिताजी के पास जो चालीस हज़ार का मोबाईल है, वो इसे मिल जाय। परसों सम्मोहन में यही देखता रहा कि पिताजी अपना मोबाईल इसे दे रहे हैं और कल इनके पिताजी ने दे भी दिया। आज सम्मोहन करना कि तुम्हारे लिये कराओ–के सिस्टम ख़रीद रहे हैं, ताकि तुम मज़े से गाना गा सको। अपने मित्रों के साथ मज़े से गीत गाना। इससे तुम खुलोगे और तुम्हारा भय भी मिटेगा। अगर गाना नहीं आता, तो भी अकेले में गाते रहो। इसमें कोई भय नहीं है। धीरे–धीरे कॉनफिडैंस आ जाएगा। फिर कभी पिता के संग बैठ कर गाना। तुम्हारे पिता भी अच्छा गाना गाते हैं। तो कहना कि ज़रा जुगलबंदी हो जाए। निश्चित रूप से इसमें तो झगड़े का कोई चांस ही नहीं है। और तुम कुछ डिमांड नहीं कर रहे हो कि भयभीत हो। तुम तो संग उत्सव मना रहे हो, गीत गा रहे हो। तो धीरे–धीरे उन मोमैंट्स को अपने पिता के साथ डायलॉग में परिवर्तित करो, जहाँ तुम कुछ माँग नहीं रहे। ऐसे में मना करने की गुंजाइश ही समाप्त हो जाएगी।

उनके साथ उत्सव मनाओ, सैलिब्रेट करो, खुशियों के क्षण आपस में शेयर करो। फिर एक दिन आयेगा, जब आप अन्य परिस्थितियों में भी अच्छे से बात कर पायेंगे। धीरे–धीरे भय मिटेगा। तो कल्पना से शुरू करना। कल्पना के बाद जो प्रयोग करो, वे सीधे उस व्यक्ति से मत करना, जिससे तुम्हें डर लगता है। पहले यह प्रयोग अन्य लोगों के संग करना। जैसे परिवार के बुज़ुर्गों के साथ तुम ज़्यादा रिलैक्स हो

पाओगे। अक्सर मैंने देखा है कि दादा और पोते में काफ़ी प्रेम होता है। पिता और पुत्र में मुश्किल है। मुश्किल चीज़ को ज़रा बाद में आज़माना। दो–तीन महीने बाद जब आपका कॉन्फ़िडैंस लैवल बढ़ जाए, तो इसे पिताजी के साथ आज़माना। इस प्रकार भय कोई भी हो, लेकिन टैक्निक यही रहेगी। पहले उस भयपूर्ण स्थिति की कल्पना करना। फिर कल्पना के बाद झूठ–मूठ का ऐसा प्रयोग करना, जिसमें डर का उतना चांस न हो। फिर थोड़ा ज़्यादा, फिर थोड़ा और ज़्यादा। मैडिकल साईंस में इसे 'डिसैंसटाईज़ेशन प्रोसैस' कहते हैं।

समझो किसी व्यक्ति को ख़ास चीज़ से एलर्जी है, तो उसका इलाज किस प्रकार करते हैं? उस व्यक्ति को उसी कैमिकल का लगभग एक लाख गुना डाइल्यूटिड मात्रा में इंजैक्शन लगाया जाता है। इससे एक हल्का–सा रिऐक्शन होता है। फिर हफ़्ते भर बाद एक लाख की जगह पचास हज़ार गुना डाईल्यूश्न यानि कि पहले से डबल स्ट्रैंथ का इंजैक्शन दिया जाता है। शरीर इसे भी सह जाता है। फिर धीरे–धीरे 'डोस' बढ़ाते जाते हैं। सालभर के भीतर ऐसी स्थिति आ जाती है कि उस ख़ास कैमिकल के प्रति जो हाईपरसैंसटिविटि थी, वह समाप्त हो जाती है। तब उस चीज़ को पूरे में लिया जाता है। समझो किसी को बेसन से एलर्जी है। अगर वह इस विधि से 'डोस' लेगा, तो एक साल के बाद उसे बेसन से कोई प्रॉब्लम नहीं होगी। धीरे–धीरे 'डोस' बढ़ाई गई और शरीर एडजस्ट होता चला गया। रिऐक्शन व एलर्जी समस्या ख़तम हो जाएगी।

तो जो प्रक्रिया शरीर–विज्ञान में लागू है, वही प्रक्रिया मनोविज्ञान में भी लागू है। हम कल्पना से शुरू कर सकते हैं। यह सबसे डाइल्यूटिड डोस है और आप के हाथ में है। आपको पता है कि आप कभी भी छोड़ सकते हैं। आपको यह भी पता है कि यह कोई सचमुच का इंजैक्शन नहीं है। तो झूठ से शुरू करना। धीरे–धीरे आप वास्तविकता को भी फ़ेस करने में सफल हो जायेंगे।

प्रश्न– जब हम सद्गुरुओं का आह्वान् करते हैं, तो जो बूंद सागर में समा गई है; वह इंडिविजुअल होकर वापिस कैसे आती है?

आप भली भांति जानते हैं कि सागर से भी भाप उड़ती है और वे सारी बूंदें, जो सागर में समा गई हैं; फिर वापिस लौट आती हैं। सागर का जल तो सूरज की गर्मी से उड़ता है। हैं। लेकिन हमारी पुकार, हमारी प्रार्थना कैसे लौट आती है? जीवन सर्क्युलर है। सब चीजें वर्तुलाकार घूम रही हैं। जब हम सद्गुरुओं व करुणावान चेतनाओं को सच्चे हृदय से पुकारते हैं, तो वे आ जाते हैं। हमारी पुकार व प्रार्थना ही उनके लिये सूरज की धूप है।

प्रश्न– मृत्यु के पश्चात् व जीवन से पहले की अवस्था

के बारे में विस्तार से बताएं। मेरे पिता जी की दो महीने पहले मृत्यु हो गई है। उसके बाद से मेरा आत्मबल बहुत कमज़ोर हो गया है। आत्मबल वापिस कैसे बढ़ाऊँ?

यहाँ तो इतना समय नहीं है कि मृत्यु के पश्चात् व जीवन से पहले की अवस्था के बारे में विस्तार में बात की जाए। जब आप महाजीवनप्रज्ञा करेंगे, तो उसमें बहुत सी बातें क्लियर होंगी। मेरी एक किताब है– 'जनम से पहले, मृत्यु के बाद'। आप उसे पढ़ लीजिए। उसमें भी बहुत विस्तृत चर्चा है। लगभग एक सप्ताह तक इसी संबंध में प्रश्न–उत्तर हुए थे। उन्हीं सवालों के जवाब उस किताब में संकलित हैं। इन्होंने आगे लिखा है कि मेरे पिताजी की दो महीने पहले मृत्यु हो गई है। उसके बाद से मेरा आत्मबल बहुत कमज़ोर हो गया है। आत्मबल कैसे वापिस बढ़ाऊं? यह घटना बहुत लोगों के जीवन में घटती है। क्योंकि अक्सर हमारा बल, हमारा सहारा, हमारे माता–पिता व परिवार के बुज़ुर्गजन ही होते हैं। उन्हीं के सहारे हम बड़े हुए हैं। उन्हीं की उँगली पकड़कर हमने चलना सीखा है। उन्होंने हमें जीवन में आने वाले उतार–चढ़ावों का सामना करना सिखाया है। तो निश्चित रूप से हमारे आत्मविश्वास को बढ़ाने में उनका विशेष योगदान है। जब इनमें से कोई व्यक्ति विदा हो जाता है, तो हम ऐसा महसूस करते हैं कि जैसे हम बेसहारा हो गये हों। हमें लगता है कि हम अनाथ हो गये हैं। जो सपोर्ट हमेशा मौजूद थी, वह हमसे छीन ली गई हो।

याद रखना! माता–पिता की सपोर्ट अनकंडिश्नल है। ऐसी सपोर्ट हमें अन्य किसी से नहीं मिलती। माता–पिता के अतिरिक्त अन्य जितने भी लोग हमें सहयोग करते हैं, उन सभी का सपोर्ट कंडिश्नल है। एक पति अगर अच्छा साबित होगा, तो ही उसे पत्नी का सहयोग प्राप्त होगा, अन्यथा नहीं। पत्नी भी अगर पत्नी का रोल ठीक से निभायेगी, ठीक से घर–गृहस्थी संभालेगी, तो ही उसे पति का सहयोग मिलेगा। वरना ये सज्जन किसी दिन तलाक़ का काग़ज़ लेकर आ जायेंगे। यह संबंध अनकंडिश्नल नहीं है। यह तो एक प्रकार का व्यापार ही है। यह तो लेन–देन वाली बात हो गई कि मैं इतना कर रहा हूँ, तो इसके बदले में तुम्हें यह सब काम करना होगा। अगर आप कोई व्यापार कर रहे हैं और चार मित्र उसमें पार्टनर हैं, तो भी उसमें बहुत सी शर्तें होंगी। याद रखना! ये पार्टनरशिप कंडिश्नल है। यदि आपको लम्बे समय तक साथ रहना है, तो आपको अपनी भूमिका ठीक से निभानी होगी। वरना आपके पार्टनर आपको निकाल बाहर करेंगे।

बड़े होने के पश्चात् हम दुनिया में जो भी संबंध बनाते हैं; चाहे मित्र, चाहे पार्टनर, चाहे लाईफ़ पार्टनर अथवा सहकर्मियों के साथ, ये सारे संबंध सशर्त हैं। लेकिन जो संबंध जनम से बन गये हैं, उनमें काफ़ी हद तक बेशर्त प्रेम है। एक पुत्र अगर पिता की

निगाह में कुछ ग़लत भी करेगा, तब भी वह पुत्र ही है। फिर भी उसे किसी न किसी रूप में पिता का सहयोग मिलता ही रहेगा। पिता की नाराज़गी भी टैंपररी ही होगी। चार दिन बाद सबकुछ भूलकर वह फिर अपने बेटे को सहयोग पहुँचायेगा। ये नाराज़गी भी पुत्र को सुधारने के लिये थी, संबंध तोड़ने के लिए नहीं। एक बेटा अपनी माँ से कितना भी नाराज़ हो जाए, लेकिन ये नाराज़गी एंडलैस नहीं है। ये क्रोध की दशा जल्दी ही समाप्त हो जाती है और बेटा अपनी माँ के प्रति प्रेम और सम्मान से भर जाता है। इसी प्रकार माँ भी अपने पुत्र के प्रति पुनः वात्सल्य भाव से भर जाती है। बहुत एक्स्ट्रीम सिचुएशन में ही होगा कि कोई माँ अपने बेटे से प्यार न करे।

कभी करोड़ों में एकाध के जीवन में ऐसा होगा कि माँ और बेटे में प्रेम न हो। निश्चित रूप से जिन लोगों से हमें बेशर्त सहारा मिलता है, वे हमारे आत्मबल को बढ़ाने में बड़ा योगदान देते हैं। जब वे विदा हो जाते हैं, तो अचानक हम स्वयं को बेसहारा महसूस करते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। लेकिन हमें यहीं पर रुकना नहीं है। अपनों के विदा होने के बाद हमें आगे बढ़ना होगा और अपना स्वयं का बल पैदा करना होगा। इस बल को आत्मबल कहना भी ठीक नहीं है। 'आत्मबल' का अर्थ होता है– 'हमारा स्वयं का बल।' पिता के द्वारा मिला हुआ बल तुम्हारा आत्मबल नहीं था। इस बात को ठीक से समझो। अब तुम छोटे बच्चे नहीं हो। तुम एक परिपक्व व्यक्ति हो। अब तो तुम्हें इस योग्य होना है कि तुम दूसरों के आत्मविश्वास में सहयोगी बन सको। कब तक दूसरों से सपोर्ट लेते रहोगे? अब तो तुम्हें उन्हें सपोर्ट देना होगा, जो तुमसे छोटे, कमज़ोर और इम्मैच्योर हैं। बीच में एक ट्रैंज़िश्नल फेज़ आता है, जब हम शारीरिक रूप से परिपक्व होने के बावजूद मानसिक रूप से बचकाने रह जाते हैं। हम चाहते हैं कि हमें कोई प्रेम करे, कोई हमारा सहयोग करे। हमारा शरीर तो बूढ़ा होने लगता है लेकिन ये बचकानापन विदा ही नहीं होता। तब भी हमारे भीतर वही आकांक्षा बनी रहती है कि कोई मुझे सपोर्ट करता रहे। ऐसा क्यों? हम कब बड़े होंगे!

मैं आपके सम्मुख यह सवाल रखना चाहता हूँ कि आप कब तक दूसरों का सहारा लेने की बात करते रहेंगे? आप किसी को सहारा देने वाले कब बनेंगे? ठीक है, आपने बचपन में सहारा लिया क्योंकि उस समय आपको इसकी ज़रूरत थी। लेकिन अब ज़रूरत नहीं है। समयानुसार अपनी बदलती हुई भूमिका को पहचानें। आजकल संबंधों में जो इतना तनाव आता है, उसका कारण यह है कि बदलते हुए वक़्त और बदली हुई परिस्थितियों में भी हम स्वयं को नहीं बदलते। एक आदमी की शादी हो गई। अब वह अपनी पत्नी से वैसा ही सपोर्ट चाहता है, जैसा उसे उसकी माँ से मिलता था। यह तो संभव नहीं है। पत्नी तो पत्नी है। उसकी तुलना माँ से किस प्रकार की जा सकती है। अगर उसके भीतर यह बचकानी प्रवृत्ति मौजूद है, तो उसकी पत्नी उसे कभी

भी तृप्त न कर पायेगी। हमारी यही बचकानी प्रवृत्ति ही हमारे संबंधों के बीच क्लेश का कारण बनती है। अगर पति ने कह दिया कि तुमने भिन्डी की सब्ज़ी कैसे बनाई? मेरी माँ तो ऐसे नहीं बनाती थीं। वह तो बहुत अच्छी सब्ज़ी बनाती थीं। बस, अब उपद्रव शुरू। पत्नी नाराज़ हो जायेगी क्योंकि वह तुम्हारी माँ का रोल निभाने नहीं आयी है। उसने भिन्डी की सब्ज़ी बनाना अपनी माँ से सीखा है, तो वह तुम्हारी माँ जैसी भिन्डी कैसे बना सकती है? किंतु इस बचकानी प्रवृत्ति को तो देखो! पच्चीस साल तक तुम अपनी माँ के हाथ का बना खाना खा चुके। अब कुछ चेंज आने दोगे कि नहीं? अब परिस्थिति बदली हुई है और यह आदमी वही बचपनवाली चीज़ों की डिमांड कर रहा है। अब उस डिमांड को पूरा करना संभव नहीं है।

आप ऑफिस में नौकरी कर रहे हैं और अपने बॉस से उम्मीद करते हैं कि वह पितासदृश व्यवहार करे। अरे भई! वह ऐसा क्यों करेगा? वह पितृवत् व्यवहार करता है, मगर अपने बच्चों से। आप उसके बच्चे नहीं हो, लेकिन चाहते हो कि वह आपके प्रति दयालु रहे, सद्भाव रखे और आपकी ग़लतियों को क्षमा कर दे। आप चाहते हो कि वह आपकी भूलचूक पर आग बबूला न हो। तो कहीं न कहीं हम चाह रहे हैं कि वह पिता जैसा व्यवहार करे। ये हमारी बचकानी प्रवृत्ति है। अब हम खुद 'एडल्ट' हो चुके हैं। अब हम एक ज़िम्मेवार व्यक्ति बन चुके हैं। लेकिन हम क्यों सपोर्ट चाह रहे हैं? तो आपके प्रश्न में ही एक भूल है। आपने कहा कि आत्मबल कमज़ोर हो रहा है। मैं आपसे कह रहा हूँ कि आत्मबल जागा ही नहीं था। अभी तक तो आप पिता के बल पर ही काम कर रहे थे। अक्सर ऐसा होता है कि जब पिता प्रतिष्ठित, यशस्वी और ज्ञानी हो, तो हम उनके सहारे ही चलते रहते हैं। अधिकतर लोग एक अदृश्य उंगली पकड़ कर चल रहे हैं।

मैंने सुना है हैनरी फ़ोर्ड ने जब पहली बार कार बनाई, तो उसके कई नये-नये शोरूम खुले। एक आदमी कार ख़रीदने आया। कार पसंद आने पर उसने कहा कि थोड़ी ड्राईविंग करके दिखा दीजिए। तो ड्राईवर को साथ भेज दिया गया। कोई एक किलोमीटर दूर जाकर कार खड़ी हो गई। ड्राईवर ने कार रि-स्टार्ट करने की काफ़ी कोशिश की। लेकिन कार है कि स्टार्ट ही न हो। उस आदमी ने कहा कि जब शोरूम से निकली नई कार की ऐसी हालत है, तो मैं यह कार नहीं ले सकता । मेरा इरादा बदल गया है। उस ड्राईवर ने कहा- 'रुकिए, मैं देखता हूँ।' उसने इंजन खोल कर देखा और कहा कि क्षमा करिए, हम लोग कार में पैट्रोल डालना ही भूल गये थे। कार में कोई ख़राबी नहीं है। यह हमारी ही ग़लती है। उस आदमी ने पूछा कि अगर पैट्रोल डालना भूल गये, तो यह कार एक-दो किलोमीटर तक कैसे आयी?

कर्मचारी ने कहा कि 'एक-दो किलोमीटर तो फ़ोर्ड के नाम से ही चल जाती है।'

हम जिसे आत्मबल कह रहे हैं, वह हमारा बल नहीं, पिता का बल है, जिससे आप पच्चीस-तीस साल चल सके। अब समय आ गया है कि अपना पैट्रोल डालो।

प्रश्न– सम्मोहन प्रज्ञा समझने के लिये और घर जाकर प्रयोग करने के लिये हमें क्या करना होगा? इस संबंध में मार्गदर्शन करें। मैं महाजीवनप्रज्ञा भी करना चाहती हूँ। क्या सम्मोहन के बाद महाजीवन करना उपयोगी होगा?

हाँ, सम्मोहन के बाद महाजीवन करना उपयोगी होगा। क्योंकि उसमें सम्मोहन की ही विधियों का प्रयोग किया जायेगा। इसमें अपने लक्ष्य–प्राप्ति के लिये, अपने गोल मैनेजमेंट के लिये प्रयोग कर रहे हैं; जबकि महाजीवन में हम पूर्वजन्मों को जानने के लिये प्रयोग करेंगे। दिशा अवश्य अलग होगी लेकिन प्रयोग की पद्धति यही होगी। हमारे अतीत की स्मृतियाँ हमारे अवचेतन मन में दबी पड़ी हैं। हमारे अवचेतन मन में एक विशाल स्मृति–आलय है। हमारे भीतर एक बहुत बड़ा मैमरी बैंक मौजूद है, जहाँ जन्मों–जन्मों की यादें दबी हुई हैं। तो सम्मोहन के बाद महाजीवन करना उपयोगी होगा। फिर आपने पूछा है कि घर जाकर कैसे करना है? मैं चाहूँगा कि आप यहाँ से कुछ किताबें और सीडीज़ ले जाईये। सम्मोहन के बारे में यहाँ तीन किताबें उपलब्ध हैं। दो किताबें मेरे द्वारा लिखी हुई हैं और एक किताब मां ओशो प्रिया द्वारा लिखी हुई है। इन किताबों में अधिकतर प्रैक्टिकल और थोड़ी सी थियरैटिकल बातें हैं। थियरैटिकल चर्चा थोड़ी–सी ही है क्योंकि थियरि में हमारी बहुत उत्सुकता नहीं है। लेकिन मन का पैटर्न समझाने के लिए थोड़ी–बहुत थियरैटिकल चर्चा आवश्यक है।

इन तीन किताबों के साथ–साथ यहाँ महाजीवन के बारे में भी दो किताबें उपलब्ध हैं। एक किताब डॉ. प्रमोद के द्वारा लिखी हुई 'यादें पिछले जन्मों की' है और दूसरी उन्हीं के द्वारा अनुवादित डॉ. माइकल न्यूटन की 'आत्माओं की यात्रा' है। आप इन दो किताबों को पढ़िए। इसमें आपको ख़ूब जानकारी मिलेगी। यह जानकारी प्रयोग में डूबने में भी मदद पहुँचाएगी और इससे आपका कॉन्फ़िडैंस लैवल भी बढ़ेगा। इन किताबों के अतिरिक्त ओशो की प्रवचनमालाओं में से चुन–चुन कर सम्मोहन और पिछले जन्मों के ज्ञान के बारे में हमने एमपी थ्री भी तैयार की है, जिसका शीर्षक है– 'सम्मोहन एवं पुनर्जीवन'। इसमें लगभग 26 घंटे के हिंदी और अंग्रेज़ी के डिस्कोर्सिज़ हैं। आप अगले दो–तीन महीने में इसे पूरा सुन पायेंगे। इससे बहुत सी बातें स्पष्ट होंगी। आपके मन में जितनी स्पष्टता आती जायेगी, उतना ही गहरे प्रयोग में आप डुबकी लगा पायेंगे और अपने जीवन में रूपांतरण कर पायेंगे।

घर जाकर प्रयोग के संबंध में मैं एक बात और कहना चाहूँगा। कृपया रात को सोते समय यह प्रयोग करके सोएं। यह ऐसा समय होता है, जब आप प्राकृतिक रूप से अवचेतन की तरफ़ जा रहे हैं। दिनभर काम करते–करते हमारा कांशस माईंड थक चुका है और थोड़ी देर के लिये विश्राम चाहता है। उस समय हमारा अवचेतन–मन

टेकओवर करता है। बीच में एक ट्रैंज़िशनल फेज़ आता है, जब हम अर्धनिद्रा की अवस्था में होते हैं। वह अवस्था सम्मोहन के लिये सर्वाधिक उपयुक्त है। सम्मोहन के जितने भी प्रयोग हम यहाँ कर रहे हैं, उन सबमें हम जानबूझ कर सम्मोहन की अवस्था को लाने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन बिना हमारे किसी प्रयत्न के रोज़ रात को यह अवस्था बन ही रही है। क्यों न उसका सदुपयोग किया जाए? इसके लिए मां ओशो प्रिया की आवाज़ में संगीत सहित निर्देश वाली एक सीडी भी तैयार की गई है, जिसका नाम है– 'योग–निद्रा'। यह सीडी आप ले जाईये और इसे रात को सोते समय इसे ऑन करके सो जाईए। इस बात की बिल्कुल चिंता न करिए कि सम्मोहन में जाना है। सुझाव और संगीत सुनते–सुनते आप अपने आप ही उस अवस्था में पहुँच जायेंगे। सुनने के प्रति आपका थोड़ा–सा भी ध्यान लगा हुआ है, तो हल्का–सा होश क़ायम रहेगा। दिनभर के काम से आपका शरीर और मन थका हुआ है और नींद में जाने की प्रोसैस में है। चूंकि आप सुनने की तरफ़ ध्यान लगाए हुए हैं, तो एक सूक्ष्म होश भी बना रहेगा। शरीर सोया–सोया सा हो जायेगा और भीतर हल्का–सा जागरण होगा। अब आप योग–निंद्रा में पहुँच गये। यह सम्मोहन की वह स्थिति है, जब आप अपना लक्ष्य चुन सकते हैं। आपने अपने जीवन के जो भी लक्ष्य निर्धारित किये हैं, उनमें से सिर्फ़ एक ही लक्ष्य चुनिएगा। एक बार में एक से ज़्यादा नहीं। कम से कम तीन महीने उसी पर कार्य करना है। बस वही भाव करते–करते नींद लग जाए।

जिन लोगों को किताब पढ़ने का शौक़ है, उनके लिए तीन किताबें और बता दूं। यह किताबें सम्मोहन के ऊपर हैं। दो किताबें पिछले जन्मों की यादों से संबंधित हैं। इनके नाम हैं– 'आत्माओं का विज्ञान' और 'यादें पिछले जन्मों की'।

प्रश्न– मेरे मन में कुछ तनाव रहते हैं और शरीर में भी कुछ हलचल सी रहती है, जिससे मैं सम्मोहन में नहीं उतर पा रही हूँ। क्या उपाय है?

सबसे अच्छा उपाय है कि आप पाँच मिनट या तो तेज़ी से डांस कर लीजिए, या जॉगिंग कर लीजिए। कोई भी शारीरिक परिश्रम, जिसमें शरीर की मांसपेशियाँ थक जाएं। इसके बाद आप तीन मिनट ख़ूब तेज़ और गहरी साँस ले लीजिए। तीव्र श्वास लेने से भीतर ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ गई, जो हमें सोने नहीं देगी और शरीर तो थक गया है और नींद में जाना चाहता है। जो शरीर में हलचल हो रही थीं, वह अपने आप ही बंद हो जायेगी। तो दोनों परिस्थितियाँ बन गईं। बेहोशी भी छा रही है और होश भी मौजूद है। अभी सोना संभव नहीं है, तो भीतर हम जागृत ही रहेंगे।

बस यही परिस्थिति है, जिसमें सम्मोहन बड़ी आसानी से हो जायेगा। रात को जब हमें नींद आती है, तो उसके कई कारणों में से एक कारण अंधेरा है और दूसरा

कारण है कार्बनडाईऑक्साईड का बढ़ जाना। रात को पेड़–पौधे कार्बनडाईऑक्साईड छोड़ते हैं, जिससे नींद आती है। सुबह पेड़–पौधे ऑक्सीजन छोड़ना शुरू कर देते हैं। इसलिये सुबह पशु–पक्षी और मनुष्य जागने लगते हैं। ऑक्सीजन जगाने वाली है, इसलिये तीन मिनट तक तीव्र गहरी श्वास लीजिए। सम्मोहन से पहले शरीर को थका डालिए। तब आप पायेंगे कि एक अद्भुत संयोग बन गया। शरीर की हलचल चली गई। रैस्टलैस होने के कारण शरीर की जो मांसपेशियाँ बार–बार पोज़ीशन बदलने को कह रही थीं, वह भी फिर नहीं कहेंगी। थकावट के कारण शरीर की हलचल बंद हो जाएगी और भीतर ऑक्सीजन की मात्रा ज़्यादा होने के कारण हम सचेत व संवेदनशील रहेंगे और स्वयं को सुझाव दे सकेंगे।

प्रश्न– सैल्फ़हिप्नोसिस और हैट्रोहिप्नोसिस में क्या अंतर है? हिप्नोसिस की सर्वाधिक उपयोगी विधि कौनसी है?

'सैल्फ़हिप्नोसिस' का अर्थ है– स्वयं अपने आप को सुझाव देना और 'हैट्रोहिप्नोसिस' का अर्थ है– दूसरे के द्वारा दिये गये निर्देशों के अनुसार सम्मोहन में उतरना। इन दोनों के कुछ प्लस व कुछ माईनस पोइंट्स हैं। हैट्रोहिप्नोसिस दो प्रकार से दी जाती है– एक इंडिविजुअल सैशन में किसी एक व्यक्ति को हिप्नोसिस देना और दूसरा होता है, मास–हिप्नोसिस। इसमें कई लोगों को ग्रुप हिंप्नोसिस दी जाती है। जैसे हम यहाँ कर रहे हैं, यह मास–हिप्नोसिस ही है। थोड़ा सा समझ लीजिए कि इनमें क्या अच्छाई है और क्या बुराई है? जब कोई दूसरा व्यक्ति हमें सुझाव देता है, तो दूसरे की उपस्थिति में हमारे भीतर एक स्वाभाविक रिज़िस्टंस क्रियेट होता है। दूसरे की मौजूदगी में आप पूरी तरह रिलैक्स नहीं हो सकते।

ज़रा कल्पना करो कि एक आदमी रातको आपके घर आ गया और कहने लगा कि मैं यहाँ आपके पलंग के पास बैठा हूँ। आप चैन–से सो जाईये। मैं आपको कुछ नहीं करूंगा। क्या आप सो पाओगे? उसने गारंटी दी है कि वह कुछ नहीं करेगा। लेकिन फिर भी बड़ी मुश्किल खड़ी हो जायेगी। आप एक मिनट भी नहीं सो पायेंगे क्योंकि दूसरे की मौजूदगी हमें तनावग्रस्त करती है। तो हैट्रोहिप्नोसिस में जहाँ हिप्नोटिस्ट आपको सजेस्चन दे रहा है, वहाँ आप हंड्रड परसैंट रिलैक्स कभी नहीं हो सकते। इंडिविजुअल सैशन में जहाँ सम्मोहनविद् केवल एक क्लायंट के ऊपर काम कर रहा है, वहाँ बहुत मुश्किल होती है। ख़ासकर ऑपज़िट सैक्स के बीच में यह मुश्किल बहुत बढ़ जाती है। हमारे देश के मुक़ाबले पश्चिम में इस प्रक्रिया से गुज़रना आसान है क्योंकि भारत में सैक्शुअल एक्सप्लॉयटेशन अधिक है। यहाँ हमें भीतर यही भय लगा रहता है कि कहीं कोई सैक्शुअली एक्स्प्लोयट न कर ले। इस कारण हम रिलैक्स हो ही नहीं

पाते।

भारत में बहुत मुश्किल है, इसलिये हमने यहाँ ग्रुप हिप्नोसिस चुना। इंडिविजुअल हिप्नोसिस में समय बहुत ख़राब होता है और परिणाम भी कम आता है। इसके बजाय ग्रुप हिप्नोसिस ज़्यादा आसान है; इसमें आप ज़्यादा रिलैक्स हो पाते हैं। यहाँ डेढ़–सौ लोग बैठे हुए हैं। आपको पता है कि कुछ ग़लत नहीं होने वाला। इसलिए आप पूर्णतः विश्रामपूर्ण हो पायेंगे। सैल्फहिप्नोसिस में जब आप अपने आपको खुद ही सुझाव देते हैं, तो उसका एक प्लस पोइंट ये है कि आप रिलैक्स हो सकते हैं। किंतु इसका एक माईनस पोइंट भी है। चूंकि आप एक्टिवली इनवॉल्ड हैं, यू आर गिविंग सजेस्चन टू योरसैल्फ, तो आप विश्राम कर ही नहीं पायेंगे। जब आप सक्रिय रूप से किसी क्रिया में संलग्न हैं, जब आप सुझाव रिपीट कर रहे हैं, तो फिर नींद कैसे आयेगी? नींद जैसी अवस्था तो बन ही नहीं पायेगी। नींद जैसी अवस्था बनने के लिये पैसिविटी ज़रूरी है, एक्टिविटी नहीं। जब आप एक्टिव ढंग से खुद ही अपने–आपको सजेस्ट कर रहे हैं, तो सम्मोहन में प्रवेश करना मुश्किल है। ये इसका माइनस पोइंट है।

इन दोनों के प्लस पोइंट्स कैसे बचाएं और माइनस पोइंट्स यानि अवगुणों को कैसे हटाएं? इस पर ओशो ने बड़ी शोधबीन की और उन्होंने जो निष्कर्ष निकाला, वह बहुत उपयोगी है। उन्होंने कहा कि आप अपनी ही आवाज़ में सुझाव टेप करके उसमें अच्छा मधुर संगीत डाल कर अपनी ही सीडी बना लें। जब भी सम्मोहन करना हो, उस सीडी को प्ले करो। इस प्रकार आप रिलैक्स हो सकते हो क्योंकि आप एक्टिवली इन्वॉल्ड नहीं हो। आपको तो कुछ करना ही नहीं है। सीडी प्लेयर काम कर ही रहा है।

सीडी प्लेयर क़रीब–क़रीब ऐसा हो गया, जैसे कोई दूसरा व्यक्ति और सचमुच में दूसरा व्यक्ति है भी नहीं। इसी कारण हमने योग–निद्रा की सीडी बनाई है। ये ओशो का सजेस्चन है। दिस इज़ द बैस्ट ऑप्शन। तो हेट्रोहिप्नोसिस और सेल्फ़हिप्नोसिस दोनों में कुछ माइनस पोइंट्स हैं। लेकिन इस विधि में कोई भी कमी नहीं बची। यह सर्वाधिक उपयोगी है।

धन्यवाद! जय ओशो!

सभी मित्रों को नमस्कार! जय ओशो!

अभी हम सब यह प्यारा गीत सुन रहे थे–

'ओशो के दीवाने हम, आनंद मनाते हैं,
हँसते–नाचते–गाते हम, ध्यान में जाते हैं।'

अतीत में जिस भी प्रकार के धर्म दुनिया में प्रचलित थे, वे दुखवादी धर्म रहे हैं। रोते–चीखते, परेशान व चिंतित लोग धर्म में उत्सुक हुए। उन्होंने धार्मिक संगठन बनाए। और स्वाभाविक ही है कि जहां दुखियारे, चिंताग्रस्त, विषादग्रस्त और निराशा से पीड़ित लोग इकट्ठे होंगे, वहाँ सबकुछ निराशामय ही हो जाएगा। वहाँ हँसी, आनंद और उत्सव सब खो जाएगा। यही भूल बारंबार हुई है। फिर–फिर बुद्धपुरुष आते हैं। वे हमें झकझोरते हैं और जगाते हैं। आधुनिक युग में फिर–से ओशो ने हम सबको झकझोरा है और हमें एक आनंदवादी धर्म की धारणा दी है।

'ओशो के दीवाने हम आनंद मनाते हैं'।

क्या आप जानते हैं कि इस गीत में हमने 'दीवाने' शब्द का प्रयोग क्यों किया? ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि आनंदित व्यक्ति को लोग दीवाना ही समझते हैं। कबीर साहब का एक वचन आपने सुना होगा। बार–बार उनके दोहों में आता है– 'कहे कबीर दीवाना'। मीराबाई भी कहती हैं– 'मीरा दीवानी'। हमारे समाज में एक बहुत बड़ी भीड़

उदास व दुखी लोगों की है। इसलिए हमें समझ में नहीं आता कि मीरा व कबीर जैसे लोग आनंदित कैसे हैं? ये कैसे नाच रहे हैं? ये खंजड़ी कैसे बजा रहे हैं? यह इकतारा कैसे बज रहा है? हमें लगता है इनका दिमाग़ ख़राब हो गया है। अगर आप सड़क के किनारे खड़े होकर, गुज़रने वाले लोगों का निरीक्षण करें, तो पाऐंगे कि अधिकांश लोग उदास, चिंताग्रस्त और दुखी हैं। आप देखेंगे कि अधिकांश लोग मुँह लटकाए हुए निराशा में चले जा रहे हैं। कोई तनावग्रस्त है। कोई जल्दबाज़ी में है। कोई हड़बड़ी में है।

इन सबके बीच अगर एक व्यक्ति मुस्कुराता हुआ गुज़र रहा हो, तो आपके मन में सबसे पहला ख़्याल क्या आएगा? सबसे पहला ख़्याल यही आएगा कि इस आदमी का दिमाग़ कुछ गड़बड़ है। यह मुस्कुरा क्यों रहा है? जबकि अन्य लोगों को देखकर हमें यह ख़्याल आना चाहिए कि ये चिंताग्रस्त क्यों हैं? परेशान क्यों है? इनको तनाव क्यों है? इतना अधैर्य कैसा? ये जल्दबाज़ी कैसी? लेकिन नहीं, हमने उन्हें सामान्य मान लिया है। हमें लगता है कि वे तो ठीक ही हैं क्योंकि बड़ी भीड़ उनकी है। हज़ारों-लाखों में यदा-कदा कभी कोई मुस्कुराता हुआ व्यक्ति दिखाई देता है, तो उसे देखकर हमें संदेह उत्पन्न होता है कि ज़रूर कुछ गड़बड़ है।

इसलिए ठीक है कि मीराबाई दीवानी कहलाती हैं। ठीक ही है कि कबीर साहब खुद ही अपने आपको कहते हैं-'कहे कबीर दीवाना'। क्योंकि सारी भीड़ उन्हें दीवाना ही समझती है। इन दुखियारों की नज़र में अगर तुम हँसते हो, प्रसन्न रहते हो, आनंदित रहते हो, तो निश्चित ही तुम्हारा दिमाग़ गड़बड़ है। समझदार आदमी तो परेशान और उदास रहता है। उसके जीवन से नृत्य तो खो ही जाता है। जब हम छोटे बच्चे होते हैं, तो ख़ूब खेलते-कूदते हैं। ख़ूब गीत गाते हैं और मस्ती लेते है। लेकिन बड़े होते-होते दो-चार किताबें पढ़कर हम बिल्कुल उदास और दुखी हो जाते हैं।

इसलिए इस गीत की शुरूआत है- 'ओशो के दीवाने हम आनंद मनाते हैं।'

'आनंद' का अर्थ भी समझ लेना। 'आनंद' अर्थात् जो अकारण सुख है। सामान्यतः हम जिसे सुख कहते हैं, उसका कोई कारण होता है। किसी ने नई कार ख़रीद ली, वह ख़ुश है। किसी का विवाह हुआ है, नई पत्नी घर में आई है; तो वह प्रसन्न नज़र आ रहा है। किसी के घर में बेटा पैदा हुआ कि किसी की लॉटरी लग गयी है या कोई कौन बनेगा करोड़पति में जीत गया है। इसे सुख कहते हैं। 'सुख' का अर्थ है किसी कारण से प्रसन्नता। लेकिन जो प्रसन्नता किसी कारण से हुई है, वह जल्दी ही समाप्त भी हो जाएगी। वह ज़्यादा देर नहीं टिक सकती।

'आनंद' का अर्थ है ऐसा सुख, ऐसी प्रसन्नता, जो सदाबहार है। आई तो सदा-सदा के लिए आई। फिर कभी जाने का नाम नहीं लेती। इस बहार में कभी ख़िज़ां, कभी पतझड़ नहीं होगी।

तो प्यारे मित्रो! ध्यान में डूबकर उस परमानंद का अनुभव होता है, जिसे हमने एक बार जान लिया, तो फिर वह सदा–सदा के लिए हमारा है। वह बाहर की किसी परिस्थिति से संबंधित नहीं होता और न ही उसका कोई कारण होता है। वह अकारण सुख का नाम है।

'ओशो के दीवाने हम, आनंद मनाते हैं,
हँसते–नाचते–गाते हम ध्यान में जाते हैं।

हँसना, नाचना और गाना यह तीन बातें अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। कबीर साहब का एक वचन याद आया। उन्होंने कहा–

'दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय।'

कबीर साहब कहते हैं कि दुख में तो सभी प्रभु को याद करते हैं, ध्यान लगाने की कोशिश करते हैं, हरि–स्मरण करते हैं, लेकिन सुख के क्षणों में प्रभु को बिल्कुल भूल जाते हैं। वास्तव में दुख के क्षणों में जो लोग प्रभु को याद करते हैं, वे प्रभु को याद नहीं कर रहे हैं; बल्कि वे दुख को भुलाने की कोशिश कर रहे हैं। मंदिरों में, मस्जिदों में, मज़ारों में, चर्चों में, गिरजाघरों में, जो लोग इकट्ठे हैं, उन्हें ज़रा ग़ौर से देखना। ये खुश–मिज़ाज लोग नहीं हैं। ये तो किन्हीं परेशानियों के कारण यहाँ आए हैं। उनकी प्रार्थनाएं सुनो, तो पता लग जाएगा। ये कुछ न कुछ माँग रहे हैं। इनकी कोई इच्छा पूरी नहीं हो पाई। ये अपनी मनोकामना पूर्ति करवाने के लिए भगवान के द्वार आए हैं।

ये लोग दुखी और चिंताग्रस्त हैं। ये किसी न किसी परेशानी में हैं। ये केवल भगवान का सहारा मांगने आए हैं। वास्तव में इन्हें भगवान की याद नहीं आई, बल्कि इनकी परेशानी ने इन्हें यहाँ आने के लिए मजबूर किया है। कुछ ऐसी स्थिति बन गई है कि ये कुछ भी करने में अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं। ये लोग प्रभु का स्मरण तो कर रहे हैं, लेकिन यह स्मरण झूठा है।

कबीर साहब कहते हैं–

'दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।'

असली स्मरण, असली ध्यान, असली प्रार्थना तो सुख में होगी। जब हम प्रसन्न हैं, तब हम भगवान को धन्यवाद दे पाएंगे। वाह प्रभु! तेरी अनुकंपा है कि हम प्रसन्न हैं, खुश हैं। तूने हमें यह प्यारा जीवन दिया। हम नाचते हैं, गाते हैं, प्रसन्न होते हैं, फूल जैसे खिले हैं। हम तेरा अनुग्रह, तेरी अनुकंपा मानते हैं। सिवाय धन्यवाद के हम तुझे क्या दे सकते हैं? तेरी अनुकंपा के लिए यह धन्यवाद शब्द भी बहुत छोटा है। इसलिए हँसकर, नाचकर और गाकर हम अपने धन्यवाद को अभिव्यक्त करते हैं। सुख में सुमिरन ही कबीर साहब की दृष्टि में सच्ची प्रार्थना है।

फिर कबीर साहब कहते हैं–

'जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय।'

ऐसे व्यक्ति को फिर कभी दुख नहीं होगा। जिसने सुख में ध्यान किया हो, ऐसा व्यक्ति धीरे-धीरे परमानंद की अवस्था को पा लेगा। तो प्यारे मित्रो! जब आप प्रसन्न हों, पुलकित हों, आनंद में हों, उल्लास में हों, खुश हों, शांत हों, सद्भावना में हों; तब ध्यान लगाना। और मज़े की बात तो यह है कि तब बड़े मज़े से ध्यान लगता है। लेकिन हम लोगों ने उल्टी कोशिश की है। जब हम चिंताग्रस्त होते हैं, परेशानी में होते हैं, तब हम सोचते हैं कि ध्यान लगाएं और शांत हो जाएं। तब तो बड़ा मुश्किल है। वह तो ऐसा हो गया, जैसे सूरज उगा है और हम सूरज की तरफ पीठ करके खड़े हो गये। तब हम उस तरफ़ देख ही नहीं रहे और जब सूरज ढल गया और अंधेरा छा गया, तब हम खोज में निकलें कि प्रकाश कहाँ है? सूरज कहाँ है?

सुख का अर्थ है कि हमारे जीवन में परमात्मा का प्रकाश फैला है और हम प्रभु के काफ़ी निकट हैं। ज़रा-सी कोशिश और परमात्मा से मिलन हो जाएगा। हमारे चारों तरफ़ उसी की रोशनी व्याप्त है। जब रोशनी होती है, तब हम उसे खोजते ही नहीं। लेकिन जब हम दुखी और परेशान होते हैं, जब अमावस की अंधेरी रात होती है; तब हम पुकारते हैं कि सूरज कहाँ है? अब कहाँ से सूरज के दर्शन होंगे? अभी तो बहुत दूर है मामला। लेकिन फिर जब सुबह होगी, रोशनी हो जाएगी। फिर हम भूल जाएंगे सूरज से मिलना।

हमारी प्रार्थना, हमारा ध्यान, हमारा सुमिरन सब ग़लत समय में होता है। इसलिए प्रभु से मिलन नहीं हो पाता। हम हँसते हुए, नाचते हुए और गाते हुए ध्यान लगाना सीख जाएं, यही हमारे सद्गुरु ओशो की देशना है। यही भगवान कृष्ण का उपदेश था। यही गुरुनानकदेव जी की शिक्षा है। कबीर साहब, मीराबाई, रामकृष्ण परमहंस और चैतन्य महाप्रभु, सभी का यही उपदेश है। दुनिया में जितने ज्ञानी हुए हैं, उन सबका यही उपदेश है कि जब तुम खुश हों, प्रसन्न हों, शांत हों, प्रेमपूर्ण हों; तब ध्यानस्थ हो जाओ, तब जागरूक हो जाओ। ध्यानमग्न होने का यही असली क्षण है। इस समय प्रभु से मिलन बहुत आसान है।

इसलिए हँसते-नाचते-गाते हम ध्यान में जाएं– यही वह रास्ता है, जिससे हम प्रभु के असली मंदिर तक जा सकते हैं। लेकिन धर्म के नाम पर हमें कुछ और ही सिखाया गया है। जब हमारी आँखों में आँसू होते हैं; तब हम मंदिर की तरफ़ भागते हैं, तब हम मूर्ति के सामने घुटने टेकते हैं। जब हमारे माथे पर चिंता की रेखाएं होती हैं, तब हम आकाश की तरफ आँख उठाते हैं कि हे ईश्वर! कृपा करो। उस समय ईश्वर से हमारा संबंध नहीं जुड़ पाएगा। क्योंकि बीच में आँसू आ गये। बीच में उदासी की दीवार है। बीच में दुख खड़ा हुआ है। अभी सूरज बहुत दूर है।

तो प्यारे मित्रो! इस बात को स्मरण रखना कि जिसे भी आध्यात्मिक साधना करनी है, जिसे भी परमात्मा से मिलना है; उसे इसका सही समय खोजना होगा कि ध्यान कब करना है, और प्रार्थना कब करनी है। हमारे जीवन के प्रसन्नतापूर्ण क्षण ध्यान व प्रार्थना के लिए एकदम उपयुक्त होते हैं। एक दूसरे उदाहरण से समझें। पुराने ज़माने में पाल वाली नावें चला करती थीं। कपड़े के पाल खोलते थे और हवाएं नाव को घेर लेती थीं। जिस दिशा में हमें जाना है, अगर उसी दिशा में हवा चल रही है; तब हमें पतवार चलाने की भी ज़रूरत नहीं होती। हमें केवल नदी में अपने पाल खोल देने हैं। हवाएं ख़ुद हमें अपनी मंज़िल की तरफ़ ले जाएंगी। लेकिन हवा अगर विपरीत दिशा में चल रही हो, तब तो हम मंज़िल से और दूर चले जाएंगे। यह समय पाल खोलने का नहीं है। यह समय किनारे पर इंतज़ार करने का है। इस समय नाव को किनारे से बांध के रखना। जब अनुकूल हवाएं चलें, तब नाव में सवार होना और पाल खोल देना। तब हमें कोई मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। हवाएं ही हमें मंज़िल तक पहुँचा देंगी।

ऐसे ही अपने चित्त की प्रसन्न और दुखी अवस्था को समझना। जब हम प्रसन्न हैं, प्रेमपूर्ण हैं, सद्भाव में हैं; तो इसका मतलब है कि परमात्मा की तरफ़ जाने वाली हवाएं अनुकूल दिशा में बह रही हैं। इस समय हम बड़ी आसानी से प्रभु के द्वार तक पहुँच जाएंगे। इस अवस्था में हरिद्वार दूर नहीं है। लेकिन जब हम चिंता में है, परेशानी और दुख में हैं, हवाएं प्रतिकूल दिशा में बह रही हैं। इस समय हमारी प्रार्थना सफल नहीं होगी। इस समय हमारा ध्यान लगेगा ही नहीं। हम कितना ही लगाने की कोशिश करें, नहीं लगेगा। और मुश्किल यह है कि हम ग़लत समय पर ध्यान लगाने की कोशिश करते हैं। और फिर जब बार–बार हम असफल हो जाते हैं, तब हम एक निष्कर्ष निकालते हैं कि ध्यान बहुत कठिन चीज़ है। ईश्वर से मिलना, भगवत साक्षात्कार बहुत कठिन बात है। यह हमारे वश में नहीं है। यह तो बड़े–बड़े योगियों और तपस्वियों को होता होगा। हम जैसे साधारण मनुष्यों का ईश्वर से मिलन नहीं हो सकता।

नहीं, ऐसा नहीं है। प्रभु–मिलन तो इस कारण से नहीं हो रहा है कि हम ग़लत वक़्त चुनते हैं। प्रभु मिलन कठिन नहीं है। हमने समय ही ग़लत चुना है। हम रात्रि को सूरज के दर्शन करने निकले। जब उल्टी दिशा में हवा बह रही थी, तब हमने नाव छोड़ी। तब हम कितनी ही पतवारें चलाएं, तो भी हम हवाओं से जीत न सकेंगे और हम अपनी मंज़िल को पा न सकेंगे। प्यारे मित्रो! मैं आपसे एक छोटा–सा निवेदन करना चाहता हूँ कि हँसते–नाचते–गाते ही ध्यान करना, प्रार्थना करना। ये तीन शब्द इसलिए चुने हैं क्योंकि हमारे भीतर भी चार चीज़ों का मिलन है– सबसे बाहर हमारा शरीर है, देह। दूसरा है– हमारा मन। उसके बाद हमारा हृदय; फ़ीलिंग की जगह। और उसके भी भीतर हमारे केंद्र में है– हमारी आत्मा, परमात्मा।

जब हमें अपने केंद्र में पहुँचना है, तो हम इन तीन बिन्दुओं से शुरू कर सकते हैं। शरीर है क्रियाओं का स्थल। मन है विचारों की जगह और ह्रदय है भावनाओं की जगह। अगर हमें अपनी आत्मा तक पहुँचना है, तो इन तीन बिन्दुओं से शुरूआत हो सकती है। नाचना एक शारीरिक क्रिया है। जब हमारा शरीर पुलकित होता है, तब हम नृत्य करते हैं। गीत गाना मन की क्रिया है। जब मन प्रसन्न होता है, तब तब हम गीत गाते हैं। और तीसरा चुना है– हँसना। हँसना ह्रदय की भावना से आता है। जब हम आह्लादित होते हैं, जब हमारा ह्रदय गद्‌गद् होता है; तब हम ख़ूब हँसते हैं।

याद रखना! हँसी न तो शारीरिक क्रिया है और न ही मानसिक क्रिया। हँसी हमें मन के पार ले जाती है। जैसे मैं आपको कोई चुटकुला सुनाऊँ। चुटकुला सुनाने में क्या होता है? एक कहानी होती है। धीरे–धीरे कहानी आगे बढ़ रही है। आपका मन एक तर्कबद्ध श्रेणी में चल रहा है। आप सीरियसली सुन रहे हैं कि अब क्या होगा। फिर अचानक एक टर्निंग पोइंट आता है और आप जैसा सोच रहे थे, वैसा कुछ नहीं होता। कुछ और ही होता है और तब आपको हँसी आती है। ये हँसी मन से नहीं आती है। यह बहुत गहरे हमारे ह्रदय से आती है।

इसलिए हम कहते हैं– हँसते–नाचते–गाते हम ध्यान में जाते हैं। इसका मतलब हुआ कि तीन प्रकार से हम ध्यान में जा सकते हैं। जब हमारा शरीर स्वस्थ हो, प्रसन्न हो, पुलकित हो, जब हम एक प्रकार का नृत्य कर रहे हों, हमारे कर्म नृत्यरूपी हो गये हों। दूसरा गाते हुए हम ध्यान में जा सकते हैं। यह मन का प्रतीक है। और तीसरा मैंने कहा हँसते हुए। हँसी ह्रदय के आह्लादित होने का प्रतीक है। और जब ये तीनों ही एक पॉज़िटिव भावदशा में हों, तब क्या कहना! ऐसी भावदशा में ध्यान लगाना बहुत आसान है। तो प्यारे मित्रो, ध्यान लगाने के पूर्व भूमिका के रूप में यह भावदशा ज़रूरी है। इसमें से अगर एक भी चीज़ ठीक नहीं है, तो हमारा ध्यान नहीं लगेगा।

आपने भी ध्यान लगाने की कोशिश की होगी। अगर मन में कोई चिंता चल रही है, तो ध्यान नहीं लगेगा। अगर शरीर में कोई कष्ट या बेचैनी है, तो ध्यान नहीं लगेगा। ह्रदय में कोई निराशा है या किसी प्रकार की उदासी या ग़म है, तब भी ध्यान नहीं लगेगा। ग़लत समय पर ध्यान मत लगाना। अगर आपने सही समय पर ध्यान लगाना शुरू कर दिया, तो आप पाओगे कि ध्यान लगाना तो बहुत सरल है। ये तीन शर्तें आपसे कह रही हैं –

'ओशो के दीवाने हम, आनंद मनाते हैं,
हँसते–नाचते–गाते हम ध्यान में जाते हैं।

गीत की अगली पंक्ति है–

न तो हम दुश्मन हैं मन के, न ही शत्रु अपने तन के।

ओशो की शिक्षा है कि मन और तन से दुश्मनी मत लेना। इन दोनों का सहयोग प्राप्त करना। ये शरीर हमारा शत्रु नहीं है। और न ही यह प्रभु मिलन में बाधा हैं। लेकिन त्यागियों ने, तपस्वियों ने कुछ ऐसा ही समझाया है कि अपने शरीर को कष्ट पहुँचाओ, तपस्या करो, अपने आपको दुख दो; तब कहीं जाकर परमात्मा मिलेगा। यह बात बिल्कुल ग़लत है। शरीर को कष्ट देने से परमात्मा कैसे मिलेगा? परमात्मा तो परम माँ और परम पिता के समान है। अगर कोई बेटा अपने–आपको कष्ट दे, तो क्या कोई माँ खुश होगी? यहाँ इतनी महिलाएं बैठी हैं। आप सब ज़रा सोचिए! आपने स्वादिष्ट खाना पकाया है। आप चाहते हो कि आपका बेटा नहा–धोकर यह स्वादिष्ट खाना खा ले। लेकिन वह जाकर धूप में खड़ा हो जाए कि मैं तो गर्मी में खड़ा होऊंगा। न ही मैं नहाऊंगा और न हीं खाना खाऊंगा। ऐसे में आप क्या करोगे? आप उसे दो चांटे लगाओगे कि नालायक चल जल्दी से स्नान कर और आराम से छाया में बैठकर खाना खा। अगर परमात्मा हमें प्यार करता है, तो वह हमारी माँ जैसा व पितातुल्य है। क्या वह हमें कष्ट में देखकर खुश होगा? कभी नहीं, भूलकर भी नहीं। ये त्यागी तपस्वी सोचते हैं कि उन्हें कष्ट में देखकर परमात्मा दौड़ा–दौड़ा आएगा, तो इनकी बिल्कुल ग़लत धारणा है। अगर दौड़ा–दौड़ा आ भी गया, तो दो चांटे लगाने ही आएगा!

अगर तुम खुश होओगे, नाच रहे होओगे, प्रसन्न होओगे, गींत गा रहे होओगे, संगीत बजा रहे होओगे; तब वह तुम्हारी खुशी में साथ देने के लिए आएगा। तो न तो तन से शत्रुता साधना और न ही मन से दुश्मनी लेना। बहुत लोग अपने मन के ख़िलाफ़ हो जाते हैं। याद रखना! जिसने मन–से दुश्मनी ली, फिर वह कभी ध्यान में न डूब सकेगा।

ओशो के प्रवचन में मुल्ला नसरूद्दीन का कैरक्टर आता है। बड़ा मज़ेदार सूफ़ी फ़क़ीर हुआ। उसके सिखाने के ढंग कुछ विचित्र थे। उसकी एक कहानी मुझे अक्सर याद आती है। एक युवक उसके पास आता था और उससे कहता था कि कुछ मंत्र मुझे सिखा दीजिए। आप तो बहुत पहुँचे हुए फ़क़ीर हैं। मैं भी कुछ रिद्धि–सिद्धि चाहता हूँ। मुझे कोई मंत्र दे दीजिए।

नसरूद्दीन ने उसे बहुत समझाया कि ऐसा कोई मंत्र मुझे नहीं आता। लेकिन वह बार–बार पीछे पड़ा ही रहता कि नहीं, ज़रूर आपके पास कुछ है। एक दिन नसरूद्दीन ने अपना पिंड छुड़ाने के लिए उससे कहा कि ठीक है, मैं तुझे मंत्र देता हूँ। छोटा–सा ही मंत्र है। इसे आधी रात में पूरे 100 बार रिपीट करना होगा। आधी रात को स्नान करके, स्वच्छ वस्त्र धारण करने के बाद पूरे कमरे में अंधेरा करके और अकेले बैठकर ही मंत्र पढ़ना। ऐसा करने से तू जो चाहेगा, वहीं होने लगेगा। यह सुनते ही वह युवक भागा।

नसरूद्दीन ने कहा–'रुक तो सही, कम से कम शुक्रिया तो कह जा, धन्यवाद तो दे।' उसने कहा– 'अरे! मैं तो भूल ही गया था। आपकी बहुत–बहुत मेहरबानी, बहुत धन्यवाद। आज की रात ही मैं इसे सिद्ध कर दूंगा।' नसरूद्दीन ने कहा– 'ठीक है! लेकिन पूरी बात तो तूने सुनी ही नहीं और भागने लगा। अगर तुम यह मंत्र सिद्ध करना चाहते हो, तो याद रखना! इस मंत्र को पढ़ते हुए बंदर का ख़्याल नहीं आना चाहिए।' युवक ने कहा– 'इसमें कौन–सी ख़ास बात है? बंदर का ख़्याल क्यों आएगा? आज तक नहीं आया। बंदर–से अपना कुछ लेना–देना नहीं है। स्कूल में बायोलजी में डार्विन का सिद्धांत पढ़ा था कि मनुष्य बंदरों से जन्मा है। लेकिन हमें अपने पूर्वजों से कुछ ख़ास लगाव नहीं है। आप बिल्कुल फ़िक्र न करें। मैं आज रात को ही इसे सिद्ध कर दूंगा।' नसरूद्दीन ने कहा कि मेरा आशीर्वाद है। बस, बंदर का ख़्याल न आए। अगर बंदर का ख़्याल आया, तो फिर मंत्र सिद्ध नहीं होगा। उसने कहा कि आप बिल्कुल चिंता न करें। लेकिन जैसे–जैसे रात आने लगी, उसे बीच–बीच में बंदर का ख़्याल आने लगा। वह थोड़ा परेशान हुआ कि पहले तो कभी बंदर का ख़्याल नहीं आता था। फिर उसने सोचा कि मंत्र तो आधी रात को पढ़ना है। तब तक तो सब ठीक हो जाएगा।

आधी रात को उसने ख़ूब अच्छे से स्नान किया, नये कपड़े पहने और कमरे में अंधेरा करके बैठ गया। चार–पाँच शब्द का छोटा–सा मंत्र था। तो वह मंत्र उसने रट लिया था। वह उस मंत्र को चार–पाँच बार ही पढ़ पाया था कि अचानक उसे खिड़की से बंदर की आवाज़ आई। उसने सोचा कि इस इलाक़े में तो आज तक बंदर को नहीं देखा। फिर भी उसने टॉर्च उठाई और बाहर देखा कि पेड़ पर शायद कोई बैठा हो।

लेकिन वहाँ कोई नहीं था। उसने खिड़की बंद कर दी ताकि आवाज़ ही न आए। उसको क्या पता था कि आवाज़ भीतर मन में से आ रही है। उसने मन से शत्रुता ठान ली। उसने अपने मन से कहा कि बंदर का ख़्याल नहीं आना चाहिए। उसने खिड़की बंद कर दी। फिर–से मंत्र पढ़ने बैठा। इस बार तो दो ही बार पढ़ पाया था कि बंदर का ख़्याल आ गया। उसने सोचा कि लगता है आज मैं ठीक से नहाया नहीं हूँ। तो एक बार और स्नान कर लूं। अब तो उसे लगा कि बाथरूम में भी बंदर है और उसके साथ ही नहा रहा है। बड़ी मुश्किल हो गयी। इस बार वह रगड़–रगड़ कर नहाया।

उसने सोचा कि शायद कपड़ों में कुछ अपवित्रता हो। उसके पास एक और नई जोड़ी कपड़े रखे हुए थे। उसने सोचा कि वही पहन लेता हूँ। एकदम शुद्ध कपड़े, ताकि बंदर का नापाक ख़्याल मन में न आये। नए कपड़े पहनकर वह फिर बैठ गया। इस बार तो बेचारा एक बार भी नहीं बोल पाया था और लगा कि बंदर ने पीछे से कंधे पर हाथ रखा। उसने तुरंत लाईट ऑन की और देखा कोई भी नहीं है। अब तो पक्का था कि कमरे के अंदर तो बंदर नहीं है। उसने सोचा कि हद हो गयी। रातभर नहाता रहा, मंत्र

पढ़ता रहा लेकिन बंदर है कि जाता ही नहीं।

अगली सुबह वह नसरूद्दीन के पास पहुँचा। सारी रात जागने के कारण आँखें लाल-लाल और सूजी हुई थीं। नसरूद्दीन ने पूछा- 'बेटा, सिद्ध बन गया?' उसने कहा- 'क्या बताऊं! बंदर का ख़्याल पीछा ही नहीं छोड़ता। जब भी मंत्र पढ़ने बैठता हूँ, पता नहीं कहाँ से बंदर का ख़्याल आ जाता है। पहले तो कभी नहीं आता था।' नसरूद्दीन ने कहा कि मैंने तो मंत्र बता दिया, अब तू जान। वैसे तू बंदर का ख़्याल करता ही क्यों है? उसने कहा कि पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ। आज पता नहीं क्या हो गया? अगर हमने अपने मन से दुश्मनी ली और मन को किसी बात से रोका, तो मन बार-बार वहीं जाएगा। तो पिछले ज़माने में धार्मिक लोगों से बड़ी भूल हुई है। कुछ लोगों ने शरीर से शत्रुता ठान ली और वे शरीर के दुश्मन बन गए।

कुछ लोग उपवास कर रहे हैं, तो कुछ धूप में नग्न बाहर खड़े हैं। कुछ कांटों की सेज पर लेटे हैं और कुछ ठंड के दिनों में भी निर्वस्त्र जी रहे हैं। न मालूम इन लोगों ने कैसी-कैसी तपस्या ईजाद की है। कुछ लोग शरीर के शत्रु हो गए हैं, तो कुछ अपने मन के दुश्मन बन गए। लेकिन मन से दुश्मनी लेकर कुछ हासिल नहीं हुआ। अगर हमने मन को कहीं भी जाने से रोका, तो मन वहीं-वहीं जाएगा। जिन-जिन चीज़ों को हम नकारते हैं, उन्हीं-उन्हीं चीज़ों के कारण हम दुविधा में पड़ जाते हैं। अभी मैंने आपसे जो कहानी कही, वह कहानी पूरी मनुष्य जाति की है। जिन-जिन बातों को हमने ग़लत व अनैतिक कहा, उन्हीं-उन्हीं चीज़ों से हम घिर गये। मन से शत्रुता लेने का यह दुष्परिणाम हुआ कि हर तरफ बंदर ही बंदर दिखाई पड़ने लगे।

ज़रा सोचो! एक सड़क से लोग गुज़र रहे हैं और हम खिड़की पर एक बैनर लगा दें कि सावधान! इस खिड़की के भीतर झांकना मना है। सोचिए, वहाँ से गुज़रने वालों का क्या होगा? बड़ी मुश्किल हो जाएगी। हरेक व्यक्ति इन्ट्रैस्टिड हो जाएगा कि खिड़की में ऐसा क्या है? भीतर क्या दृश्य है? भीतर देखने के लिए मना क्यों किया जा रहा है? इसके अलावा कितने मकान और कितने खिड़कियाँ-दरवाज़े पड़े हैं, लेकिन हमें कोई इन्ट्रैस्ट नहीं आया। वहाँ बोर्ड लगा है कि भीतर देखना मना है। बस, अब हमारे भीतर मुसीबत हो गयी। अब हमारे भीतर रस जाग गया कि ज़रूर कुछ बहुत इंट्रैस्टिंग हो रहा है। अगर हम सज्जन पुरुष हैं, तो हम तिरछी आँखों से देखकर गुज़र जाएंगे। मगर रात को सपने में हम उसी रास्ते से गुज़रते हैं और पर्दा उठाकर देख ही लेते हैं कि खिड़की के भीतर क्या हो रहा है।

हमने अपने मन-से दुश्मनी कर दी। हमने अपने मन को कहा कि वहाँ नहीं देखना। एक सज्जन पुरुष को यह शोभा नहीं देता। जब मना किया जा रहा है, तो नहीं देखना चाहिए। तुम एक सज्जन आदमी हो, एक सभ्य व्यक्ति हो, शिक्षित आदमी हो।

लेकिन हमारे सपने, हमारी सभ्यता या शिक्षा से परिचित नहीं हैं। हमारे सपने अभी भी असभ्य व अशिक्षित हैं। हम अपने सपनों में वही सब करेंगे, जिस-जिस चीज़ से दिन में हमें रोका-टोका गया था। ख़बरदार! अगर अपने मन से शत्रुता ली, तो मन जीतेगा और हम हार जाऐंगे। तो बहुत से धार्मिक लोगों ने अपने मन से लड़ाई ठान ली। उनकी बड़ी दुर्गति हुई। परमात्मा तो नहीं मिला, लेकिन अपने भीतर खंड-खंड हो गये। एक हिस्सा कह रहा है कि ऐसा होना चाहिए और दूसरा हिस्सा कह रहा है कि ऐसा नहीं होने देंगे। भीतर एक अंतर्द्वंद्व छिड़ गया। एक लड़ाई छिड़ गई।

ज़रा सोचें! अगर मेरा बायां और दायां हाथ आपस में लड़ जाएं तो क्या होगा? कुछ भी नहीं होगा। दोनों हाथ लहुलुहान हो जाएंगे। न कोई जीतेगा, न कोई हारेगा। न बायाँ हाथ जीत सकता है, न दायाँ हाथ जीत सकता है। लेकिन इस लड़ाई में मैं निश्चित ही हार जाऊंगा। इस लड़ाई में मेरे दोनों हाथों को नुक़सान पहुँचेगा। ठीक ऐसे ही जब हमने अपने मन के भीतर दो टुकड़े कर लिए, तो एक टुकड़ा कह रहा है कि यह सही है और दूसरा कह रहा है कि नहीं, हम ऐसा नहीं करेंगे। हमने अपनी ही शक्तियों को दो खंडों में विभाजित कर दिया। इससे हम खंड-खंड हो जाएंगे। हम पाखंडी हो जाएंगे। हम बाहर ऐसा प्रकट करेंगे कि जो शिक्षा दी गई है, हम वैसा ही आचरण कर रहे हैं। लेकिन हमारे भीतर कुछ उल्टा ही चलता रहेगा। सारे धार्मिक लोग पाखंडी और झूठे हो गये। उसका कारण यह है कि उनका मन दो खंडों में टूट गया। मन से लड़कर कभी कोई नहीं जीत सकता। इसलिए इस गीत में आप अभी सुन रहे थे-

'न तो हम दुश्मन हैं मन के, न ही शत्रु अपने तन के,
न त्यागी न लोभी धन के, हम हैं रिंद परम-जीवन के।

यह अगली बात भी ध्यान देने योग्य है। दुनिया में दो प्रकार के लोग रहे हैं। कुछ लोग-लोभ, मोह, क्रोध, ईर्ष्या व आसक्ति में जीते रहे हैं-इन्हें हम 'संसारी' कहते हैं। और दूसरे प्रकार के लोग हैं- वैरागी, विरक्त, त्यागी और निर्मोही। ये लोग दुनिया छोड़कर जंगल या पर्वतों में रहने लगे हैं। न संसार में रहने वालों को ईश्वर मिला और न ही जंगल या गुफ़ाओं में रहने वालों को ईश्वर मिला। बड़ी भूल हो गयी। न तो भोग में उलझना और न त्याग में उलझना।

अभी कुछ दिन पहले मैं कहीं प्रवचन देने गया था। किसी ने मुझसे पूछा कि श्रीमद्भवद्गीता के अट्ठारह अध्यायों में भगवान् कृष्ण ने अनेक उपदेश दिए हैं। उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सूत्र क्या है? एक शब्द में बताएं। मैंने उनसे एक ही शब्द में कहा- 'अनासक्तिभाव।' हम आसक्ति और विरक्ति, राग और विराग, आसक्त और विरक्त दोनों के विषय में जानते हैं। भगवान कृष्ण का संदेश है कि दोनों के पार जाओ। न तो आसक्ति और न ही विरक्ति, बल्कि अनासक्त। न तो राग और न ही वैराग, बल्कि

वीतराग। इस द्वंद्व के पार जाना है। न तो लोभी बनना है और न ही त्यागी बनने की ज़रूरत है। न तो सांसारिक वासनाओं के पीछे पागल होना और न ही इसे छोड़ने के चक्कर में पड़ना। इस प्रकार जीते हुए तुम पाओगे कि तुम्हारा जीवन परम आनंद से भर गया। तुम ध्यानमग्न हो गये। लोभी और त्यागी, संन्यस्थ और गृहस्थ; दुनिया में इन दो प्रकार के बहुत लोग हो चुके। इनमें से किसी को भी आनंद नहीं मिला है। दोनों अपने–अपने प्रकार के दुख और संताप में पड़े हैं।

आप चूंकि गृहस्थ हो, इसलिए आपको सांसारिक लोगों के बारे में पता है। मैं बहुत से साधु–संन्यासियों से मिलता हूँ। मैं आपको बता दूं कि वे लोग आपसे भी ज़्यादा दुखी और परेशान हैं। उन्हें कोई परमानंद और सच्चिदानंद नहीं मिला। संसार की सुख–सुविधाएं भी गयीं और भगवान भी हाथ नहीं आए। तो प्यारे मित्रो! परमात्मा को पाने के लिए हमें परमजीवन का रिंद बनना है– मस्त पियक्कड़।

हमें न भोगी बनना है, न लोभी। न हमें रागी बनना है और न वैरागी। न हमें गृहस्थ बनना है और न संन्यस्थ। हमें कोई तीसरा ही मार्ग अपनाना है। हमें ऐसा जीवन जीना है, जो हमें इन दोनों के पार ले जाए। ऐसा जीवन जीते–जीते हम परमजीवन को भी पा सकते हैं। थोड़ी–सी ध्यान की कला, थोड़ी–सी जागरूकता, थोड़ी–सी संवेदनशीलता, थोड़ा सा प्रेममय हृदय हो और हम पाएंगे कि हमें परमजीवन का स्वाद आने लगा। (अगले प्रवचनांश में जारी)

हँसता-नाचता-गाता धर्म

(भाग-2)

(पिछले प्रवचनांश से जारी)

न तो हम दुश्मन हैं तन के, न ही शत्रु अपने मन के,
न त्यागी न लोभी धन के, हम हैं रिंद परम जीवन के।
नर्क का भय न स्वर्ग कामना, न दुनिया की कोई वासना,
मिट गई मुक्ति की भी चाहना, इसे ही असली मोक्ष जानना।

पुराने धर्म नर्क के भय और स्वर्ग के लोभ पर खड़े हैं। वे कहते हैं कि तुम ऐसा-ऐसा करो, तो स्वर्ग मिलेगा। ऐसा-ऐसा मत करो, वरना नर्क चले जाओगे। वे हमें डराते हैं, धमकाते हैं और प्रलोभन देते हैं। प्यारे मित्रो! न कहीं ऐसा कोई स्वर्ग है, न ऐसा कोई नर्क है। ये फ़िज़ूल की बकवास है। यही एकमात्र लोक है, जिसमें हम जी रहे हैं। हमें यह सोचना है कि हम इस लोक को कैसे सुंदर बनाएं? ऐसा क्या किया जाए कि इसमें ज़्यादा से ज़्यादा बेहतरीकरण हो सके। किस प्रकार हम प्यार, भाईचारे व मित्रतापूर्वक रह सकें। हमारे परिवार के साथ हमारे मधुर संबंध कैसे बनें? सारी दुनिया से आतंक और युद्ध कैसे विदा हो। ऐसा क्या किया जाए कि हम सब एक-दूसरे के संग प्यार से रह पाएं? किस तरह यह धरती ही स्वर्ग बन जाए?

ऊपर कहीं कोई स्वर्ग नहीं है। लेकिन पुराने धर्मों ने हमें बहुत लोभ दिया। पुराने ज़माने में ऐसा ज़रूरी था। जैसे छोटे बच्चे को माता-पिता डराते-धमकाते हैं। छोटे बच्चे को कैसे समझाएं कि पढ़ाई करो। उससे कहते हैं कि अगर परीक्षा में अच्छे नंबर से पास हो जाओगे, तो तुम्हें साइकिल ख़रीद ले देंगे। बच्चे को साइकिल का लोभ

दिया। साइकिल से उसे बहुत लगाव है। पढ़ाई में तो उसका इन्ट्रैस्ट नहीं है, लेकिन साइकिल के चक्कर में चाह बढ़ जाती है। पढ़ाई में इन्ट्रैस्ट नहीं है लेकिन लोभ देकर हमें धोखा हो जाता है कि बच्चे को इन्ट्रैस्ट हो गया।

मैंने सुना है कि नसरूद्दीन के बेटे फ़ज़लू ने एक दिन अपने गणित के शिक्षक के घर फ़ोन किया। टीचर की पत्नी ने फ़ोन उठाया। फ़ज़लू ने पूछा कि आंटी, शर्माजी से बात करनी है। वह महिला रोने लगी कि बेटा! क्या तुमको पता नहीं कि शर्माजी का देहांत हो गया? तीन दिन पहले उन्हें हार्ट अटैक हुआ था। फ़ज़लू ने कहा– 'सॉरी मैडम!' और फ़ोन रख दिया। दो दिन बाद फ़िर फोन किया। फिर पूछा कि शर्माजी से बात करनी है। उस महिला को लगा कि वही आवाज़ है। लेकिन उसने सोचा कि वही बच्चा दोबारा फ़ोन क्यों करेगा? उस बेचारी ने फिर अपना रोना सुनाया कि शर्माजी तो नहीं रहे। उसने फिर सॉरी कहकर फ़ोन रख दिया। दो–तीन दिन बाद फिर फ़ोन आया कि गणित के टीचर से बात करनी है।

उस महिला ने कहा कि जहाँ तक मैं समझती हूँ कि तुमने ही थोड़े दिन पहले फ़ोन किया था। उसने कहा– 'हाँ, किया था।' शर्मा जी की पत्नी ने गुस्से में कहा कि मैं तुम्हें कितनी बार बता चुकी हूँ कि शर्मा जी इस दुनिया में नहीं रहे! यह बात तुम्हें समझ नहीं आती? फ़ज़लू ने कहा कि समझ में तो आती है। लेकिन यह सुनकर बहुत अच्छा लगता है कि गणित के टीचर नहीं रहे। प्लीज़, एक बार और कहो। यह ख़बर सुनकर उसे इतनी खुशी हो रही है कि बर्दाश्त ही नहीं होती।

हम धोखे में हैं कि कोई लोभ देकर हमने बच्चे का पढ़ाई–लिखाई में इन्ट्रैस्ट पैदा कर दिया है। नहीं, उसका इन्ट्रैस्ट नहीं जगा है। वह धोखा दे रहा है। हमने उसे डराया–धमकाया है कि अगर ऐसा नहीं हुआ, तो हम ऐसा कर देंगे, वैसा कर देंगे। लेकिन इस डर से उसके भीतर पढ़ाई के प्रति लगाव नहीं हो गया। हम धोखे में हैं।

ठीक इसी प्रकार पुराने ज़माने में धर्मगुरुओं ने, समाज के ठेकेदारों ने, लोगों को सुधारने और सामाजिक बनाने के लिए दो ही उपाय किये। या तो डराओ या प्रलोभन दो। उसके लिए उन्होंने काल्पनिक स्वर्ग और काल्पनिक नर्क की रचना की और सभी धर्मों ने इसका ख़ूब प्रचार–प्रसार किया। हिन्दुओं, जैनों, बौद्धों, ईसाइयों, सिक्खों, यहुदियों और पारसियों ने सभी ने एक ही ट्रिक अपनाई। वही ट्रिक, जो माता–पिता अपने बच्चों के साथ अपनाते हैं।

समाज के बूढ़े–बुज़ुर्गों ने वही टैक्निक समाज के साथ अपनाई। उन्हें पता था कि ये ऐसे मानने वाले नहीं हैं। तो नैतिकता व समाज के असूल सिखाने के नाम पर उन्होंने स्वर्ग और नर्क खड़े कर दिये। बेचारे लोग डर के मारे नैतिक हो गये। इन्हें नैतिक या धार्मिक मत समझना। ये झूठे और भयभीत लोग हैं। जैसे फ़ज़लू को

मैथेमैटिक्स के टीचर से प्रेम नहीं हुआ था, वैसे ही इन्हें भी परमात्मा से कोई प्रेम उत्पन्न नहीं हो गया। जैसे फ़ज़लू साइकिल के चक्कर में स्कूल पढ़ने जाता था, वैसे ही लोग स्वर्ग की चाह में या नर्क के डर से मंदिर-मस्जिद-चर्च जाते हैं। फ़ज़लू चाहता है कि टीचर मर जाए तो बढ़िया। ख़ूब अच्छे से अपने भीतर टटोलना। क्या तुम नहीं चाहोगे कि भगवान मर ही जाएं तो अच्छा है? शायद आपको मेरी यह बात बुरी लगेगी। लेकिन आप एकांत में बैठकर चिंतन करना। अगर कोई ईश्वर है, जो ऊपर से देख रहा है; जो ऑम्निप्रैज़ंट, ऑम्निशंट, सबका साक्षी और सर्वद्रष्टा है। वह महा-जासूस तुम्हारी छोटी से छोटी चीज़ की निगरानी रख रहा है। जो तुम्हारे हर एक कृत्य का हिसाब-किताब रख रहा है। जो तुम्हारे कर्मों के अनुसार तुम्हें सज़ा देगा। ज़रा ग़ौर से सोचो! क्या तुम चाहोगे कि ऐसा ईश्वर हो? शायद हम फ़ज़लू से ही राज़ी होंगे।

इसी वजह आधुनिक युग में क़रीब-क़रीब आधी दुनिया नास्तिक हो गयी। उनके हिसाब से कोई भगवान नहीं है। वे चाहते हैं कि हमें चैन से जीने दो, खाने-पीने दो। ये चौबीस घंटे हमारे ऊपर एक थानेदार हाथ में डंडा लिए बैठा हुआ है और उसकी आँखें सब तरफ़ फैली हुई हैं। जैसे वह कोई महान् जासूस हो। उसकी निगाह से कोई बच ही नहीं सकता। न केवल तुम्हारे कर्म, बल्कि वह तो तुम्हारे विचार और भाव भी जानता है। तुम जो सोच रहे हो, यह भी उसे पता है। यदि ऐसा हो, तब तो बड़ी मुसीबत हो गयी। फिर तो हम चैन से जी न सकेंगे। और जो व्यक्ति हमारे जीवन का चैन छीन रहा है, क्या वास्तव में हम उसे प्रेम कर पाएंगे? नहीं, हम उससे भयभीत होंगे, डरेंगे। ट्रैफ़िक के नियम का पालन भी आप पुलिसवाले के डर से ही करते हो। तो आप वास्तव में नैतिक नहीं हो। अगर पुलिसवाला चौराहे पर नहीं खड़ा होगा, तो आप सब नियम-वियम भूल जाओगे। इसका यह मतलब नहीं कि पुलिसवाले से आपको प्रेम हो गया है। पुलिसवाले से तो आप नफ़रत करते हो।

आप चाहते हो कि काश! यह न होता, तो मैं स्वतंत्रतापूर्वक अपनी मनमर्ज़ी कर पाता। भगवान भी ऊपर न्यायाधीश बना बैठा है। और याद रखना! यहाँ के पुलिसवाले और जजों को तुम घूस देकर भी फुसला सकते हो। अगर तुम न कर पाओगे, तो वकील की मदद ले सकते हो। लेकिन वहाँ तो कोई अदालत नहीं है। वहाँ तो कोई वकील साहब भी नहीं पहुँचेंगे। क्योंकि सब वकील तो नर्क में जा चुके होंगे। और वहाँ कोई तुमसे आर्ग्युमैंट नहीं करेगा। परमात्मा तो सबका साक्षी है। उसने अपनी आँखों से सब देखा है। तो वह तुम्हारे कोई तर्क नहीं सुनने वाला। ऐसे ईश्वर से हमें डर लगता है। हम उससे घृणा करते हैं। क्या तुम ऐसे ईश्वर को पसंद करोगे कि वह हो?

लोग कहते हैं भगवान से दुनिया जन्मी है। मुझे नहीं पता कि जन्मी या नहीं जन्मी। लेकिन भगवान कहाँ से जन्मा है। मैं आपको बताता हूँ। भगवान भय से जन्मा

है। जो लोग जितने ज़्यादा डरपोक हैं, वे उतने ही ज़्यादा ईश्वर को मानते हैं। अंग्रेज़ी में एक शब्द है– 'गॉड फ़िअरिंग'। महात्मा गांधी कहा करते थे कि मैं दुनिया में और किसी से नहीं डरता, केवल ईश्वर से डरता हूँ। ग़ौर करना! जिससे हम डरते हैं, उससे हम नफ़रत करेंगे। जो बच्चे अपने माता–पिता से डरते हैं, वे माता–पिता का सम्मान नहीं करते। और कभी कर भी नहीं सकते। वे तो घृणा करते हैं और चाहते हैं काश! वह दिन आए, जब ये लोग न हों। यह सम्मान बहुत महंगा है, जो हमने डरा–धमकाकर प्राप्त किया है। और इसलिए मैं इस धारणा पर प्रहार करना चाहूँगा। स्वर्ग और नर्क के प्रलोभन और भय पर जो धर्म टिके हैं, वह वास्तविक धर्म नहीं हैं। और भगवान की धारणा भी सच्ची नहीं है। भगवान करे, वैसा भगवान न ही हो और है भी नहीं।

नर्क का भय न स्वर्ग कामना, न दुनिया की कोई वासना।
मिट गई मुक्ति की भी चाहना, इसे ही असली मोक्ष जानना।

जो वास्तव में संन्यासी हैं, ध्यानस्थ हैं, उनकी तो मुक्ति की कामना भी मिट जाती है। क्योंकि यह कामना ही बंधन है। यहाँ तक कि मोक्ष की कामना भी एक कामना है और वह भी बंधन है। इसलिए ध्यान में डूबकर धीरे–धीरे वह वासना भी समाप्त हो जाती है। और वास्तविक मोक्ष फलित होता है।

गीत की अगली पंक्ति है–

मस्ती का यूं उठा बवंडर, मिट गये कर्म–बंध के खंडहर
अब तो सारा जग है मंदिर, ब्रह्म ही बाहर, ब्रह्म ही अंदर।

इस कर्मबंध वाली बात पर मैं आपका ध्यान लाना चाहूँगा। अधिकांश धर्मों में मान्यता है कि कर्मों के बंधन हैं। हमने इस जन्म में और पिछले जन्मों में कई कर्म किये हैं। उन सबका भुगतान करना होगा। सभी को कर्मों का फल भुगतना होगा। ये तो बड़ी मुश्किल बातें हैं। हज़ारों–हज़ारों जन्म पहले हो चुके हैं। मनुष्ययोनि में आने से पहले हम पशुयोनि में रहे हैं। कोई चार अरब साल से यह धरती है। क़रीब–क़रीब एक अरब साल से ज़िन्दगी चल रही है। हमारे अरबों–खरबों जन्म हो चुके हैं। न जाने हमने कितने कर्म किये होंगे। अगर उन सबका अलग–अलग हिसाब–किताब करने बैठेंगे, तो बहुत मुश्किल हो जाएगा। एक–एक पाप के लिए, पुण्य करना होगा, तो यह हिसाब–किताब कभी पूरा हो ही नहीं पाएगा। तब तो मुक्ति का कोई उपाय ही नहीं है।

एक उदाहरण से समझें। समझो चोरी करना और शोषण करना पाप है और दान देना पुण्य है। और कर्मबंध का सिद्धांत कहता है कि अगर मैंने चोरी की है, किसी का धन– पैसा छीना है; तो इस जन्म में अब मुझे दान करना चाहिए ताकि वह पुराने कर्मबंध कट जाएं। ऐसा करने के बाद ही मैं आवागमन के चक्कर से मुक्त हो पाऊँगा। लेकिन मैं एक सवाल उठाता हूँ। इस जन्म में दान देने के लिए पैसा आयेगा कहाँ से? मुझे इसी

दुनिया में फिर से लूट–खसोट करनी होगी। फिर किसी की जेब काटनी होगी। फिर किसी को धोखा देना होगा और कुछ व्यापार करना होगा। पुनः चोरी करनी होगी। फिर नया कर्मबंध शुरू हो गया। ये दान कैसा पुण्य है, जिसे करने के लिए पुनः पाप करना एक अनिवार्य शर्त है। यह पुण्य बिना पाप के नहीं हो सकता। पहले किसी से धन छीनो–झपटो, फिर किसी दूसरे को दान दो। इसका मतलब यह हुआ कि कर्मबंध से कभी कोई छुटकारा हो ही नहीं सकता। यह असंभव है। अगर मैंने पिछले जन्म में किसी के साथ हिंसा की थी, तो इस जन्म में वह मेरे साथ हिंसा करेगा। फिर मैं उसका बदला लूँगा। फिर नया कर्मबंध शुरू हो गया। इस सिलसिले का अंत कहाँ होगा? और कितने ही पाप हैं, जो हम अंजाने में कर रहे हैं। आप यहाँ प्रवचन सुनने के लिए यह सोचकर आए हैं कि धर्मसभा में जा रहे हैं, कुछ पुण्य मिलेगा लेकिन आपको पता नहीं कि आपके पैदल चलने में ही कितनी चींटियाँ मर गईं। दो–चार हज़ार चींटियाँ तो पक्का मर गयीं होंगी। आपने इतनों के प्राण ले लिये हैं। धर्मसभा में आने का जो पाप लगा है, अब करते रहना इनका भुगतान! इस सिद्धांत का तो कोई अंत ही नहीं नज़र आता।

साँस भी लो, तो पाप हो जाता है। हवा में लाखों बैक्टीरिया हैं। और हम गर्म हवा छोड़ रहे हैं, जिसमें बैक्टीरिया मर जाते हैं। पाप तो लग गया। अब क्या करोगे? अगर पाप और पुण्य का हिसाब–किताब लगाने बैठे, तो कर्मबंध के सिद्धांत के अनुसार कभी छुटकारा हो ही नहीं सकता।

मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि यह कर्मबंध का सिद्धांत भी उतना ही मूढ़तापूर्ण और काल्पनिक है, जितना कि स्वर्ग और नर्क। काल्पनिक भगवान सारी दुनिया को देख रहा है और चला रहा है। ऐसा कोई कर्मबंध का सिद्धांत न है, न हो सकता और न होना चाहिए। गीत की यह पंक्ति बड़ी प्यारी है–

मस्ती का यूं उठा बवंडर, गिर गये कर्मबंध के खंडहर,
अब तो सारा जग है मंदिर, ब्रह्म ही बाहर, ब्रह्म ही अंदर।

जो व्यक्ति हँसते, नाचते और गाते हुए ध्यान में डूबता है; उसे एक नये सत्य का उद्घाटन होता है कि मेरे ऊपर कोई बंधन नहीं है। चेतना बिल्कुल स्वतंत्र है। ध्यान में डूबकर जब हम अपनी आत्मा को जानते हैं, वहाँ हम परमात्मा को पाते हैं और यह भी पाते हैं कि वह परमात्मा सदा–सदा से मुक्त है। उसके ऊपर कोई बंधन नहीं हैं। जब भीतर एक बार उसका अहसास हो जाता है, तब यह भी पता चलता है कि सारा जगत, सारा अस्तित्व उसी परमात्मा, उसी चैतन्य से ओत–प्रोत है। यह पूरा विश्व ही एक मंदिर है। सर्वत्र ब्रह्म का वास है। वही भीतर है और वही बाहर है। लेकिन इस सर्वव्यापी परमात्मा को जानने के लिए हमें सबसे पहले उसे अपने भीतर तलाशना

होगा। ध्यान में हम वही कोशिश करते हैं। अपने भीतर ईश्वर की खोज।

ओशो के प्रवचन में पुराने ज़माने की एक बड़ी मधुर कथा आती है। जब भगवान ने दुनिया को बनाया था वह पौराणिक कथा है। कहानी के अनुसार ईश्वर ने दुनिया को बनाया। ईश्वर ने पहले पशु–पक्षियों व पेड़–पौधों को बनाया। सब ठीक चलता रहा। फिर उसने नदी, पहाड़, जंगल व मरुस्थल बनाए। तब भी सब ठीक–ठाक चलता रहा। फिर उससे ग़लती हुई। उसने मनुष्य को बनाया। जिस दिन से ईश्वर ने मनुष्य को बनाया, उस दिन से भारी उपद्रव मच गया। क्योंकि मनुष्य में राजनेता पैदा हो गये। यूनियन लीडर्स पैदा हो गये। जब देखो, तब हड़ताल कर रहे हैं।

कभी नारेबाज़ी करते हैं, तो कभी ईश्वर का घेराव कर लेते हैं। ईश्वर का जीना मुश्किल हो गया। कोई कह रहा है कि बादल चाहिए, कोई कहता है पानी चाहिए। कोई कह रहा है आज धूप निकाल दीजिए, हमने कपड़े सूखने डालने हैं। किसी को मकान चाहिए, तो किसी को गाड़ी। कोई नौकरी मांग रहा है, तो कोई सुंदर पत्नी। ईश्वर के लिए बड़ी मुश्किल हो गयी। करें तो क्या करें! उसने अपने देवताओं की मीटिंग बुलाई और कहा कि जबसे इंसान को बनाया है, तबसे मैं बहुत घबरा गया हूँ। मैं चैन से सो भी नहीं पाता। कोई न कोई कुछ न कुछ प्रार्थना करता रहता है। जिसे देखो मांगता ही रहता है। मैं कब तक इनकी सुनूँ? आख़िर मुझे खाना भी खाना होता है, सोना भी होता है, दिन रात कुछ न कुछ माँगते रहते हैं। भगवान धार्मिक लोगों से बहुत परेशान है।

ज़रा सोचो! अगर आपका नाम नारायण है और एक आदमी आपके बग़ल में बैठा–बैठा दिनभर नारायण, नारायण, नारायण कहता रहता है, तो आपको कैसा लगेगा? क्या इससे आपका दिल खुश होगा? आप सो रहे हो और वह कान में आकर कह रहा है– ओ३म् नारायण, ओ३म् नारायण, ओ३म् नारायण। आप भोजन कर रहे हो और वह कह रहा है– नारायण, नारायण, नारायण। आप चिढ़ जाओगे और कहोगे कि मेरा पीछा छोड़ो। क्यों मेरे पीछे पड़े हो? भगवान धार्मिक लोगों से बहुत तकलीफ़ पा रहा है। कोई राम–राम–राम कर रहा है। जिनकी आवाज़ ऊंची नहीं थीं, उन्होंने लाउडस्पीकर खोज लिया और आकाश की तरफ़ मुँह करके अल्लाह–हू–अकबर कहना शुरू कर दिया। दिन में पाँच–पाँच बार नमाज़ पढ़ना शुरू कर दिया और बेचारे अल्लाह इनसे परेशान हैं। वे अपनी कान में उंगली डालकर बैठे हुए हैं।

भगवान कहता है कि हे धार्मिक लोगो! मुझे क्यों सता रहे हो? भगवान नास्तिक लोगों से ज़्यादा प्रसन्न है। यह आपको नयी न्यूज़ बता रहा हूँ शायद आपको नहीं पता होगी। शास्त्रों में नहीं लिखा है। क्योंकि उस समय लाउडस्पीकर नहीं थे। आदमियों की आवाज़ें दूर तक नहीं जाती थीं। आप अपने मंदिर में जो चाहो बड़बड़ाते रहो, किसी

को कुछ पता ही नहीं चलता था। जबसे लाउडस्पीकर ईजाद हुए, तब से ईश्वर की नींद हराम हो गयीं। उसने कहा कि मैं कहीं छिप जाना चाहता हूँ।

फिर देवताओं के साथ मीटिंग की और एक देवता ने सलाह दी कि प्रभु! आप ऐसा करिये हिमालय पर्वत पर जाकर विराजमान हो जाइए। एवरेस्ट शिखर बहुत ऊँचा है। आदमी वहाँ तक कभी नहीं पहुँच पाएगा। भगवान ने आँखें बंद कीं। अपना तीसरा नेत्र खोला और दूर दृष्टि से देखकर उन्होंने बताया कि 20वीं सदी के मध्य में तेनसिंह और हिलैरी नाम के दो आदमियों को मैं देख रहा हूँ कि वे कैमरा लिए एवरेस्ट पर चढ़ रहे हैं। और एक बार दो आदमी पहुँच गये, फिर तो लाईन लग जाएगी। कुछ और सुरक्षित जगह ढूंढ़ो।

देवताओं ने फिर आपस में मीटिंग की और कहा कि प्रशांत महासागर पाँच मील गहरा है। वहां आदमी कैसे पहुँचेगा? उन्होंने कहा कि आप वहाँ जाकर विराजमान हो जाओ। भगवान ने फिर तीसरा नेत्र खोलकर देखा। उन्होंने कहा कि मैं देखता हूँ कि पनडुब्बियों में कुछ अंग्रेज़ और कुछ फ्रैंच लोग वहां सर्च–लाइट लेकर आ रहे हैं। बिल्कुल तलहटी में, प्रशांत महासागर की गहराईयों में खोज रहे हैं। ये तो बहुत ख़तरनाक लोग हैं। ये मेरा पीछा न छोड़ेंगे। भगवान ने कहा कि कुछ और सोचो। किसी ने कहा कि भगवान चंद्रमा पर चले जाइये। भगवान ने फिर तीसरा नेत्र बंद करके देखा और कहा कि मैं देख रहा हूँ कि अमेरिका का नील आर्मस्ट्रांग अपोलो यान से चंद्रमा पर उतर रहा है। एक अमेरिकन पहुँच गया, तो क्या रशन पीछे रहेंगे? इंडियन तक कोशिश करेंगे। और अगर ये वहाँ भी पहुँच गये, तो फिर मुसीबत खड़ी करेंगे। चंद्रमा पर जाने से यह समस्या केवल पोस्टपोन ही होगी। इसलिए कोई परमानैंट हल निकालो।

फिर एक बूढ़े देवता ने भगवान के कानों में फुसफुसाकर कुछ कहा और भगवान एकदम खुश हो गये। ये बिल्कुल ठीक है। तुमने बिल्कुल सही सलाह दी। मैं यहीं जाकर छिप जाता हूँ। तब से परमात्मा वहीं छिपा है। तब से बड़ी सुखशांति है। वहाँ उसे तंग करनेवाला कोई नहीं पहुँचता। क्या आपको पता है कि उस बूढ़े देवता ने ईश्वर से क्या कहा था? उसने कहा था कि प्रभु! आप मनुष्य की आत्मा में विराजमान हो जाइये। वह नालायक सब जगह खोजेगा, लेकिन भीतर नहीं जाएगा।

एक दिन नसरुद्दीन की पत्नी गुलजान ने शिकायत की कि सुनो जी! मैं घर में कहीं भी कुछ पैसा–ढेला रखतीं हूँ, तो हमारा बेटा फ़ज़लू हर जगह से ढूंढ लेता है। कहीं भी छुपा के रखूँ, इसकी नज़र पड़ ही जाती है। अब आप ही बताइए कि मैं ये पैसे कहाँ रखूं? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं तुझे एक जगह बताता हूँ। फ़ज़लू वहाँ कभी भी नहीं पहुँचेगा। तुम सारे पैसे उसकी किताबों में छुपाकर रखो। वह कभी खोलेगा ही नहीं।

इसी प्रकार भगवान ने भी बड़ी होशियारी की और मनुष्य की आत्मा में विराजमान हो गए। अभी थोड़े दिन पहले ही मैं एक कहानी सुन रहा था, जो मुझे बहुत पसंद आई। कुछ लोग तीर्थयात्रा के लिए जा रहे थे। उनमें एक धनी व्यापारी भी था और सबको पता था कि इस व्यापारी के पास काफ़ी धन होगा। उन सब में एक चोर भी साथ में था। और सबको पता था कि यह आदमी चोर है। इससे बचना मुश्किल है। रात को जब हम सोयेंगे, तो कुछ न कुछ गड़बड अवश्य करेगा।

वह धनी व्यापारी भी बहुत कुशल था। एक महीना गुज़र गया। तीर्थयात्रा पूरी हो गई। अन्य कई लोगों की चोरी हो गयी। लेकिन उस व्यापारी के धन की चोरी नहीं हो पाई। जब पूरी यात्रा ख़त्म हो गई, तब उस चोर ने उस व्यापारी आदमी के घर आकर कहा कि आप जीते मैं हारा। आपको भी पता है कि मैं चोर हूँ। मैंने कई लोगों के पैसे चुराए हैं। आपको यह भी पता है कि मैंने आपके पैसे भी ख़ूब खोजने की कोशिश की। लेकिन मैं कुछ भी न पा सका। मैंने आपका सारा सामान टटोल लिया। कोई चीज़ नहीं छोड़ी। यहाँ तक कि जूतों के अंदर तक देख लिया। कुछ मिला ही नहीं। अब तो यात्रा ख़त्म हो गयी है। कम से कम अब तो बता दो कि तुमने अपने पैसे कहाँ छुपाए थे। उस व्यापारी ने कहा कि रात होते ही मैं अपने सारे पैसे तुम्हारे तकिये के नीचे रख देता था। तुमने हर जगह ढूंढ़ा, लेकिन अपने तकिए के नीचे नहीं देखा। जब इस व्यापारी को इतनी अक़्ल है, तो क्या परमात्मा को नहीं होगी? उसने भी यही ट्रिक अपनाई है। वह स्वयं हमारी अंतरात्मा में, हमारे हृदय में आकर विराजमान हो गया।

अब सवाल यह है कि भीतर कौन जा पाएगा? जो व्यक्ति हँसता, नाचता, गाता, गुनगुनाता व प्रसन्नचित होगा, वही भीतर जा सकता है। इसके विपरीत जो शिकायत भाव से भरा है, जो उदास व दुखी है और जो बाहर की परिस्थितियां बदलने में लगा है; वह भीतर नहीं जा पाएगा। वे लोग जो मंदिर में प्रार्थना करते हैं कि प्रभु ऐसा कर दे, वैसा कर दे; ये सब वासनाग्रस्त लोग हैं। ये कभी भीतर नहीं जा पाएंगे।

यह सूत्र समझ लो। जिसे कुछ नहीं चाहिए, वही व्यक्ति प्रसन्न व आनंदित हो सकता है। जिसे ईश्वर से कुछ न कुछ चाहिए, वह तो हमेशा चिंताग्रस्त और भयभीत रहेगा। वह इसी सोच–विचार में रहेगा कि पता नहीं मिलेगा कि नहीं? ऐसा होगा कि नहीं होगा? भीतर जाने वाला व्यक्ति कभी शिकायत–भाव वाला नहीं होगा। इसलिए प्रभु को कोई परेशानी नहीं है। अंदर जो आएंगे, वे आनंदित लोग ही आएंगे। फिर चाहे परमानन्द को प्राप्त महावीर आएं, खंजड़ी बजाते हुए कबीर आएं या प्रेमपूर्ण गीत गाती हुई मीरा दीवानी आए। इन सभी का स्वागत है। भगवान भी खुश होगा कि अच्छा किया आ गये। ऐसे लोगों की तो ज़रूरत है।

धर्मगुरु वहाँ नहीं पहुँच पाएंगे। पंडित, पुरोहित और मौलवियों का भी वहाँ प्रवेश

नहीं हो पाएगा। ये ख़तरनाक लोग हैं। भगवान ने ऐसी ट्रिक अपनाई है कि ये लोग वहाँ पहुँच ही नहीं सकते। वहाँ तो हँसते, नाचते, गाते और उत्सव मनाते दीवाने लोग ही पहुँचेंगे। यहीं शर्त है। जो अपने शरीर के तल पर, मन के तल पर और हृदय के तल पर आह्लादित है, जिसकी कोई वासना शेष नहीं है, जो नहीं चाहता कि ऐसा हो कि वैसा हो; अचानक वह अपनी आत्मा में स्थित हो जाता है, और अपने भीतर उस परमात्मा को जान लेता है। और जिस दिन वह भीतर जान लेता है, उस दिन उसे बाहर का भी ज्ञान हो जाता है कि बाहर भी वही ब्रह्म है।

कबीर साहब ने कहा है–

मोको कहाँ ढूंढ़े रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
कहै कबीर सुनो भई साधो, दो साँसों के साँस में।

ईश्वर पूछता है कि मुझे मंदिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारे में या गिरजाघर में कहाँ खोजते हो? मैं वहाँ नहीं हूँ। मैं तो बिल्कुल तेरे पास में हूँ। पास से भी पास में अर्थात् तेरे भीतर ही मौजूद हूँ। एक इंच भी दूर नहीं। मैं आत्मा के रूप में तुझमें समाया हूँ। आत्मा और परमात्मा दो अलग–अलग तत्त्व नहीं हैं। आत्मा ही परमात्मा है। अपने भीतर अपनी आत्मा को जान लो। अगर तुमने परमात्मा का ज्ञान हासिल कर लिया फिर सब एक हो जाता है। फिर ब्रह्म ही बाहर और ब्रह्म ही भीतर होता है। लेकिन पहली शर्त भीतर जाने की है। हम बाहर से शुरू नहीं कर सकते। मंदिर–मस्जिदों में जो भटक रहे हैं, बेकार ही भटक रहे हैं।

मैंने सुना है कि एक भिखारी था, जो बहुत ही पियक्कड़ भी था। एकदिन वह सुबह–सुबह मंदिर पहुँचा और घंटा भर भीख मांगता रहा। कई लोग आए, गए। लेकिन किसी ने उसे कुछ दान न दिया। फिर उसने सोचा कि मंदिर में लोग दान नहीं दे रहे हैं, तो मस्जिद चलते हैं। और वह मस्जिद पहुँच गया। मस्जिद में मांगता रहा। लेकिन वहाँ भी किसी ने एक पैसा न दिया। फिर उसने सोचा कि चर्च में चलें। शायद वहाँ कुछ दान मिल जाए। लेकिन वहाँ भी किसी ने कुछ न दिया। उसके बाद वह गुरुद्वारे में चला गया और वहाँ से भी ख़ाली हाथ लौटा। फिर शाम होने लगी।

उसने सोचा कि चलो, शराबघर चलें। वहीं किसी से माँग लेंगे। शराबघर से एक शराबी डगमगाते हुए निकला और उसने सीधा उस भिखारी को सौ रुपये का नोट पकड़ा दिया। उस भिखारी ने हाथ ऊपर उठाया और कहा– 'या अल्लाह! तू भी बड़ा धोखेबाज़ है। रहता कहाँ है और पता कहाँ का दिया है!'

परमात्मा अगर कहीं है, तो हमारे हृदय में ही मौजूद है। इसलिए बाहर मत खोजना। क्या ईश्वर मंदिर में क़ैद है? अगर ईश्वर मंदिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारे में और चर्च में बंद हो गया, तो सर्वव्यापी न रहा। क्या वह जेल में बंद है? ये मंदिर–मस्जिद

उसके लिए जेलखाने हो गये, कारागृह बन गये। नहीं, वह तो परममुक्त है। वह एक छोटी सी जगह में कैसे बंद हो सकता है! वह तो सर्वव्यापी है। और सर्वव्यापी की खोज कहाँ से शुरू होगी? जो हमारे निकटतम है, वहाँ सर्वव्यापी को खोजना होगा। हम अपने भीतर से खोजेंगे। अगर वह सर्वत्र है, तो हमारे भीतर भी वहीं होगा। तो चलो वहीं से शुरू करें।

इसलिए गीत की ये पंक्तियां–

मस्ती का यूं उठा बवंडर, गिर गए कर्मबंध के खंडहर।
अब तो सारा जग है मंदिर, ब्रह्म ही बाहर, ब्रह्म ही अंदर।
न कहीं मैं न कहीं तू है, फैली खुशबू सभी ओर है,
सबमें सत्यम् शिवम् सुंदरम्, जो है उसका नाम प्रभु है।

इन अंतिम पंक्तियों पर आपका विशेष ग़ौर चाहूँगा–

'न कहीं मैं है, न कहीं तू है' अर्थात् सारे द्वैत समाप्त हो गये। यहाँ तक कि भक्त और भगवान, मैं और तू का जो आख़िरी क्लाईमैक्स था; वह भी समाप्त हो गया। अब न कोई भक्त है और न कोई भगवान है। बस एक सर्वव्यापी चेतना है। उसे क्या कहें? 'मैं' कहना भी ठीक नहीं और 'तू' कहना भी ठीक नहीं। ध्यान की परम गहराई में जब अद्वैत की घटना घटती है, तब दो नहीं बचते।

कबीर साहब का एक और वचन मुझे अत्यंत प्रिय है–

प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाई।

कहते हैं भक्ति व प्रेम के इस मार्ग में दो नहीं समाते। यह बहुत संकरा रास्ता है।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।

क्योंकि दोनों नहीं हो सकते। जब तक मेरा अहंकार था कि मैं हूँ, तब तक प्रभु न थे। अब प्रभु आ गये, अब मैं नहीं हूँ। कबीर साहब बड़ा मज़ाक़ उड़ाते हैं कि भक्त और भगवान का कभी मिलन नहीं हो सकता। जब तक भक्त है, तब तक भगवान नहीं और जब भगवान है, तब भक्त नहीं। दोनों एक साथ हो ही नहीं सकते। ऐसा समझना कि हमारा अहंकार अंधेरा है और परमात्मा प्रकाशस्वरूप है। क्या प्रकाश और अंधकार का कोई मिलन हो सकता है? कभी नहीं, जहाँ रोशनी होगी, वहाँ अंधेरा होगा ही नहीं। और जहाँ अंधेरा है, तो पक्की बात है कि रोशनी नहीं है। दोनों का मिलन असंभव है।

इसलिए जहाँ–जहाँ अहंभाव है, वहाँ ब्रह्मभाव नहीं है। और जहाँ ब्रह्म आ गया, वहाँ अहंभाव नहीं हो सकता। भक्त और भगवान इकट्ठे नहीं हो सकते। इसलिए ये शब्द ग़लत है कि प्रभु का दर्शन। ऐसा होता ही नहीं। जब तक दर्शन करने वाला मौजूद है, तब तक प्रभु नहीं होते। 'ईश्वरसाक्षात्कार', यह शब्द ही ग़लत है। ऐसा कभी नहीं होता कि मैं भी रहूँगा और ईश्वर भी रहेगा। हम दोनों की मुलाक़ात होगी और इंटरव्यू जैसा

हो गया कि कहिए भगवान! क्या हाल–चाल हैं? ऐसा साक्षात्कार कभी नहीं होगा। ध्यान की जिस अवस्था में मैं खो जाऊंगा, मैं मिट जाऊंगा, मैं रहूँगा ही नहीं; उस निरअहंकार की अवस्था में प्रभु ही शेष बचता है। और वह निरअहंकार की अवस्था हँसते, नाचते, गाते, आनंदमग्न–भाव में बनतीं है।

याद रखना! उदास, चिंताग्रस्त व दुखी आदमी बहुत अहंकारी होता है। जितना दुखी उतना घमंडी। प्रसन्नचित व्यक्ति निरअहंकारी होतीं है, विनम्र होता है। यह पहचान है। इसलिए तो छोटे बच्चे, जिनमें अहंकारभाव नहीं है, वे बड़े प्रसन्न नज़र आते हैं। खेलते–कूदते नज़र आते हैं। और जैसे–जैसे बड़े होने लगते हैं, उनमें अहंकार आ जाता है। तब वे दुखी होने लगते हैं, चिंता में पड़ने लगते हैं। तो अहंकार और दुख एक–दूसरे के पूरक हैं। उनका अनुपात बराबर होता है। हँसता–नाचता–गाता आदमी और कबीर व मीरा जैसे दीवाने लोग अहंकाररहित होते हैं। तभी तो इनके जीवन में इतना आनंद फलित हो सका और अहंभाव पूरी तरह समाप्त हो गया। अब ये ब्रह्म में जीं रहे हैं।

इसलिए यह पंक्ति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है–

न कहीं मैं हूँ, न कहीं तू है
फैली खुशबू सभी ओर है।

एक डिवाइन फ्रेग्रन्स, एक दिव्य सुगंध चारों ओर फैली है। ओंकार का संगीत सर्वत्र गूंज़ रहा है। परमात्मा का प्रकाश एक ख़ुशबू की तरह है। उस ख़ुशबू, उस महक को हम पकड़ नहीं सकते। परमात्मा को फूल कहना ठीक नहीं है। फूल में तो एक रंग होता है, रूप होता है, एक आकार होता है। लेकिन वह जो परमात्मा का अनुभव है, वह फूल जैसा नहीं है। वह हमारी पकड़ में नहीं आता। फूल को तो हम पकड़ सकते हैं, उसकी पेंटिंग बना सकते हैं, फ़ोटोग्राफ़ ले सकते हैं। फूल की आकृति बता सकते हैं कि कैसी है। तो इस प्रकार परमात्मा फूल जैसा नहीं, बल्कि सुगंध जैसा है।

कुछ पकड़ में नहीं आता... हम महसूस करते हैं कि परमात्मा है... फिर भी हम उसकी फ़ोटोग्राफ़ नहीं ले सकते। हम उसका रेखाचित्र नहीं बना सकते। हम किसी को समझा भी नहीं सकते। परमात्मा का अनुभव तो अकथनीय व अवर्णनीय है। जैसे एक सुगंध की तरह वह चारों ओर व्याप्त है। जिसने जाना, सो उसने जाना। वह दूसरे को बता नहीं सकता। कोई रंग नहीं, कोई रूप नहीं, कोई आकार नहीं, निर्गुण सुगंध।

'सबमें सत्यम् शिवम् सुंदरम्,
जो है उसका नाम प्रभु है।'

वह ख़ुशबू कैसी है? वह सत्यम् है, वह शिवम् है, वह सुंदरम् है। वह सत्य है, वह चित्त है, वह आनंद है। 'सत्यम्' का मतलब होता है– 'जो है'। 'शिवम्' का अर्थ है–

'कल्याणमय व मंगलमय'। और 'सुंदरम्' का मतलब है कि वह अत्यंत सौंदर्य की गुणवत्ता लिए हुए है। सबकुछ सुंदर ही सुंदर–ऐसा है वह 'आत्मा का लोक'। ऋषियों ने उपनिषद् में परमात्मा की परिभाषा की है– 'सच्चिदानंद' अर्थात् सत–चित्त–आनंद। वह सत्य है। वह चैतन्य है। 'चित्त' यानि चैतन्य, कांशसनैस। जिस ध्यान की मैं आपसे बात कर रहा हूँ, वह है– चैतन्य की साधना। जिस हँसते–नाचते–गाते धर्म की मैं बात कर रहा हूँ, उसमें लीन होने का मार्ग भी आनंद है, उसकी शुरूआत भी आनंद से है और उसका समापन भी परम आनंद में है। पहला क़दम भी हँसी–ख़ुशी से है और अंतिम क़दम भी परमानंद में है। मार्ग और मंज़िल जुड़े हुए हैं। दुख से शुरूआत नहीं हो सकती। कामना और वासना से शुरूआत नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग न पहले कभी था, न आज है, और न कभी होगा। तो प्यारे मित्रो! पुनः लौटकर मैं अपने पहले वचन पर आता हूँ।

'ओशो के दीवाने हम, आनंद मनाते हैं,
हँसते–नाचते–गाते हम, ध्यान में जाते हैं।'

मित्रो, मैं अपनी बात यहीं समाप्त करता हूँ।

दो सवाल मेरे पास आए हैं। संक्षेप में उनकी चर्चा करके आपसे विदा लूंगा।

पहला प्रश्न हैः– पुराने रूढ़िवादी विचारों में डूबे हुए लोग क्या कभी अंधविश्वास से मुक्त हो पाएंगे?

उत्तर : निराश होने की ज़रूरत नहीं। हम उन्हें अंधविश्वास से मुक्त करने की कोशिश जारी रखें। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कभी न कभी वे अवश्य मुक्त होंगे। निश्चित ही देर लगेगी। अंधकार बहुत घना है और बहुत रोशनी चाहिए। दो–चार या पाँच–दस लोगों के करने से भी न होगा। बहुत लोग इसमें सहयोग करेंगे, तभी कुछ हो सकेगा। मैं आपकी बात से सहमत हूँ। इस दुनिया में बड़ी 'मजोरटी', परम्परावादी, रूढ़िवादी व कट्टरपंथी अंधविश्वासों में जी रही है। और उन्हें मुक्त कराना कठिन भी है। इस कठिनाई को भी मैं जानता हूँ। फिर भी यह कार्य करने जैसा है।

हम अपना जीवन इसी कार्य के लिए अर्पित किये हुए हैं। जो मित्र इस दिशा में क़दम उठाना चाहें, उनका स्वागत है। सब मिलकर अंधेरा दूर करने की कोशिश करेंगे और अंधेरा अवश्य दूर होगा। थोड़ी रोशनी आप भी जलाएं। आशापूर्वक हम कुछ करेंगे, तो अवश्य कुछ अच्छा हो सकेगा। 7 अरब की इस बड़ी जनसंख्या में चार–छः आदमियों के करने से तो कुछ नहीं होगा। लेकिन धीरे–धीरे अगर समान विचार वाले लोग मिलते चले गये और टीमवर्क में काम करने लगे, तो असंभव दिखने वाला काम भी संभव हो सकेगा। तो मैं चाहूँगा कि आप ख़ूब–ख़ूब आशा से भरिये और इस कार्य में लग जाइये।

दूसरा सवाल हैः– आपने कहा कि मंदिर–मस्जिद में भगवान नहीं हैं। तो हम लोग रोज़ सुबह जो पूजा करते हैं, ग्रंथों का पाठ करते हैं, वह हमें करना चाहिए कि नहीं?

उत्तर : आपके प्रश्न से हीं स्पष्ट हो गया कि आप समझ गये हैं कि करना चाहिए या नहीं। अगर कुछ मिल रहा होता, तो आप कभी ऐसा नहीं पूछते। यह सब करने से आपको कुछ भी नहीं मिल रहा है। आप व्यर्थ समय गंवा रहे हैं। यह आपके अवचेतन मन में स्पष्ट है। वरना आप यह सवाल पूछते हीं नहीं। अब चेतन मन को भी भली–भांति स्पष्ट हो जाने दें कि पूजा–पाठ से कुछ भी नहीं मिल रहा है।

धन्यवाद! जय ओशो!

प्यारे मित्रो, नमस्कार! जय ओशो!

पहला प्रश्न– ऊर्जा और शक्ति में क्या भेद है?
साधना में इनका उपयोग कैसे किया जा सकता है?

यह काफ़ी महत्त्वपूर्ण सवाल है। ऊर्जा और शक्ति को गहराई से समझाने के लिये हम इनके अलग-अलग अर्थ दे रहे हैं। ऊर्जा, सोई हुई शक्ति है और शक्ति, जागी हुई ऊर्जा है। ऊर्जा जब क्रियान्वित होती है, तो शक्ति बन जाती है। शक्ति जब तक बीज रूप में मौजूद है, तब तक उसे ऊर्जा की संज्ञा देना उचित है। तो मूलतः दोनों एक ही हैं। शक्ति प्रगट रूप है और ऊर्जा अप्रगट रूप है। ऐसा समझ लें कि एक बीजरूप में मौजूद है और एक वृक्षरूप में उपस्थित है। ऊर्जा की शुरूआत शून्य से होती है और वह भिन्न-भिन्न रूप लेते हुए सारी सृष्टि की रचना करती है। तो बेहतर होगा कि हम इसे उल्टे क्रम में अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म रूप में समझें। फिर आपको ख़्याल में आ जायेगा कि किस प्रकार सूक्ष्म ऊर्जा से स्थूल ऊर्जा अर्थात् शक्ति बनी?

हिंदू एक बड़ा प्यारा शब्द प्रयोग करते हैं। वह शब्द है– 'आदिशक्ति'। 'आदि' मतलब जो बिल्कुल शुरूआत में थी। तो हम स्थूल को समझते हुए सूक्ष्म ऊर्जा तक पहुँचेंगे। अंत को समझते हुए शुरूआत तक पहुंचेंगे। क्या आप जानते हैं कि शक्ति के

प्रगट रूपों में, शक्ति का सबसे ज़्यादा स्थूल रूप कहाँ दिखाई देता है? आपको जानकर हैरानी होगी कि शक्ति का सबसे ज़्यादा स्थूल रूप है– 'द पावर ऑफ़ पॉलिटिक्स' अर्थात् 'पद की शक्ति'। इसे 'राजनीति की शक्ति' भी कह सकते हैं। हर शक्ति के दो रूप हो सकते हैं– एक अच्छा और एक बुरा। यह राजनीति यदि नकारात्मक रूप ले ले, तो यह लोगों को आपस में लड़ाने वाली हो सकती है।

इसमें 'मनिप्युलेशन' व शोषण भी हो सकता है। लेकिन यही राजनीति अगर सकारात्मक रूप ले ले और 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की सेवा में लग जाए, तो बहुत कुशल मैनेजमेंट अर्थात् सुव्यवस्थापन में जा सकती है। याद रखना! हर शक्ति के दो रूप संभव हैं; एक अच्छा रूप और दूसरा बुरा रूप। अच्छा रूप शुभता की ओर ले जाता है और बुरा रूप अशुभ की ओर यात्रा करता है। इसी कारण राजनीति दोनों कार्य कर सकती है। सामान्यतः दुनिया में जैसी राजनीति दिखाई देती है, वह शक्ति का बुरा व अशुभ रूप है। इससे शक्ति का दुरुपयोग होता है। काश! इसका सदुपयोग किया जाए, तो यह संसार स्वर्ग की भांति सुंदर बन सकता है।

'पद की शक्ति' के बाद, मैं नंबर दो पर रखना चाहूंगा– 'धन की शक्ति।' पैसे की ताक़त तो हम सब जानते ही हैं। यह भी दो रूप ले सकती है। धन का एक रूप शोषण, एक्सप्लोयटेशन व संग्रह है, तो दूसरा रूप उत्पादन और सर्क्युलेशन है। धन का उत्पादन व सर्क्युलेशन दोनों ही आवश्यक हैं। अंग्रेज़ी में धन के लिये 'करंसी' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'करंसी' का मतलब है, जो हमेशा करंट में रहे, फ़्लो में रहे। तो धन का जितना अधिक आवागमन होगा, उतना अधिक यह समाज समृद्ध होगा। अगर धन का संग्रह किया जायेगा, तो वह 'डैड–मनी' हो जाती है।

पुराने ज़माने में राजा महाराजा जिस प्रकार धन इकट्ठा करते थे, उनकी संपूर्ण संपदा शोषण पर निर्भर थी। लेकिन आज अगर कोई पूंजीपति फ़ैक्ट्री लगाये हुए है, तो वह उत्पादन कर रहा है। वह समाज के लिये कुछ उपयोगी सामान बना रहा है। यह शोषण नहीं है। बल्कि इससे तो समाज–सेवा हो रही है। फ़ैक्ट्री में हज़ारों लोगों को काम मिल रहा है। तो धन के भी दो उपयोग हो सकते हैं। एक सदुपयोग और दूसरा दुरुपयोग। जहाँ एक ओर धन के संग्रह से ग़रीबों का शोषण होता है, वहीं दूसरी ओर धन के आवागमन से ग़रीब व लाचार लोगों की सहायता की जा सकती है।

धन की शक्ति के पश्चात् मैं तन की शक्ति की चर्चा करना चाहूँगा। जी हाँ! तीसरी शक्ति है– 'मस्क्युलर–पावर' अर्थात् हमारी मांसपेशियों की शक्ति। अगर इस

शक्ति का दुरुपयोग हो, तो यह हिंसा का रूप ले लेगी। दुनिया में जितने भी गुंडे–लफ़ंगे और बदमाश हैं, वे केवल अपनी शक्ति के दम पर ही गुंडागर्दी कर पाते हैं। अगर इसी शक्ति का सदुपयोग किया जाए, तो यह सृजनशीलता एवम् रचनात्मक कार्यों में लगेगी। 'मसल पावर' वही की वही है। लेकिन उस शक्ति से हम किसी का गला दबा भी सकते हैं और किसी की हत्या हो रही हो, तो उसे रोक भी सकते हैं। तो अपने तन की शक्ति के भी दोनों उपयोग संभव हैं। यहाँ से एक नई बात शुरू होती है। इस शक्ति का उपयोग आध्यात्मिक साधना में भी किया जा सकता है। काश! हम कर्मयोगी हो जाएं। यदि हम अपनी शारीरिक क्रियाओं के साक्षी बन जाएं, तो हम योग की परम अवस्था को जान सकते हैं।

तन की शक्ति के बाद चौथे नंबर पर मैं रखना चाहूँगा– 'ऐंद्रिक–शक्ति' अर्थात् हमारी इंद्रियों की शक्ति। हमारी संवेदनशीलताओं के भीतर भी शक्ति छिपी हुई है। हम बोल रहे हैं। हमारा कंठ वही है, आवाज़ वही है। इसी कंठ से सुरीला संगीत भी उत्पन्न हो सकता है और कड़वाहट भरी गालियाँ भी दी जा सकती हैं। कुछ लिखते समय अक्षर वही के वही रहते हैं। यह लिखने वाले पर निर्भर है कि वह दिल को छू जाने वाले गीत लिखता है अथवा असहनीय गालियाँ। इसी प्रकार कामवासना की शक्ति अगर ठीक–ठीक विकसित हो, तो प्रेमभावना को जन्म दे जायेगी और कामवासना की यही शक्ति अगर विकृत हो गई, तो परवर्टिड सैक्स, बलात्कार और व्यभिचार बन जायेगी। इस शक्ति के भी दोनों रूप संभव हैं। अगर एंद्रिक–शक्ति को आध्यात्मिक रूप से साधना में उपयोग किया जाए, तो इसके माध्यम से तंत्र–साधना की जा सकती है। सभी तांत्रिकों ने साक्षीभाव पैदा करने के लिए अपनी इंद्रियों की संवेदनशीलताओं का उपयोग किया है। साक्षीभाव के साथ परमात्मामय हो जाना बहुत आसान है।

एन्द्रिक–शक्ति के बाद मैं प्राणशक्ति की चर्चा करना चाहूँगा, जिसे हम साधारणतः 'वाईटल–फ़ोर्स' के नाम से जानते हैं। अन्य सभी शक्तियों की भाँति प्राण–शक्ति भी दो रूप ले सकती है। यदि इसका सदुपयोग किया जाए, तो साहस व वीरता उत्पन्न हो जाएगी और अगर इस शक्ति का दुरुपयोग हो, तो दुस्साहस व हठी–प्रवृत्ति उत्पन्न होगी। याद रखना! साहस की शक्ति भी अच्छा या बुरा कोई भी रूप भी ले सकती है। अगर अपनी प्राण–ऊर्जा के संग हम साक्षीभाव को जोड़ दें और ध्यानमय हो जाएं; तो हठयोग का जन्म होता है। यही शक्ति हमें परमात्मा तक ले जा सकती है। 'वाईटल–फोर्स' के बाद मैं आपको 'इमोशनल–पावर' से अवगत कराना चाहूँगा। 'इमोशनल–पावर' अर्थात् 'हृदय की ऊर्जा भावशक्ति के रूप में प्रगट होती है।

इसके भी दोनों रूप संभव हैं। हमारे इमोशन्स पॉज़िटिव और नैगटिव दोनों प्रकार से व्यक्त हो सकते हैं। जहाँ एक तरफ़ हमारी सद्भावना; प्रेम, करुणा व दया बन

सकती है। वहीं दूसरी तरफ़ हमारी दुर्भावना; क्रूरता, कठोरता व प्रतिशोध का रूप भी धारण कर सकती है। यहीं सद्भावना यदि आध्यात्मिक रूप से विकसित होने लगे, तो क्रमशः प्रेम से श्रद्धा की ओर, श्रद्धा से गौणी-भक्ति की ओर तथा गौणी-भक्ति से पराभक्ति की ओर जा सकती है। यही सद्भावना भक्तियोग की जन्मदात्री है। यही सद्भावना परमात्मा तक ले जानेवाली हो सकती है।

भावशक्ति के बाद मैं मनोशक्ति की चर्चा करना चाहूँगा। इसे 'मैंटल-पावर' या 'विचारों की शक्ति' भी कहा जा सकता है। अगर इस शक्ति का ठीक ढंग से उपयोग किया जाए, तो सद्विचार, विज्ञान, विवेक और प्रज्ञा उत्पन्न होगी। अगर इस शक्ति का दुरुपयोग किया जाए, तो केवल विचारों की भीड़ ही पैदा होगी और यह भीड़ अशांति व बेचैनी उत्पन्न करेगी। अगर ये अशांति बहुत बढ़ जाए, तो पागलपन तक ले जा सकती है। वही विचार हमें पागल कर सकते हैं और वही विचार हमें विवेकवान बना सकते हैं। हम पर निर्भर है कि हम इसका उपयोग किस प्रकार करते हैं।

मन की इस शक्ति के संग ख़ूब होशियारी से जीना। यहीं से मनुष्य और जानवर में भेद पड़ना शुरू हो जाता है। इसके पहले तक शक्ति के जितने भी रूप- जैसे तन की शक्ति, एन्द्रिक-शक्ति, प्राण-शक्ति इत्यादि मैंने आपको गिनाए; ये अन्य सभी पशु-पक्षियों व जानवरों में भी मौजूद हैं। लेकिन मनुष्य के पास मन है, विचारशक्ति है इसलिये मनुष्य अत्यंत निम्न भी गिर सकता है और अत्यंत उच्च अवस्था में भी पहुँच सकता है। कोई पशु न तो इतना नीचे गिर सकता है और न ही इतना ऊपर उठ सकता है। कोई पशु न तो हिटलर या सिकंदर जैसा विवेकशून्य हो सकता है और न ही बुद्ध व महावीर जैसा प्रज्ञावान हो सकता है। मनुष्य के पास मन है, जिसके कारण उत्थान व पतन दोनों ही संभव हैं। इसी मन के साथ यदि द्रष्टाभाव जोड़ दिया जाए, तो ज्ञानयोग पैदा होता है। ज्ञानयोग भी प्रभु तक पहुँचने का एक मार्ग है।

मन की शक्ति के बाद आती है- 'संकल्प-शक्ति', जो हमारे तीसरे नेत्र से संबंधित है। इसे हम 'विल-पावर' या 'इच्छा-शक्ति' भी कह सकते हैं। यह भी दो रूप ले सकती है। यदि हमारी इच्छा-शक्ति अच्छा रूप ले ले, तो हमारे भीतर निर्णय की शुद्ध क्षमता पैदा होगी। अपनी सकारात्मक संकल्प-शक्ति से हम ठीक-ठीक निर्णय कर पायेंगे और जो निर्णय हमने किया है, उस पर अडिग रह पायेंगे। इसी इच्छा-शक्ति से हम अपने संकल्प को पूरा कर सकेंगे। लेकिन यही विल-पावर अगर ग़लत दिशा में चली जाए, तो ज़िद्दीपन व हठधर्मिता पैदा हो जायेगी। याद रखना! राम और रावण दोनों ही बड़े संकल्पवान हैं। लेकिन रावण की संकल्प-शक्ति अशुभ दिशा में लगी है और राम ने अपनी शक्ति को शुभ दिशा में लगाया है। भीष्म-पितामह और रामकृष्ण दोनों ही महासंकल्पवान हैं, लेकिन भीष्म-पितामह ने अपनी संकल्प शक्ति

को अपनी ज़िद्द बना लिया है। 'प्राण जाई पर वचन न जाई', यही उनके जीवन का सूत्र है। वह एक बार जो तय कर लेते हैं, फिर उसके विपरीत कभी नहीं जाते। इसलिए अशुभ की सेवा में संलग्न हो गये। जबकि रामकृष्ण ने सकारात्मक संकल्प–शक्ति की राह पर चलते हुए अपना जीवन शुभ कार्यों में लगाया।

संकल्पशक्ति के बाद आती है– 'आत्म–शक्ति'। इसे हम 'दिव्य–शक्ति' भी कह सकते हैं। 'आत्म–शक्ति' अपने आपमें आनंद है। इसका कोई उपयोग नहीं है। इस शक्ति का न तो सदुपयोग हो सकता है और न हीं दुरुपयोग। 'आत्म–शक्ति' को 'द पावर ऑफ अवेयरनैस' भी कह सकते हैं। यह शांति व आनंद प्रदान करती है। याद रखना! जिन चीज़ों का उपयोग है, उनमें आनंद नहीं है। जहाँ आनंद है, वहाँ कोई उपयोग संभव नहीं है। तो जो हमारी चेतना है, उसका कोई उपयोग नहीं है। उसकी कोई यूटिलिटेरियन वैल्यू नहीं है। जब चेतना का विकास होता है, तो हम गहन शांति व आनंद को उपलब्ध होते हैं।

अपनी इस दिव्यशक्ति के संग अगर हम होश की प्रगाढ़ता को मज़बूत करने लगें, तो सांख्ययोग पैदा होता है। संकल्पशक्ति के संग द्रष्टाभाव जोड़ने से राजयोग अथवा ध्यानयोग का मार्ग बनता है और सहस्त्रार पर आत्म–शक्ति के प्रति जागरूक होने से सांख्ययोग का मार्ग बनता है।

दिव्यशक्ति के बाद शक्ति का अंतिम रूप है–'भागवत–शक्ति'। इसे 'आदिशक्ति' या 'ब्रह्म–ऊर्जा' भी कह सकते हैं। यह किसी एक व्यक्ति की नहीं बल्कि समष्टि की ऊर्जा है। यह ऊर्जा सारे ब्रह्मांड की, सच्चिदानंद की ऊर्जा है। 'ब्रह्म–ऊर्जा' अर्थात् समष्टि की ऊर्जा तक जाने का मार्ग सहजयोग है। यहाँ ओशोधारा में हम सहजयोग पर बहुत ज़ोर देते हैं। हम इस बात पर ज़ोर देते हैं कि सीधी छलांग लगाओ। ब्रह्मांड में गूँजते हुए ब्रह्मनाद को सुनो।

संकल्पशक्ति की तरह ब्रह्म–ऊर्जा का भी कोई सदुपयोग या दुरुपयोग नहीं हो सकता। यह समस्त ब्रह्माण्ड की शक्ति है। आत्मा में डूबना शांति व आनंद में ले जाता है और ब्रह्म–ऊर्जा में डूबना परमानंद में, सच्चिदानंद में ले जाता है।

प्यारे मित्रो! शक्ति के दस विभिन्न रूपों के विषय में चर्चा करने के बाद मैं आपको इसके एक विशिष्ट रूप से परिचित करवाना चाहता हूँ। ऊर्जा के इस विशिष्ट रूप का नाम है– 'पोटैंशल एनर्जी'। इसे 'शून्य की ऊर्जा' भी कहा जा सकता है। यह शक्ति नहीं सिर्फ़ ऊर्जा है। इसी ऊर्जा से सारा ब्रह्मांड जन्मा है। यह ऊर्जा बीजरूप है। यदि यह प्रगट हो जाए, तो सारी सृष्टि का उद्भव हो जाये। वैज्ञानिकों की 'बिग–बैंग थ्योरी' के हिसाब से भी यह सारा ब्रह्मांड शून्य से उपजा है और अंततः एक दिन पुनः शून्य में विलीन हो जायेगा। यह शून्य, ऊर्जा का महाभंडार है लेकिन यह ऊर्जा प्रगट

नहीं है। ख़्याल रखना! तीन प्रकार के ज्ञान हैं– आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान और निर्वाण ज्ञान। जब कोई आत्मशक्ति को जानकर चैतन्यता के शिखर को छूता है, तो आत्मज्ञान घटित होता है। जब कोई ओंकार में विलीन हो जाता है, तो ब्रह्मज्ञान हासिल होता है और जो शून्य को जान लेता है, उसका निर्वाण हो जाता है। उसे परम मोक्ष की दशा उपलब्ध हो जाती है।

अभी तक हमने ऊर्जा के भिन्न–भिन्न रूपों को स्थूल से सूक्ष्म रूप में समझा। आइए, अब इसे सीधे क्रम में समझते हैं। शून्य से ब्रह्मांड जन्मता है और इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक व्यक्ति में, घट–घट में वही आत्मऊर्जा फैल जाती है। फिर वह आत्मऊर्जा संकल्पशक्ति बनती है। इस संकल्पशक्ति के माध्यम से हम शिक्षा ग्रहण करते हैं। शिक्षा के अनुसार विचार आते हैं और विचारों के अनुसार भाव परिवर्तित होते हैं। भाव से हमारी प्राणशक्ति उद्वेलित होती है।

प्राणशक्ति इंद्रियों के माध्यम से बहिर्मुखी होकर अपनी मस्क्युलर–पावर का उपयोग अथवा दुरुपयोग करती है। अपने प्रश्न में आगे आपने पूछा है कि साधना में इनका उपयोग कैसे किया जा सकता है। संसार की गति सूक्ष्म से स्थूल की ओर है जबकि साधना में हम विपरीत दिशा में अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति करते हैं। यह तभी संभव होगा, जब हम पूर्णतः जागरूक होकर ऊर्जा का सकारात्मक उपयोग करेंगे।

धन्यवाद! जय ओशो!

मैं बोध हूँ

प्यारे मित्रो, नमस्कार! जय ओशो!

सांख्य–योग में स्वयं को बोध–स्वरूप माना गया है। 'मैं बोध हूँ' का क्या अर्थ है? आज हम इस विषय पर चर्चा करेंगे। दृश्य व द्रष्टा का भेद आप सब समझते हैं। जब मैं एक वृक्ष को, मकान को, नदी को, पहाड़ को या किसी अन्य वस्तु को देखता हूँ, तो यह बात पक्की है कि मैं देखने वाला हूँ। जिसे मैं देख रहा हूँ, वह मुझसे भिन्न है और मैं उससे पृथक हूँ। मैं सदा ही द्रष्टा हूँ, जाननेवाला हूँ। वृक्ष, मकान, नदी और पहाड़; ये तो दूर की बात हो गई। यदि हम अपनी शारीरिक क्रियाओं को भी ध्यानपूर्वक देखें, तो हम पाएंगे कि इन क्रियाओं को भीतर से जाननेवाला मैं हूँ। शारीरिक क्रियाएं मुझसे भिन्न हैं। कभी शारीरिक क्रियाएं होती हैं और कभी नहीं भी होतीं। जब शरीर बिल्कुल शांत और निष्क्रिय होता है, तब भी मैं होता हूँ। मैं तो वही का वही हूँ। शरीर कभी बच्चा था, फिर जवान हुआ और अब बूढ़ा हो गया है। लेकिन भीतर कोई चीज़ है, जो सदा ज्यों कि त्यों है। तो 'मैं' किसे कहेंगे? 'मैं' तो कंटीन्यूटी में मौजूद हूँ। मैं बचपन में था, जवानी में था और बुढ़ापे में भी हूँ। लेकिन शरीर तो चेंज हो गया। एक दिन आप अपने माँ के गर्भ में थे। अगर उसके अल्ट्रासोनोग्राफ़ी की फ़ोटो आप को दिखाई जाए, तो क्या आप स्वयं को पहचान पाऐंगे। लेकिन शरीर तो एक दिन वही था, बल्कि उसके और पहले तो यह माईक्रोस्कोपिक था। पचास गुना बड़ा करने पर भी यह एक छोटे से बिंदु जैसा दिखता था। किस शरीर को अपना कहेंगे। किस शरीर को कहेंगे कि 'मैं' हूँ। यह शरीर तो एक दृश्य की तरह है, जो बदलता चला गया।

लेकिन एक चीज़ कंटीन्यूटी में मौजूद है। वह है–जाननेवाला तत्त्व। मैंने बचपन को भी जाना, मैंने जवानी को भी जाना, मैं बुढ़ापे को भी जान रहा हूँ और शायद मरते हुए शरीर को भी जानूंगा। मैं हर अवस्था में मौजूद रहूँगा। तो फिर उसी को 'मैं' कहें, जो इन सब अवस्थाओं को जान रहा है। ठीक इसी प्रकार हमारे मन के विचार हज़ारों बार बदले। हमारे हृदय की भावनाएं न जाने कितनी बार बदल गईं।

मुझे किसी से प्रेम हो गया; जब प्रेम नहीं हुआ था, तब भी मैं था। प्रेम की भावना आई, तब भी मैं था। फिर कुछ दिनों बाद प्रेम विदा हुआ और क्रोध पैदा हो गया, तब भी मैं था। फिर क्रोध भी विदा हो गया, तब भी मैं हूँ। तो मैं ये तो नहीं कह सकता कि मैं प्रेम हूँ या मैं क्रोध हूँ। प्रेम, क्रोध व अन्य सभी भावनाएं और अवस्थाएं तो आईं और गईं। मैं तो वह 'स्पैक्टेटर' हूँ, जिसने इन सब को जाना। जब वे नहीं आये थे, तब भी मैं था। जब वे चले गये, तब भी मैं हूँ ; स्वास्थ्य आया, बीमारी आयी, फिर स्वास्थ्य आया, तो मैं ये तो नहीं कह सकता कि मैं स्वास्थ्य हूँ या बीमारी हूँ।

ठीक इसी प्रकार हमारी जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति व समाधि की अवस्थाएं न जाने कितनी बार आयीं और गयीं। कितनी बार जग चुके! कितनी बार सो चुके! कितनी बार सपने देख चुके। ये केवल मन की अवस्थाएं हैं। 'मैं', जाननेवाला तत्त्व दिन के जागरण में भी मौजूद हूँ। मैं स्वप्न में भी जानता हूँ कि स्वप्न चल रहे हैं। सुबह उठकर मैं कहता हूँ कि आज रात ऐसा–ऐसा सपना देखा। तो इसका अर्थ हुआ कि देखनेवाला तत्त्व मौजूद था। किसी दिन मैं कहता हूँ कि आज बहुत बढ़िया नींद आयी। ख़ूब अच्छी गहरी नींद अर्थात् 'सुषुप्ति'। इसका मतलब सुषुप्ति में भी 'मैं' मौजूद था। मैंने जाना नहीं, तो कैसे पता चला? किसे पता चला कि अच्छी नींद आयी? किसी–किसी दिन मुझे लगता है कि आज बहुत गहरी नींद नहीं लगी, सपने–सपने चल रहे थे। किसे पता चला कि आज गहरी नींद नहीं आई? एक तत्त्व मेरे भीतर है; जिसे हम चैतन्य कहें, बोध कहें, आत्मा कहें या कांशसनैस कहें–इसका गुण धर्म जानना है। यह तत्त्व क्या जान रहा है, ये विषय बदलते रहते हैं। लेकिन जाननेवाला तत्त्व तो कंटीन्यूटी में मौजूद रहता है। फिर मैं किसे 'मैं' कहूं? क्या मैं कहूं कि 'मैं' दिन का जागरण हूँ? अगर मैंने स्वयं को जागरण कहा, तो मेरा स्टेटमैंट ग़लत हो जायेगा। रात को सपने में क्या होता है? मैं तो सपने में भी हूँ। मैं यह भी नहीं कह सकता कि 'मै' सपना हूँ क्योंकि सपना टूटने के बाद जब नींद खुली, तब भी 'मैं' था। तो न तो मैं भावना हूँ, न विचार हूँ और न ही मन या उम्र की कोई अवस्था हूँ। तो मैं कौन हूँ? यह जानने के लिए कि 'मैं कौन हूँ', एक सरल सा प्रयोग किया जा सकता है। जो मैं नहीं हूँ, उसे नेति–नेति नकारते जाएं। अंततः एक पोइंट ऐसा आता है, जिसे हम इन्कार कर ही नहीं सकते। यही वह समय है, जब समझ आता है कि मैं चैतन्य बोध हूँ, मैं जानने की क्षमता हूँ।

इसे इन्कार नहीं किया जा सकता। यह सदा–सदा हर हाल में मौजूद है। सुख होता है, तो 'मैं' जानता हूँ। द:ुख होता है, तो भी मैं जानता हूँ। उदासी भी मैंने जानी और ख़ुशी भी मैंने जानी। अभी स्वामी जी ने इतना मधुर गाना गाया। हो सकता है कि अभी ख़ूब कटु गानेवाले लोग भी आयें। लेकिन याद रखना! हमारे भीतर का द्रष्टा चेंज नहीं होगा। वह वहीं का वहीं है। गानेवाले बदल जायेंगे। वे सुखदायी अथवा दुखदायी हो सकते हैं। मगर भीतर जो जाननेवाला तत्त्व है, उसका काम सिर्फ़ जानना है। अच्छा गानेवाले भी आकर चले गये और बुरा गानेवाले भी आकर चले जायेंगे। लेकिन जाननेवाला तत्त्व मौजूद ही रहेगा। जब कोई नहीं गा रहा था, वह तब भी मौजूद था। जब सब चले जायेंगे, वह तत्त्व तब भी मौजूद होगा।

फिर 'मैं' किसे कहें? क्या गानेवाले व्यक्ति को 'मैं' कह सकते हैं? नहीं, वह तो हमसे भिन्न है। तो फिर 'मैं' कौन हूँ? फ़ाईनल कन्कलूज़न यह है कि 'मैं' हर स्थिति, हर भाव, हर विचार और हर अवस्था को 'जाननेवाला तत्त्व' हूँ। मैं कभी इससे इन्कार नहीं कर सकता क्योंकि अगर मैं कहूं कि मैं जाननेवाले को जानता हूँ, तब भी फ़ाइनल बात वहीं रहेगी कि मैं जाननेवाला तत्त्व हूँ। हम इससे पीछे नहीं खिसक सकते क्योंकि हर परिस्थिति में 'मैं' जाननेवाला ही रहूँगा। इससे इन्कार भी नहीं कर सकते क्योंकि इन्कार करने के लिये भी उसका होना ज़रूरी है।

सद्‌गुरु ओशो के प्रवचन में नसरुद्दीन की कहानी आती है। लोग कहते थे कि नसरुद्दीन बहुत कंजूस है। यह सब सुनते–सुनते वह भी थक गया था। एक दिन वह शराबघर में कुछ ज़्यादा ही पी गया। उसके मित्रों ने कहा कि तुम बहुत कंजूस हो। दोस्तों की ख़ातिर कभी कुछ ख़र्च नहीं करते। आज तो तुम्हारा बर्थडे भी है, तो आज पार्टी हो जाए। नसरुद्दीन ने दारू पीने के बाद ताव–ताव में कह दिया कि सभी मेरे घर चलो। आज ही सबको खाना खिलाता हूँ। क़रीब बीस लोग उसके साथ चल पड़े। आधा रास्ता गुज़रते–गुज़रते नसरुद्दीन की दारू का असर कम हुआ और बीवी की याद आई। नशा उतारने के लिये तो बीवी का सुमिरन ही काफ़ी होता है। बीवी की याद आते ही उसके हाथ–पैर कंपने लगे और कुंडलिनी जगने लगी कि घर जाकर क्या होगा? घर पहुँचने पर उसने कहा– 'भाईयो! आप सब भी शादी–शुदा हैं। आपसे कोई बात छिपी नहीं है। आप जान ही रहे होंगे कि मुझ पर क्या बीत रही है। मुझे थोड़ा मौक़ा दो, ताकि बीवी से कह सकूं कि बीस लोग खाना खाने के लिये आये हैं। तुम लोग यहीं चुपचाप खड़े रहो। मैं भीतर जाकर उसे फुसलाने की कोशिश करता हूँ।'

लोगों ने कहा– 'ठीक है, ज़रा जल्दी आना।' नसरुद्दीन भीतर गया। बीवी को साष्टांग दंडवत् किया और कहा कि नशे में मुझसे बड़ी भारी ग़लती हो गई है। बीस दुष्ट खाना खाने के लिये मेरे साथ आए हैं। हे देवी, महादेवी, अब तुम्ही मेरी रक्षा करो।

पत्नियाँ तो पतियों पर वैसे ही आग बबूला रहती हैं। अचानक इतनी विस्फोटक स्थिति हो गई मानो बम फटने ही वाला है। नसरुद्दीन ने कहा कि तुम बाद में नाराज़ हो लेना। अभी कुछ उपाय करो और इन्हें यहाँ से भगाओ। उसकी पत्नी ने कहा– 'ठीक है, तुम ऊपर की मंज़िल पर जाओ, मैं इन दुष्टों से निपटती हूँ। हरामज़ादे, आधी रात को खाना खाने चले आये। मैं अभी इनके होश ठिकाने लगाती हूँ।'

नसरुद्दीन की पत्नी ने दरवाज़ा खोला और कहा– ''अरे! आप लोग यहाँ कैसे?'' उन्होंने कहा कि आपके हज़बन्ड ही जन्मदिन की पार्टी मनाने के लिए हमें यहाँ लेकर आये हैं। उन्होंने कहा है कि हमें खाना भी खिलायेंगे। उसने कहा कि मेरे हज़बन्ड तो घर में हैं ही नहीं। उन्होंने कहा कि ऐसा कैसे हो सकता है? नसरुद्दीन तो हमारे सामने इसी दरवाज़े से भीतर गया है। नसरुद्दीन ऊपर खिड़की से सब देख रहा था कि नीचे क्या हो रहा है? पत्नी कह रही थी कि मेरे पति घर में हैं ही नहीं और वे लोग कह रहे थे कि ऐसा कैसे हो सकता है? हम बीस आदमी कैसे ग़लत हो सकते हैं?

पत्नी ने कहा कि तुम सब नशे में हो और कुछ का कुछ देख रहे हो। जब मेरे हज़बन्ड घर में हैं ही नहीं, तो किसकी पार्टी और किसका जन्मदिन? वे लोग एकदम हठ पर अड़ गये कि वह हमारी आँखों के सामने भीतर गया है।

नसरुद्दीन ऊपर से सब सुन रहा था। थोड़ी देर तक तो सुनता रहा, लेकिन जब बात बहुत बढ़ गई, तो उसने गुस्से में कहा कि अरे! उस अबला स्त्री से क्यों बहस कर रहे हो? हो सकता है कि तुम भी सही हो और वह भी सही हो। तुम ठीक कह रहे हो कि नसरुद्दीन इसी दरवाज़े से अन्दर गया है, मगर यह भी तो हो सकता है कि पीछे के दरवाज़े से बाहर निकल गया हो। नसरुद्दीन ने कहा कि अब मान भी जाओ कि मैं इस घर में नहीं हूँ। इस प्रकार अगर हम ये भी कहें कि मैं नही हूँ, तो ये कहने के लिये भी मेरा होना ज़रूरी है। इससे यही सिद्ध होता है कि 'मैं' हूँ। नसरुद्दीन का यह कहना ही साबित करता है कि नसरुद्दीन है।

एक बिंदु है जिसे हम किसी भी भांति इन्कार नहीं कर सकते और वह है– हमारा बोध, हमारा चैतन्य और हमारी जानने की क्षमता। चाहे कुछ भी न हो, बोध तो तब भी होगा। शंकराचार्य कहते हैं कि संसार माया है। संसार स्वप्नवत् हो सकता है, झूठ हो सकता है, लेकिन झूठ को जाननेवाला तत्त्व तो सत्य है।

रात को हमने सपना देखा। सपना झूठ था, वह कहानी झूठ थी। लेकिन उसको जाननेवाला तत्त्व तो सच्चा था। उसके बिना तो सपना भी नहीं हो सकता। तो इसका यह अर्थ हुआ कि असत्य का आधार भी सत्य ही होगा। मान लीजिए कि आप कहीं फ़िल्म देख रहे हैं। इस फ़िल्म की कहानी भले ही झूठ है। हम जो देख रहे हैं, सुन रहे हैं और छू रहे हैं; हो सकता है कि सब झूठ हो। लेकिन जानने वाला तत्त्व तो सत्य है।

मैं प्रवचन दे रहा हूँ, देख रहा हूँ कि आप सब श्रोतागण बैठे मुझे सुन रहे हो।

सोचो... अचानक मां ओशो प्रिया मुझे जगाएं कि उठो जी! चाय पी लो। नींद खुलते ही मुझे लगेगा कि मैं तो बुद्धा हॉल में था। वहाँ दर्शन दरबार चल रहा था और मैं सत्संग ले रहा था। हो सकता है कि ये दरबार झूठा हो, आप जो मुझे दिख रहे हो, वास्तव में हो ही नहीं; लेकिन फिर भी 'मैं' तो हर हाल में रहूँगा ही रहूँगा। इस सपने को देखने के लिये भी मेरा होना ज़रूरी है।

अतः एक बिन्दु ऐसा है, जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता और वह है– 'स्वयं का बोध'। विचारों के बिना भी हम हो सकते हैं। जब हम छोटे बच्चे थे, तब हमें न तो शब्दों का ज्ञान था और न ही कोई भाषा आती थी। उस समय कोई विचार नहीं था, लेकिन फिर भी हम थे। तो जो मैं नहीं हूँ, अपने को उससे दूर खिसकाते चलें। नाईदर दिस नोर दैट। नेति–नेति करते एक जगह पहुँच जायेंगे जिसे इंकार नहीं कर सकते। वही बोध स्वरूप स्वयं का वास्तविक होना है। वह चेतना ही आत्मा है।

प्यारे मित्रो, नमस्कार! प्रश्नोत्तर सत्संग के इस सत्र में मैं आप सभी का हार्दिक स्वागत करता हूँ।

प्रश्न– एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान लगाते समय कभी–कभी शरीर में करंट का झटका महसूस होता है। इसका क्या कारण है?

जब भी हमारी चेतना एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाती है, तो ऐसा होता है। यह प्रक्रिया क़रीब–क़रीब कार में गियर बदलने जैसी है। जब कोई कार के गियर बदलता है, तो कार में झटका लगता है। कल्पना करें कि कार में चार गियर हैं और एक न्यूट्रल। किसी भी एक गियर से दूसरे गियर में जाने के लिये न्यूट्रल से गुज़रना होगा। ऐसा करने से हल्का–सा झटका महसूस होगा। जितना कुशल ड्राईवर होगा, उतना ही कम झटका लगेगा; लेकिन झटका महसूस अवश्य होगा। ठीक ऐसे ही चार गियर्स के समान हमारी चेतना की भी चार अवस्थाएं हैं। दूसरा उदाहरण समझ लें। मान लीजिए कि हम एक चौराहे पर खड़े हैं। किसी भी एक सड़क से दूसरी सड़क पर जाने के लिए चौराहे के बीच वाले बिन्दु से गुज़रना ही होगा।

हमारी चेतना की पहली अवस्था है जागृति, दूसरी स्वप्न, तीसरी सुषुप्ति और चौथी है तुरीय या समाधि की अवस्था। जब भी हमारी चेतना एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाती है, तो ऊर्जा के प्रवाह की दिशा बदलने के कारण एक हल्का–सा

झटका महसूस होता है। यह झटका हमें रात को नींद में जाते समय, नींद से सपने में जाते समय और सपने से वापिस नींद में आते समय रोज़ महसूस होता है। चूंकि उस समय हम मूर्छित होते हैं, तो हमें उस झटके का पता नहीं चलता। कई लोगों को कभी–कभी अर्धनिंद्रित अवस्था में इस झटके का अनुभव होता है। अभी पूरी नींद नहीं आई। थोड़ा–सा जागरण शेष है। अचानक पैर हिल गया या गर्दन हिल गई या हाथ की उँगली हिल गई। इसे involuntary movements कहा जाता है। हमारी स्वेच्छा से नहीं, बल्कि अपने आप ही कोई गति हो गई। अक्सर रात को सोते समय ऐसा होता है, लेकिन मूर्छा में हमें उसका ज्ञान नहीं होता। ध्यान में चंूकि हम होश पूर्ण हैं, इसलिए हमें उस झटके का पता चल जाता है।

प्रश्न– क्या अपनी ऊर्जा जागृत कर, ध्यान लगाकर सभी प्रकार के complex और repression को दूर किया जा सकता है?

केवल ऊर्जा जागरण से यह संभव नहीं होगा। ऊर्जा जागरण से तो केवल शक्ति हमारे हाथ में आती है। अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम उस शक्ति को किस भांति प्रयोग करेंगे? हम भीतर के दमन तोड़ने में भी उसका उपयोग कर सकते हैं और दमन को मज़बूत करने में भी। हम इस ऊर्जा को reparation में भी लगा सकते हैं। ऊर्जा तो वही है, लेकिन इसका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग करना हम पर निर्भर है। इसलिए केवल शक्ति–जागरण से नहीं, बल्कि सम्यक समझपूर्वक उसका सदुपयोग करने से बात बनेगी।

एक अन्य उदाहरण से समझें। एक पहलवान अपनी शक्ति का प्रयोग किसी प्रकार की हिंसा व मार–पिटाई में करता है। लेकिन उसी शारीरिक बल का प्रयोग वह कहीं हो रही हिंसा को रोकने में भी कर सकता है। किसी की हत्या की जा रही हो, तो यह पहलवान बीच में जा कर रोक सकता है। लेकिन इसके विपरीत वह स्वयं भी किसी की हत्या कर सकता है। शक्ति अपने आप में निरपेक्ष है। शक्ति अच्छी या बुरी नहीं होती। शक्ति का उपयोग कौन, कैसे और किस कार्य हेतु करेगा? उस पर निर्भर है। इसी प्रकार कर्मठता भी अच्छी या बुरी नहीं होती।

अक्सर हमारे मन में यह धारणा होती है कि आलसी लोग बुरे होते हैं और कर्मठ लोग अच्छे होते हैं। हमारी यह धारणा बिल्कुल ग़लत है। ज़रा सोचो! हिटलर अगर आलसी होता, तो दुनिया का कितना भला होता? द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जो हिंसा हुई, जो विनाश हुआ; वह न होता। वह दिनभर घर बैठे बीड़ी–तम्बाकू पीता, हुक्का गुड़गुड़ाता, और अच्छा होता कि दो–चार शादियाँ भी कर लेता। यदि ऐसा होता, तो दुनिया तबाह होने से बच जाती। मगर हिटलर तो इसके बिल्कुल विपरीत था। वह तो

ब्रह्ममुहूर्त में सुबह चार बजे उठने वाला व्यक्ति था। वह जीवनभर अविवाहित व ब्रह्मचारी रहा। वह इतना कर्मठ था कि उसकी कर्मठता ही द्वितीय विश्वयुद्ध का कारण बन गई।

हम कैसे कह सकते हैं कि आलस्य हमेशा ख़राब है और कर्मठता हमेशा अच्छी है? नहीं! अच्छा आदमी अगर कर्मठ हो, तो कर्मठता अच्छी है। बुरे व्यक्ति की कर्मठता तो हिंसक व विनाशकारी होती है। बुरा आदमी अगर आलसी हो, तो बहुत ही अच्छा है। उसने करनी तो बुराई ही है। वह सोचता ही रहे कि इतनी जल्दी भी क्या है? कल कर लेंगे। वह आलस्यपूर्ण होकर केवल योजनाएं ही बनाता रहे, तो कितना अच्छा हो! तो आलस्य या कर्मठता अपने आपमें शुभ या अशुभ नहीं होते। ठीक वैसे ही ऊर्जा का अतिरेक या ऊर्जा की कमी होना अपने आप में अच्छा या बुरा नहीं होता। इसलिए एक और चीज़ इसके संग जोड़ लें। वह है– 'साक्षीभाव'। वह है– 'तथाताभाव'। अगर ऊर्जा–जागरण के संग साक्षीभाव नहीं जुड़ा, तो अकेली ऊर्जा ख़तरनाक साबित हो सकती है। अतीत में कई बार ऐसा हुआ है कि बहुत लोग 'कुंडलिनी जागरण' करके विक्षिप्त हो गए। उन्हें यह मालूम नहीं था कि शक्ति–जागरण के बाद, उस शक्ति का सदुपयोग कैसे करना है। जैसे एक 60 वाट का बल्ब है और हमने उसमें ज़रूरत से ज़्यादा इलैक्ट्रिक करंट भेज दिया, तो बल्ब ही फ्यूज़ हो जाएगा। बल्ब की क्षमता होनी चाहिए कि उतनी विद्युत–धारा को झेल सके और उसका उपयोग कर सके।

निश्चित रूप से अगर कम विद्युत धारा जाएगी, तो भी ठीक से रोशनी नहीं होगी और सबकुछ फीका–फीका, धुंधला दिखाई देगा। लेकिन ज़रूरत से ज़्यादा ऊर्जा भी हितकारी नहीं होगी। इसलिए ऊर्जा–जागरण के साथ–साथ ध्यान, साक्षीत्व, तथाता, प्रेमभाव, करुणाभाव व शांति; यह सब ज़रूरी हैं। हृदय व मन के शुद्धिकरण के पश्चात् ऊर्जा–जागरण हो, तो ज़्यादा उपयोगी होगा। ऊर्जा–जागरण तो पहले भी हो सकता है, इसमें शुद्धिकरण की कोई आवश्यकता व अनिवार्यता नहीं है। अशुद्ध व्यक्ति भी बहुत ऊर्जा से भर सकता है। लेकिन हृदय व मन के शुद्धिकरण से हम उस ऊर्जा का सदुपयोग कर सकते हैं।

अक्सर आपने देखा होगा कि क्रोधी लोग बड़े ऊर्जावान होते हैं। विक्षिप्त लोग बड़े शक्तिशाली होते हैं। पागलपन में उनके भीतर इतनी शक्ति आ जाती है कि चार–चार, छः–छः व्यक्ति भी उनको नियंत्रण में नहीं ला सकते। तो सावधान रहना होगा। सिर्फ़ ऊर्जा जागरण नहीं, बल्कि ऊर्जा का सदुपयोग, हृदय का शुद्धिकरण व चित्त का शुद्धिकरण भी आवश्यक है।

प्रश्न– एक मित्र ने पूछा है कि होश और प्रेम को साधने के संबंध में कुछ कहें। मुझे लगता है कि अध्यात्म के लिए ये

दो ही सर्वाधिक ज़रूरी तत्त्व हैं।

आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। ये दो सर्वाधिक ज़रूरी तत्त्व हैं। दो शब्दों में बात बन जाती है। चाहे हम उसे होश और प्रेम कहें, चाहे हम उसे योग और भक्ति कहें, चाहे हम उसे संकल्प और समर्पण कहें, इन दो शब्दों में सारी बात समझ में आ जाती है। एक से भी बात बन सकती है, किंतु उसमें कुछ कमी रहेगी। जैसे फूल तो खिल गया, किंतु ख़ुशबू नहीं है। तो फूल का खिलना तो हो गया, लेकिन बात कुछ बे-रौनक़ रहेगी। अगर दोनों हों, तो सोने पे सुहागा हो गया। बुद्ध ने समाधि के साथ-साथ करुणा पर बड़ा ज़ोर दिया है। दोनों को इकट्ठा साधना आवश्यक है। कोई व्यक्ति केवल एक को भी साध सकता है। किंतु उसमें पूर्णता नहीं होगी। उसमें कुछ कमी रह जाएगी। तो ये दो अनिवार्य तत्त्व हैं, इसलिए दोनों का ख़्याल रखना।

ओशो कहते हैं मेरे संन्यास के पंछी के दो पंख है, होश और प्रेम। दो पंखों से ही सुदूर आकाश में उड़ान भरी जा सकती है, एक पंख से नहीं। एक पंख से भी थोड़ी बहुत यात्रा हो सकती है, लंगड़ा आदमी भी थोड़ा चल सकता है। किंतु अगर लंबी यात्रा करनी हो, तो दोनों पैर सही सलामत होने चाहिएँ। इन दोनों चीज़ों को इकट्ठा साधना हम ओशो के शिष्यों के लिए एक बड़ी चुनौती है। अतीत में लोगों ने एक-एक चीज़ को साधा। कुछ हद तक सफल भी हुए, किंतु उनकी सफलता में आंशिकता है। एक आदमी अपना घर-परिवार छोड़ कर किसी जंगल में या गुफ़ा में जा बैठा। हो सकता है कि वह ध्यानस्थ हो गया हो, साक्षी में डूब गया हो। किंतु घर छोड़ने के कारण वह अपने परिवार के लोगों को बहुत दुख देकर आया है। यह आदमी बहुत कठोर हृदय का है। इसके अंदर प्रेम, करुणा और सहानुभूति नहीं है। माना कि उसने साक्षी साध लिया। माना कि वह बहुत होशपूर्ण हो गया। किंतु इसका होश रूखा-सूखा होगा। इसके हृदय में किसी के लिए प्रेम और करुणा नहीं होगी।

कुछ लोगों से दूसरी ग़लती भी हुई। उन्होंने बिना ध्यान किए प्रेम, भक्ति, करुणा और सेवाभाव को साधने की कोशिश की। फिर उनकी सेवा भी अहंकार का ही आभूषण हो गई। उनकी भक्ति धीरे-धीरे एक औपचारिक कर्मकाण्ड-मात्र रह गई। सावधान! इसमें भूल हो जाती है। क्यों न हम दोनों को इकट्ठा ही साधें? जैसे बाएं और दाएं दोनों पैरों से चलते हैं; ठीक वैसे ही अपने दिल और दिमाग़ का, हृदय और मस्तिष्क का, विवेक और करुणा का साथ-साथ प्रयोग करें। प्रेम के पीछे होश की छाया हो और होश के पीछे प्रेम की छाया हो। पहला क़दम हम कोई भी उठाएं, किंतु पीछे से दूसरा क़दम भी उठना चाहिए। ठीक है, पहले कोई एक क़दम उठेगा। सिर्फ़ बाएं-बाएं पैर से ही आप नहीं चल सकते, और न ही केवल दाएं-दाएं पैर से चल सकते हैं, इसलिए बायां पैर भी उठाना और दायां पैर भी उठाना।

कई लोग पूछते हैं कि हम कौन सा मार्ग चुनें? मैं कहता हूँ कि तुम्हें जो पसंद आए, उसी से शुरू करो। यह तुम्हारे व्यक्तित्व पर निर्भर है कि तुम कौनसा पैर पहले उठाते हो। कोई व्यक्ति बायां पैर उठा लेगा, कोई दाहिना पैर उठा लेगा, बस इतना ही फ़र्क़ है। केवल स्टार्टिंग पोइंट का भेद है। दोनों पैरों से इकट्ठे तो छलांग नहीं लगा सकते। तो शुरूआत किसी एक से करनी होगी, लेकिन अंततः दोनों ही काम आएंगे।

Q.- During these two weeks in Amrit and Urja samadhi, we have practised different techniques of meditation before going into the samadhi. All of them are very powerful. Can you please suggest one of them to be practised at home every morning?

Answer-The technique which you have enjoyed the most, can be used regularly. Different kinds of people and different types of personalities have quite different inclinations, likings and dislikings. It depends on what suits you the best. Yes, all of them are very powerful. This means that you can choose any one of them. Most of them are suitable for you, so you can try one technique for at least 10 to 15 days regularly. Then you can change the technique, because if you do one method repeatedly, it becomes mechanical and habitual. Then it doesn't help in releasing the energy to the level of super-consciousness. It becomes a part of the mechanical habitual mind.

It will be good to change the method of meditation after 10-15 days. Why am I saying 10 to 15 days? Because any technique will take some time to go deep. When you start with a new one, it fills you with enthusiasm. Don't change it unnecessarily. As far as time to change the technique is concerned, it all depends on your understanding, experience and personality.

प्रश्न– एक मित्र ने पूछा है कि क्या अमृत चैतन्य को जानकर भय पूर्णतः समाप्त हो जाता है? कृपया प्रकाश डालें।

यदि तुम अपने आत्म–स्वरूप से परिचित हो गए, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि रास्ते पर चलते साँप को देखकर तुम छलांग न भरोगे। सड़क के किनारे खाई है और तुम पहाड़ी से कार लुढ़काने में संकोच न करोगे। अमृत चैतन्य आत्मा के तल पर है, देह के तल पर नहीं। देह तो नश्वर है। प्रकृति ने इसकी सुरक्षा का इंतज़ाम किया है इसलिए शरीर के साथ–साथ भय दिया है। यह शरीर का रक्षक तत्त्व है। यदि भय न होता, तो तुम अभी जीवित न होते। सड़क पर ट्रक आ रहा है और तुम बीच में गाना

गुनगुनाते चले जाते। तुम्हें ट्रक से भय नहीं लगता। भय जीवन के पक्ष में है। फिर आप पूछेंगे कि मैं किस भय के ख़िलाफ़ हूँ? भय का जो अतिरेक है, वह उचित नहीं है। कोई भी चीज़ सम्यक मात्रा में उचित है, सम्यक मात्रा में होने पर ही उसका उपयोग है। इसलिए परमात्मा ने उसकी रचना की है। लेकिन भूलवश हम उनकी मात्रा बढ़ा देते हैं। तब मुश्किल खड़ी होती है। सम्यक मात्रा में सब चीज़ें अच्छी हैं। काम भी अच्छा है, क्रोध भी अच्छा है, लोभ भी अच्छा है और भय भी अच्छा है। सब चीज़ें अच्छी हैं, बशर्ते सही जगह और सही मात्रा में हम उनका सदुपयोग करें।

अगर हमसे कोई कहे कि एक विशेष प्रकार की ऐलोपैथिक दवाई हमारे लिए लाभदायक है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि हम मुट्ठी भरकर वह दवाई खा लें। ऐसा करना कितना तकलीफ़देह हो सकता है, इसका अंदाज़ा ही लगाया जा सकता है। एक तरफ जहाँ ठीक परिस्थिति और ठीक 'डोस' में खाने से वह दवाई हमारे लिए अमृत सिद्ध होगी। वहीं दूसरी तरफ अनुचित तरीक़े व आवश्यकता से अधिक लेने पर वही दवाई ज़हर साबित हो जाएगी। नींद की गोली बड़ी अच्छी चीज़ है। यह किसी अनिद्रा के रोगी की बेचैनी ख़तम कर देती है। इसे खाते ही उसे नींद आ जाती है। यदि इसे ज़्यादा मात्रा में खा लोगे, तो आत्महत्या हो जाएगी। इसमें इस गोली का दोष है या हमारी मूढ़ता का? नींद की गोली तो छोड़ो, यदि विटामिन की गोली को भी तुम ओवर डोस में ले लो, तो वह भी तुम्हारे लिए हानिप्रद हो जाएगा।

आजकल बाज़ार में रैकमैंडिड डोस से 10–10 गुना बड़ी गोलियाँ आ रही हैं। यह गोलियाँ मनुष्य के काम की तो नहीं हैं। हाँ! भैंस के काम की हो सकती हैं। मैं देखता हूँ कि बहुत लोग विटामिन का 'ओवरडोस' लेते रहते हैं। अमेरिका में अधिकतर लोग रोज़ सुबह मुट्ठीभर गोलियाँ खाते हैं। हमारे शरीर को इतनी गोलियों की ज़रूरत ही नहीं है। हम जो भोजन ले रहे हैं, उसमें पर्याप्त विटामिन हैं। कभी–कभार किसी चीज़ की कमी हो सकती है। उसे दूर करना उचित है। अगर प्रिवैंटिव दवाई है, तो उसकी एक सम्यक मात्रा है। उससे अधिक लेने का लाभ नहीं। हाँ, नुक़सान संभव है।

छोड़ो नींद की गोली और विटामिन की गोली को। पानी तो हमारे जीवन का अनिवार्य तत्त्व है ना! पानी के बिना जीवन संभव नहीं है। इस बात को सुनकर यदि कोई बाल्टीभर पानी पी जाए और कहे कि आपने तो कहा कि जल ही जीवन है, तो ये उसका पागलपन ही होगा। आवश्यकता से अधिक पानी पीने के कारण हो सकता है कि उसकी तबीयत इतनी बिगड़ जाए कि उसे अस्पताल में भर्ती करवाना पड़े। इसमें पानी का दोष नहीं है, ये हमारी विक्षिप्त मानसिकता है।

ठीक इसी प्रकार मैं भय के संबंध में कहना चाहूँगा। प्रकृति ने जितना भय हमें दिया है, वह बिल्कुल उपयोगी है। वह जीवन–रक्षक तत्त्व है। वह हमारे भीतर होना ही

चाहिए। लेकिन हमने उसकी मात्रा बढ़ा ली। माता–पिता बच्चे को भांति–भांति से डराते–धमकाते हैं और भयभीत करते हैं। वे उसके साहस को पनपने नहीं देते। ऐसा बच्चा बड़ा होते–होते भयभीत होने के लिए संस्कारित हो जाता है। छोटी–छोटी चीज़ें उसे कंपित कर देतीं हैं। अब यह भय का 'ओवरडोस' हो गया।

बच्चे को अंधेरे में जाने से डर नहीं लग रहा था। लेकिन उसकी माँ ने डरा कर रखा है कि अंधेरे में मत जाना। माँ की अपनी मुसीबत है। उसे लगता है कि बच्चा अंधेरे में जाएगा, कहीं गिर गया तो चोट लग जाएगीं और बाद में संभालना पड़ेगा। इसलिए माँ अपने बच्चे को डरा–डरा कर रखतीं है। जो–जो काम नहीं करवाने हैं और जिस–जिस चीज़ से बच्चे को रोकना है, उस चीज़ से वह किसी न किसी डर को जोड़ देतीं है। उदाहरण के लिए अगर माँ ने बच्चे को कहीं जाने से रोकना है, तो वह कहेगी कि बेटा! वहाँ मत जाना, वहाँ भूत है। बच्चा तो श्रद्धालु चित्त का है। वह बेचारा तो यह जानता ही नहीं कि भूत क्या होता है? लेकिन उसकी माँ भूत का इतना भयानक चित्र उसके सामने प्रस्तुत करती है कि वह बच्चा सहम जाता है। वह इतना डर जाता है कि दोबारा उस जगह जाने की सोचता भी नहीं है।

इस प्रकार तुमने तो अपना काम निकाल लिया। बच्चा उस जगह नहीं गया। लेकिन बड़ा होने के बाद भी वह अंधेरे में नहीं जाता। अब उसे कितना ही समझाओ कि भूत नहीं है, अब वह नहीं मानने वाला। उसकी माँ ने जो बचपन में समझा दिया है, वह उसके अचेतन में बैठ गया। अब उसका अचेतन भूत खड़ा कर देता है। और हो सकता है कि वह बच्चा भूत को देख भी ले। यह उसकी अपनी कल्पना का ही प्रक्षेपण होगा। बच्चे के भीतर बहुत साहस और ऊर्जा है। परिवार और समाज उसे बर्दाश्त नहीं कर सकता। अभी तक हम ऐसी पारिवारिक व सामाजिक व्यवस्था निर्मित नहीं कर पाए हैं, जहाँ बच्चे साहसपूर्वक, ऊर्जापूर्वक एवं संकल्पपूर्वक जी सकें।

हम भांति–भांति से अवरोध डालते हैं। हम उन्हें डराते–धमकाते हैं। यह कार्य करो, यह नहीं करो, पेड़ पर नहीं चढ़ना, नदी में नहीं उतरना, बारिश में नहीं निकलना; इस प्रकार हमने बच्चों के मन में भांति–भांति के डर बैठा दिए हैं। जिसके परिणामस्वरूप बच्चा कंडिशंड हो गया है।

यह डर का 'ओवरडोस' हो गया। अब यह जीवन में बाधक हो गया। प्रकृति ने जो भय दिया था, वह जीवन में सहयोगी था। वह जीवन का रक्षक था। समाज ने हमारे भीतर जो भय पैदा किया है, वह जीवन का बाधक है। अब ये व्यक्ति ठीक से जी ही नहीं पाता। वह इतना भयभीत हो जाता है कि ज़रा–ज़रा से काम में भी इस व्यक्ति की हिम्मत नहीं पड़ती। कुछ नया क़दम उठाने का उसका साहस नहीं होता। ध्यानपूर्वक देखो कि बात कैसे पलट गई! जो चीज़ सहायक थी, वही बाधक बन गई।

ऐसा व्यक्ति मौज–मस्ती से नहीं जी पाता। वह दूसरों पर बहुत ज़्यादा निर्भर होता है। वह हर चीज़ के लिए दूसरों की तरफ़ देखता है कि उनका अपिनियन क्या है? इसके अपने भीतर विवेक की धारणा नहीं रही। भय अपने आप में ज़हर नहीं है। लेकिन इस व्यक्ति के जीवन में भय ने ज़हर जैसा काम किया।

तो ठीक यही बात अन्य चीज़ों पर लागू होती है, जिन्हें हम सामान्यतः 'बुराई' कहते हैं। वे अपने आपमें बुरी नहीं हैं। हाँ! जिस स्थान पर और जितनी मात्रा में उसका प्रयोग किया गया, वह ग़लत हो सकता है। सही स्थान पर, सही मात्रा में और सम्यक रूप से किसी चीज़ का सदुपयोग किया जाए, तो वह चीज़ अच्छाई है। महात्मा गांधी के मन में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ बहुत क्रोध था। अगर वह क्रोध न होता, तो भारत आज़ाद न होता। अगर आप कहते हैं क्रोध बुरा है, तो फिर महात्मा गांधी के क्रोध को क्या कहेंगे? महात्मा गांधी अफ़्रीका में थे, जहाँ अंग्रेज़ों का राज्य था। वह फर्स्ट क्लास की टिकट लेकर ट्रेन में यात्रा कर रहे थे। वहाँ बैठे अंग्रेज़ों में से एक अंग्रेज़ ने ट्रेन में से उनका सामान फेंक दिया और कहा कि फर्स्ट क्लास काले लोगों के लिए नहीं है। महात्मा गांधी ने कहा कि मैंने टिकट खरीदा है, लेकिन वे नहीं माने। उन्होंने कहा कि टिकट–विकट का कोई सवाल नहीं है। तुम्हें पता होना चाहिए कि काले लोगों को फर्स्ट क्लास में बैठने की इजाज़त नहीं है– यू जस्ट गेट आउट ऑफ दि ट्रेन।

गांधी जी का बहुत अपमान हुआ। उन्हें बहुत क्रोध आया। लेकिन उन्होंने उस क्रोध का भी सदुपयोग कर लिया। भारत वापिस आकर महात्मा गांधी ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध कई आंदोलन चलाए और अंग्रेज़ों से कहा Get out from this country. महात्मा गांधी ने पूरे इंग्लैंड का सामान उठा कर फेंक दिया। महात्मा गांधी के इस क्रोध की वजह से ही आज हम स्वतंत्र भारत के नागरिक हैं।

अब क्रोध को अच्छा कहोगे या बुरा कहोगे? अपने आपमें कोई चीज़ अच्छी या बुरी नहीं है। समझदारीपूर्वक उसका सदुपयोग कर लो, तो हर चीज़ अच्छा परिणाम देती है; जबकि नासमझी में हम स्वयं का नुक़सान कर बैठते हैं। जो बात मैंने भय व क्रोध के संबंध में कही, वही सब चीज़ों के बारे में समझना।

जीवन में कुछ अच्छा या बुरा ऐसा लेबल्ड नहीं है। चीज़ों को हम शुभ और अशुभ में नहीं बांट सकते। यह सब हमारी समझदारी और विवेक पर निर्भर करता है कि हम शुभ व कल्याणकारी कार्यों में उसका सदुपयोग करते हैं या अशुभ व विनाशकारी कार्यों में उसका दुरुपयोग करते हैं।

धन्यवाद! जय ओशो!